आचार्य कुन्दकुन्द रचित

# पंचास्तिकाय संग्रह

## (रेखाचित्र एवं तालिकाओं में)

आचार्य अमृतचंद्र कृत
समय-व्याख्या के हिन्दी अनुवाद
सहित

:: प्रस्तोता ::
विकास जैन (छाबड़ा)

:: प्रकाशक ::
श्री विमलचंद माणकचंद छाबड़ा
दिगंबर जैन पारमार्थिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)

| | | |
|---|---|---|
| कृति | : | पंचास्तिकाय संग्रह (रेखाचित्र एवं तालिकाओं में) |
| प्रस्तोता | : | विकास जैन (छाबड़ा) |
| | | इन्दौर (म.प्र.) |
| संस्करण | : | प्रथम 1000 प्रतियाँ सन् 2017 |
| | | श्री वीर निर्वाणोत्सव 2544 |
| | | के पावन प्रसंग पर |
| प्राप्ति स्थान | : | श्रीमान विमलचंद छाबड़ा |
| | | 53, मल्हारगंज मेनरोड़, इन्दौर (म.प्र.) |
| | | मो. 9424414796, 9406682889 |
| मूल्य | : | 100/- रू. |
| आकल्पन | : | डीसेन्ट ग्राफिक्स |
| | | सुभाष चौक कार पार्किंग |
| | | इन्दौर (म.प्र.) |
| | | मो. 98260-14047 |

# पंचास्तिकाय संग्रह : रेखाचित्र एवं तालिकाओं में विषय परिचय

आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा रचित प्राभृत–त्रय – पंचास्तिकाय–संग्रह, प्रवचनसार, समयसार ग्रन्थ सैद्धांतिक, दार्शनिक एवं आध्यात्मिक ग्रन्थ हैं । इन पर आचार्य अमृतचन्द्र और आचार्य जयसेन कृत न्यायपूर्ण संस्कृत टीकाएँ उपलब्ध हैं । इन टीकाओं में तथ्यों की सिद्धि के लिए प्रत्येक स्थल में आचार्यों द्वारा हेतु दिए गए हैं । अधिकांश लोग न्याय की भाषा एवं प्रयोग से अपरिचित रहने के कारण इन टीकाओं को वैसा समझ नहीं पाते जैसा अपेक्षित है । फलतः दृढ़ श्रद्धान एवं तर्कपूर्ण ज्ञान विकसित नहीं हो पाता । इस पुस्तक में यह प्रयास किया है कि न्याय की इस हेतु–विधि को उसीरूप में रखा जाए ताकि टीकाओं का न्याय–पूर्ण ज्ञान होवे ।

इन टीकाओं में अनुमान प्रमाण का प्रयोग मुख्यरूप से किया है । अनुमान के 5 अवयव हैं जिनमें **प्रतिज्ञा** और **हेतु** मुख्य हैं । पक्ष और साध्य के कथन करने को **प्रतिज्ञा** कहा जाता है। जहाँ साध्य की सिद्धि की जाती है उसे **पक्ष** कहते हैं । जो सिद्ध किया जा रहा है उसे **साध्य** कहते हैं । साध्य की सिद्धि के लिए दिए गए तर्क को **हेतु** (साधन) कहते हैं । जैसे 'इस पर्वत पर अग्नि है क्योंकि धुआँ दिख रहा है' । यहाँ 'इस पर्वत पर' – यह पक्ष है, 'अग्नि है' – यह साध्य है, 'क्योंकि धुआं दिख रहा है' – यह साधन है ।

इस ग्रन्थ की अनेकों गाथाओं की टीका में इसी प्रकार का अनुमान प्रयोग है । जैसे

| पक्ष | साध्य | साधन |
|---|---|---|
| जिनदेव | 100 इन्द्रों से वन्दित हैं | क्योंकि वे देवाधिदेव हैं । |
| समय (आगम) | सफल है | क्योंकि वह 4 गतियों का निवारण करने का कारण है |
| 5 अस्तिकाय का | सामान्य–विशेष अस्तित्व है | क्योंकि वे उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यमयी सामान्य–विशेष सत्ता में नियत हैं । |

ऐसे हेतुपूर्वक कथन आचार्य अमृतचंद्र और आचार्य जयसेन स्वामी दोनों ने ही किये हैं । हेतु को जानने पर तथ्य की गहराई और सुदृढ़ता का परिचय होता है । अतः इस पुस्तक में प्रतिज्ञा एवं हेतु को पृथक्–पृथक् स्पष्ट दिखाया है । यथासंभव टेबल्स बनाए हैं जिसमें प्रतिज्ञा बायीं तरफ और साधन (हेतु) दायीं तरफ रखा है। इसके अलावा लक्ष्य–लक्षण, विशेषण–विशेष्य भाव, भेद–प्रभेद आदि के लिए भी टेबल्स और चार्ट्स बनाये गए हैं ।

आचार्य अमृतचंद्र के अनुसार पंचास्तिकाय–संग्रह ग्रन्थ में कुल 171 गाथाएँ हैं और आचार्य जयसेन के अनुसार 181 गाथाएँ हैं । यद्यपि उपलब्ध कई प्रकाशनों में आचार्य

अमृतचंद्र कृत टीका में 173 गाथाएँ पायी जाती है; परन्तु इसमें 2 गाथाएँ अतिरिक्त हैं जिन पर आचार्य अमृतचन्द्र ने ना टीका लिखी है और ना ही आचार्य जयसेन अमृतचंद्रीय टीका में 173 गाथाएँ स्वीकार करते हैं । स्वयं आचार्य जयसेन ने इस बात को उद्धृत किया है कि आचार्य अमृतचंद्र के अनुसार 171 ही गाथाएँ हैं । यथा –

**इत्यादि पाठक्रमेणैकादशोत्तरशतगाथाभिः पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यरूपेण प्रथमो महाधिकारः अथवा स *एवामृतचन्द्रटीकाभिप्रायेण त्र्यधिकशतपर्यन्तश्च* । तदनन्तरं *'अभिवंदिऊण सिरसा'* इत्यादि पञ्चाशद्गाथाभिः सप्ततत्त्वनवपदार्थव्याख्यारूपेण द्वितीयो महाधिकारः अथवा स एवामृतचन्द्रटीकाभिप्रायेणाष्टाचत्त्वारिंशद्गाथापर्यंतश्च । अथानन्तरं *'जीवस्वभावो'* इत्यादि विंशतिगाथाभिर्मोक्षमार्गमोक्षस्वरूपकथनमुख्यत्वेन तृतीयो महाधिकार इति...**

**अर्थ : इत्यादि पाठक्रम से 111 गाथाओं द्वारा पञ्चास्तिकाय, छह द्रव्य के कथनरूप से प्रथम महाधिकार है । अथवा वही (प्रथम अधिकार) अमृतचन्द्राचार्य की टीका के अनुसार 103 गाथा पर्यंत है। उसके बाद *'अभिवंदिऊण सिरसा'* इत्यादि 50 गाथाओं द्वारा सात तत्त्व, नव पदार्थ के कथनरूप द्वितीय महाधिकार है और वही अमृतचन्द्राचार्य की टीका के अनुसार 48 गाथा पर्यंत है। इसके बाद *'जीवस्वभावो'* इत्यादि 20 गाथाओं द्वारा मोक्षमार्ग तथा मोक्ष-स्वरूप के कथन की मुख्यता से तीसरा महाधिकार है ।..**

अर्थात् आचार्य जयसेन के अनुसार अमृतचंद्रीय टीका में 103 + 48 + 20 = 171 गाथाएँ हैं । अतिरिक्त गाथाएँ कौन–सी है – इसके निर्धारण के लिए डॉ. उत्तमचन्दजी जैन, सिवनी द्वारा सम्पादित पंचास्तिकाय का सम्पादकीय देखना चाहिए । वहाँ इस पर विस्तार से ऊहापोह किया गया है ।

शेष 10 गाथाएँ जो जयसेन आचार्य की टीका में हैं, वे भी इस पुस्तक में दी गयी हैं। इन गाथाओं का क्रमांक पूर्व गाथा के क्रमांक के पश्चात् –1, –2 आदि लगाकर रखा गया है । इस प्रकार दोनों आचार्यों द्वारा स्वीकृत सभी गाथाएँ इस पुस्तक में हैं ।

इस पुस्तक का मूल आधार गाथाएँ और समय–व्याख्या टीका है । परन्तु जहाँ तात्पर्य–वृत्ति में विशेषता है, वहाँ का प्रदेय भी इसमें प्रस्तुत किया है ताकि दोनों टीकाओं का लाभ पाठक को प्राप्त हो सके। यथा – प्रथम गाथा की टीका में दिये गए हेतु, अतिशयता; द्वितीय गाथा की टीका में दिया गया अभिधान–अभिधेय संबंध आदि व्याख्यान तात्पर्य–वृत्ति से लिया गया है । गाथा के विषयों की सारणी भी तात्पर्य–वृत्ति के अनुसार ही बनाई गयी है । समय–व्याख्या टीका का हिंदी अनुवाद पं. परमेष्ठीदासजी कृत लिया गया है । टीका का संस्कृत पाठ ग्रन्थ का कलेवर बढ़ जाने

के भय से नहीं दिया गया है। विशेष जिज्ञासु अन्य उपलब्ध संस्कृत टीका से देखें । अनुवाद और टेबल्स आदि में यह ध्यान रखा गया है कि टीका के मूल शब्द यथावत् रहें । यद्यपि अनेक शब्द दुरूह हैं तथापि आचार्यों के शब्द वैसे ही पाठकों को प्राप्त हों इस उद्देश्य से शब्दों को भावार्थ में ना बदलकर वही शब्द सर्वत्र दिए हैं ।

यह पुस्तक समय–व्याख्या अथवा तात्पर्य–वृत्ति टीका का रिप्लेसमेंट नहीं है । यह इन टीकाओं को अध्ययन एवं याद रखने के लिए एक सहायक साधन है । यह गाथाओं और टीका को केवल आधुनिक शैली में प्रस्तुत करती है जिससे अध्येता उसे धारणा में भलीभांति बैठा सके । वाक्यों को भी इस तरह रखा गया है जिससे विशेषण–विशेष्य, साधन–साध्य, कर्ता–कर्म–करण, निमित्त–उपादान, भेद–प्रभेद आदि आसानी से समझ में आ सकें ।

यह पुस्तक उन लोगों के लिए विशेष उपयोगी है जो –

1. जो पंचास्तिकाय का सामान्य परिचय मात्र करना चाहते हैं, अथवा
2. पंचास्तिकाय का मूल टीकाओं से अध्ययन कर रहे हैं।

पुस्तक एवं प्रस्तुतिकरण को देखकर लोग टीका–सहित मूल–ग्रन्थ के अध्ययन में उत्साहित होंवे – यह इसका मूल उद्देश्य है । इस प्रकार सर्वजन के लिए यह एक उपयोगी पुस्तक होगी – ऐसा हमारा विश्वास है ।

पूज्य मुनि श्री 108 सुयशसागरजी महाराज, मुनि श्री 108 समर्थसागरजी महाराज ने इसे आद्योपांत देखकर इसकी सराहना की । बालब्र. मनोरमाजी छाबड़ा, उज्जैन ने बारीकी से इसे देखा एवं आवश्यक संशोधन, सुझाव दिए । तात्पर्यवृत्ति में समागत कई विषयों पर ध्यान दिलाकर इसमें प्रविष्ट कराया । बालब्र. पं. रतनलालजी ने इसकी प्रस्तावना लिखकर उपकृत किया । पं. रमेशचन्दजी बाँझल, इंदौर ने इसे देखकर संतोष व्यक्त किया एवं आवश्यक परामर्श दिए । बालब्र. जीतू भाई एवं बालब्र. वीतराग भाई अकलूज, बालब्र. डॉ. सुजाता रोटे, कुम्भोज बाहुबली द्वारा भी आवश्यक सुझाव प्राप्त हुए ।

प्रो. शांतिलालजी बड़जात्या, इंदौर ने पुनः–पुनः इस पर कार्य करने के लिए, प्रकाशित करने की प्रेरणा की । इस पुस्तक को प्रूफ–रीड भी किया ।

इसे कंपोज करने में अनेक कठिनाईयाँ थी परन्तु श्री राजेशजी कानूगो, डीसेन्ट ग्राफिक्स ने बहुत उत्साह और धैर्य के साथ अनेक बार बदलाव होने पर भी इसको पूरा तैयार किया । हम सभी के प्रति कृतज्ञ हैं ।

सभी चार्ट्स, टेबल्स को टीकाओं के अनुसार ही प्रस्तुत किया है; तथापि **'को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे'** के अनुसार त्रुटियाँ होना संभव है । अतः सुधी पाठकों से निवेदन है कि त्रुटियाँ सुधारकर पढ़े एवं मुझे भी अवगत कराएं, ताकि भविष्य में उनकी पुनरावृत्ति न होवे ।

**– विकास जैन (छाबड़ा), इन्दौर**

## हमारे द्वारा संचालित अन्य गतिविधियाँ एवं प्रकाशन

**1. तत्त्वार्थ सूत्रः रेखाचित्र एवं तालिकाओं में** : श्रीमती पूजा–प्रकाशजी छाबड़ा द्वारा लिखित तत्त्वार्थ–सूत्र पर अत्यंत सुन्दर पुस्तक जिसमें सम्पूर्ण ग्रन्थ को रेखाचित्र, तालिकाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है । सम्पूर्ण जैन समाज में यह बहुत लोकप्रिय हुई है । इसकी अब तक पाँच संस्करणों में 15000 से भी अधिक प्रतियाँ छप चुकी हैं ।

**2. गोम्मटसार जीवकाण्ड रेखाचित्र एवं तालिकाओं में** : श्री प्रकाशजी छाबड़ा द्वारा लिखित गोम्मटसार जीवकाण्ड पर पुस्तक जिसमें जीवकाण्ड जैसा गंभीर एवं कठिन विषय भी बहुत सरल रीति से प्रस्तुत किया गया है । सर्व मुनिसंघों में यह बहुत पसंद की गयी है ।

**3. गोम्मटसार शिक्षण शिविर** : दिसम्बर 2016 से श्री विकासजी छाबड़ा द्वारा गोम्मटसार के आद्योपांत अध्ययन कराने के लिए शिक्षण–शिविरों का आयोजन प्रारंभ किया गया है । इसके अंतर्गत प्रथम दो शिविरों में 400–400 से भी अधिक शिविरार्थियों ने भाग लेकर गोम्मटसार जीवकाण्ड का विधिवत अध्ययन किया । इसके आगे के शिविर भी आयोजित किये जा रहे हैं ।

**4. बाल संस्कार शिविर** : 2016 से श्री प्रकाशजी छाबड़ा द्वारा बच्चों और युवाओं के लिए ग्रीष्मकालीन बाल संस्कार शिविर का आयोजन प्रारंभ किया गया है। इसकी सबसे खास विशेषता यह है कि इसमें **स्मार्ट क्लासेज** के माध्यम से 2017 में 1300 से भी अधिक बच्चों और युवाओं ने जैन धर्म की शिक्षा प्राप्त की ।

5. **JainKosh.org** : यह वेबसाइट जैनेन्द्र सिद्धांत कोष को डिजिटल रूप में प्रस्तुत करती है । यहाँ आप सम्पूर्ण जिनागम के पारिभाषिक, सैद्धांतिक, ऐतिहासिक आदि विषयों पर आगम के सन्दर्भ में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं । इसके अलावा जैन आगम भी यहाँ पर डिजिटल रूप में रखे गए हैं जिन्हें आसानी से सर्च किया जा सकता है ।

6. **JainGames.org** : सभी वर्ग के लिए अत्यंत सुन्दर, ज्ञानवर्धक **Mobile** गेम्स तैयार किये गए हैं जिन्हें सभी लोग अपने मोबाइल पर डाउनलोड करके नए तरीके से जैनधर्म को जान सकें । अभी तक हमारे द्वारा 3 गेम्स बनाए गए हैं – 1) **KBDS: KBC** की थीम पर आधारित इस गेम में बेसिक लेवल के 1400 से भी अधिक प्रश्न हैं एवं छहढाला पर आधारित 3000 से भी अधिक प्रश्न हैं । इस गेम को अभी तक 25000 बार डाउनलोड किया जा चुका है । 2) **Jain5** : बिल्कुल नए कांसेप्ट वाला गेम

जिसमें एक प्रश्न के 9 विकल्पों में से 5 विकल्प आपको खोजने हैं । इसे बहुत पसंद किया गया एवं अभी तक यह 15000 बार डाउनलोड हो चुका है । 3) **Floating Letters**: शब्दों पर आधारित विश्व का पहला हिंदी गेम है । इसमें घूमते हुए अक्षरों से शब्द पहचानना होता है । इसमें 2500 शब्द हैं जिनके अर्थ खेल ही खेल में आप सीखते हैं । ये सभी गेम्स उपर्युक्त वेबसाइट पर उपलब्ध हैं ।

7. **Study Material**: अध्ययन करने और कराने के लिए आधुनिक विधि से तैयार किये गए स्टडी मटेरियल जिसमें चार्ट्स, टेबल्स, सूत्र, पिक्चर आदि का प्रयोग करके विषय को सरलतम और आकर्षक बनाया गया है । अभी तक पाठशाला, छहढाला, तत्त्वार्थ सूत्र, गोम्मटसार के स्टडी मटेरियल तैयार किये जा चुके हैं । इन सभी को आप निम्न वेबसाइट से प्राप्त कर सकते हैं ।

8. **ऑनलाइन कक्षा** : श्री विकासजी छाबड़ा द्वारा ऑनलाइन कक्षा ली जाती है जिसमें देश–विदेश के साधर्मी अध्ययन करते हैं । कक्षा से जुड़ने के लिए वेबसाइट पर जानकारी दी है ।

इसके अलावा अनेक विषयों के ऑडियो और वीडियो प्रवचन भी आनलाइन उपलब्ध हैं जिनकी जानकारी हमारी वेबसाइट से प्राप्त कर सकते हैं ।

हमारी वेबसाइट्स :

**www.JainKosh.org**

**www.JainGames.org**

**www.yjsg.in**

श्री विमलचंद माणकचंद छाबड़ा
दिगंबर जैन पारमार्थिक ट्रस्ट, इंदौर

ऊँ नमः ।। श्री वीतरागाय नमो नमः।।

# प्रस्तावना

आ. श्री 108 कुन्दकुन्द स्वामी, आ. अमृतचन्द्र स्वामी, आ. जयसेन स्वामी को बारम्बार नमोस्तु ।

श्री ग्रंथराज पंचास्तिकायजी वर्तमान में द्वादशांग का सार है। इसमें षट्–द्रव्य, पंचास्तिकाय, 7 तत्त्व, नव पदार्थ एवं मोक्षमार्ग का बहुत ही सुंदर वर्णन है। पंचास्तिकाय का लघुरूप से दर्शन द्रव्य–संग्रहजी में हो जाता है। यहाँ गाथाएं 171 अथवा 181 हैं, जो द्रव्य–संग्रह में मात्र 58 हैं। पंचास्तिकाय गाथा 26 में जीव का वर्णन नव प्रकार से किया गया है जिसमें **'कम्मसंजुत्तो'** पद तथा गाथा 122 **'अण्णेहिं पज्जयेहिं विविहेहिं'** पद धवलजी, महाधवलजी, व जयधवलजी का सार है; बीज रूप है। गाथा 119 **'ण हि इंदियाणि जीवा'** प्राभृत–त्रय – समयसारजी, प्रवचनसारजी व पंचास्तिकायजी का सार है। अंत में व्यवहाराभासी और निश्चयाभासी का भी सुंदर वर्णन है। इस पुस्तक के माध्यम से पंचास्तिकाय–संग्रह का एक बार फिर स्वाध्याय हो गया। इस पुस्तक में हर एक गाथा पर चार्ट–तालिका दी गई है जिससे विषय को समझने में काफी सरलता हो जाती है।

लेखक श्री विकासजी जैन में ज्ञान एवं वैराग्य का अद्भुत संयोग है। श्री विकास छाबड़ा ने अमेरिका में मास्टर ऑफ कंप्यूटर साइंस की उपाधि प्राप्त कर विश्व की सर्वोच्च कंपनी **"माइक्रोसाफ्ट कारपोरेशन"** अमेरिका में सॉफ्टवेयर इंजीनियर के रूप में कार्य किया। 8 वर्षों के अमेरिका प्रवास में भी आपका धार्मिक अध्ययन एवं अध्यापन चलता रहा।

आत्म–कल्याण की भावना से प्रेरित होकर श्री विकास जी छाबड़ा एवं उनकी धर्म–पत्नी श्रीमती सारिका छाबड़ा मात्र 27 वर्ष की उम्र में निवृत्त जीवन जीने का संकल्प कर भारत वापस आ गए। आप यहाँ अत्यंत सादगीमय एवं आदर्श श्रावक का जीवन यापन कर रहे हैं। अनेक ग्रंथों का गूढ़ अध्ययन किया है व शास्त्र प्रवचन, धार्मिक कक्षाओं में अध्यापन, शिविर आदि नई तकनीक (प्रोजेक्टर, कंप्यूटर) के माध्यम से सभी विषयों को सरलता से प्रस्तुत करते हैं । बच्चों एवं युवाओं हेतु भी आधुनिकतम गेम्स प्रसारित किए हैं जिससे उनमें जैन धर्म का ज्ञान हो सके ।

श्री विकासजी जैन जो प्रकाशजी छाबड़ा के लघु भ्राता हैं शीघ्रातिशीघ्र सिद्धत्व को प्राप्त करें एवं सभी भव्य आत्मा इस सुंदर रचना का उपयोग कर अपना कल्याण करें – यही मंगल भावना निरंतर भाता रहता हूं ।

आत्मार्थी जिनेन्द्र भक्त आपका रतनलाल जैन
इंद्रभवन, इंदौर, मध्यप्रदेश

(13–10–2017)

# अनुक्रमणिका


| विषय | गाथा क्र. | पृष्ठ क्र. |
|---|---|---|
| **प्रथम अधिकार** | | |
| **षड्द्रव्य पंचास्तिकाय वर्णन रूप प्रथम श्रुतस्कन्ध** | | |
| **समय शब्दार्थ पीठिका** | | |
| मंगलाचरण, ग्रन्थ प्रतिज्ञा | 1-2 | 7 |
| पंचास्तिकाय का संक्षेप से व्याख्यान | 3-5 | 12 |
| कालसहित पंचास्तिकाय की द्रव्य संज्ञा | 6 | 20 |
| संकर-व्यतिकर दोषों का परिहार | 7 | 21 |
| **द्रव्य पीठिका** | | |
| सामान्य-विशेष सत्ता का लक्षण | 8 | 23 |
| द्रव्य शब्द की व्युत्पत्ति | 9 | 26 |
| द्रव्य के 3 लक्षण | 10 | 28 |
| द्रव्य के 2 लक्षण | 11 | 31 |
| द्रव्य एवं गुण-पर्याय का संबंध | 12-13 | 32 |
| प्रमाण सप्तभंगी का व्याख्यान | 14 | 34 |
| द्रव्य का स्थापन | 15-19 | 37 |
| सिद्ध के असत् उत्पाद | 20 | 44 |
| उपसंहार | 21 | 47 |
| **काल द्रव्य प्रतिपादन** | | |
| जीवादि 5 अस्तिकायों की सूचना | 22 | 51 |
| निश्चयकाल का कथन | 23 | 52 |
| व्यवहारकाल की मुख्यता से कथन | 24-25 | 54 |

| | | |
|---|---|---|
| **जीवास्तिकाय** | | |
| अधिकार सूत्र गाथा | 26 | 57 |
| सर्वज्ञ सिद्धि परक | 27-28 | 60 |
| जीव सिद्धि परक | 29-31 | 63 |
| जीव की स्व-देह मात्र स्थिति | 32-33 | 66 |
| जीव का अमूर्तत्व ज्ञापनार्थ | 34-36 | 68 |
| चेतनत्व गुण की व्याख्या | 37-38 | 72 |
| ज्ञान-दर्शनोपयोग संबंधी | 39-41 | 75 |
| जीव और ज्ञान में अभेद-स्थापनार्थ | 42-44 | 83 |
| द्रव्य-गुणों में कथंचित् अभेद | 45-47 | 86 |
| समवाय संबंध निराकरणार्थ | 48-49 | 89 |
| गुण-गुणी के कथंचित् अभेद | 50-51 | 92 |
| विषय में दृष्टांत-दार्ष्टान्त | | |
| **कर्म कर्तृत्व-भोक्तृत्व-संयुक्तत्व** | | |
| समुदाय कथन | 52-54 | 93 |
| औदयिक आदि 5 भावों का कथन | 55 | 96 |
| कर्तृत्व की मुख्यतया से कथन | 56-61 | 97 |
| कर्तृत्व - भोक्तृत्व संबंधी पूर्वपक्ष | 62 | 103 |
| पूर्व पक्ष का परिहार | 63-69 | 103 |
| जीवास्तिकाय चूलिका | 70-72 | 109 |
| **पुद्गलास्तिकाय** | | |
| पुद्गल स्कन्ध का व्याख्यान | 73-75 | 112 |
| परमाणु व्याख्यान की मुख्यता | 76-80 | 116 |

| | | |
|---|---|---|
| पुद्गलास्तिकाय का उपसंहार | 81 | 127 |
| **धर्म - अधर्मास्तिकाय** | | |
| धर्मास्तिकाय का स्वरूप | 82-84 | 128 |
| अधर्मास्तिकाय स्वरूप कथन | 85 | 131 |
| धर्म-अधर्म का समर्थन, अस्तित्व के अभाव में दूषण आदि | 86-88 | 133 |
| **आकाश अस्तिकाय** | | |
| लोकाकाश-अलोकाकाश स्वरूप कथन | 89-90 | 138 |
| आकाश के गति-स्थिति हेतुत्व मानने पर दोष एवं निराकरण | 91-94 | 139 |
| धर्म-अधर्म-लोकाकाश का कथंचित् एकत्व-पृथक्त्व | 95 | 142 |
| **चूलिका** | | |
| चेतनत्व-अचेतनत्वादि प्रतिपादन | 96-98 | 143 |
| व्यवहार-निश्चय काल प्रतिपादन | 99-100 | 147 |
| काल का द्रव्यत्व-अकायत्व प्रतिपादन | 101 | 150 |
| स्वरूपलीनता का फल | 102-103 | 151 |
| **द्वितीय अधिकार** | | |
| **नव-पदार्थ-पूर्वक मोक्षमार्ग प्रपंच वर्णनरूप द्वितीय श्रुतस्कंध** | | |
| प्रतिज्ञा, व्यवहार मोक्षमार्ग | 104-107 | 154 |
| जीवाधिकार | 108-121 | 159 |

| | | |
|---|---|---|
| अजीवाधिकार | 122-125 | 170 |
| जीव-पुद्गल के संयोग से नवपदार्थ | 126-128 | 174 |
| पुण्य-पापाधिकार | 129-132 | 176 |
| शुभाशुभ आस्रव अधिकार | 133-138 | 181 |
| संवर अधिकार | 139-141 | 187 |
| निर्जरा अधिकार | 142-144 | 190 |
| बंध अधिकार | 145-147 | 194 |
| मोक्ष अधिकार | 148-151 | 197 |
| **मोक्षमार्ग प्रपञ्च सूचिका चूलिका** | | |
| मोक्षमार्ग का स्वरूप | 152 | 202 |
| स्वसमय-परसमय का सामान्य-विशेष विवरण | 153-157 | 204 |
| व्यवहार-निश्चय मोक्षमार्ग | 158-160 | 209 |
| भाव सम्यग्दृष्टि | 161 | 212 |
| निश्चय-व्यवहार रत्नत्रय का फल | 162 | 213 |
| स्थूल-सूक्ष्म परसमय व्याख्यान | 163-167 | 214 |
| पुण्यास्रव परिणाम का फल | 168-169 | 218 |
| शास्त्र तात्पर्य | 170 | 220 |
| शास्त्र परिसमाप्ति परक उपसंहार | 171 | 226 |

# ग्रन्थ - परिचय

| | | |
|---|---|---|
| **नाम** | पंचत्थियसंगहं सुत्तं अथवा पंचास्तिकाय संग्रह सूत्र | |
| **कर्ता** | आचार्य कुन्दकुन्द | |
| **टीकाकार** | आचार्य अमृतचन्द्र | आचार्य जयसेन |
| **टीका नाम** | समय व्याख्या | तात्पर्य वृत्ति |
| **गाथा प्रमाण** | 171 | 181 |
| **अधिकार संख्या** | 2 | 3 |
| **अधिकार नाम** | (1) षड्द्रव्य पंचास्तिकाय वर्णन रूप प्रथम श्रुतस्कन्ध (गाथा 1-103) | (1) पंचास्तिकाय षड्द्रव्य प्रतिपादक महाधिकार (गाथा 1-111) |
| | 2) नवपदार्थपूर्वक मोक्षमार्ग प्रपंचवर्णन रूप द्वितीय श्रुतस्कंध (गाथा 104-171) | (2) जीवादि नव पदार्थ प्रतिपादक महाधिकार (गाथा 112-161) |
| | | (3) निश्चय - व्यवहार मोक्षमार्ग प्रपंच चूलिका प्रतिपादक महाधिकार (गाथा 162-182) |
| **ग्रंथ प्रयोजन** | **(1) राग-द्वेष का त्याग कर, संसार दुखों से मुक्त होना। (गाथा 103)**<br>**(2) मार्ग की प्रभावना (गाथा 171)** | |

## ग्रन्थ के मंगल निमित्त आदि 6 व्याख्यान

| | |
|---|---|
| **1. मंगल** | इष्ट देवता को नमस्कार |
| **2. निमित्त** | शिवकुमार महाराज |

**3. हेतु (फल)**

- प्रत्यक्ष
  - साक्षात्
    - (1) अज्ञान का निराकरण
    - (2) असंख्यात गुणश्रेणि निर्जरा
  - परंपरा
    - (1) शिष्य-प्रतिशिष्य से पूजा-प्रशंसा प्राप्ति
    - (2) शिष्यों की प्राप्ति
- परोक्ष
  - अभ्युदय सुख (राजा आदि पदों से लेकर तीर्थंकर पदों की प्राप्ति)
  - निःश्रेयस सुख (अरहन्त, सिद्ध पद की प्राप्ति)

| | |
|---|---|
| **4. परिमाण** | **ग्रन्थ का प्रमाण**<br>ग्रन्थ परिमाण: शब्द की संख्या प्रमाण **अथवा** 171 गाथा प्रमाण<br>अर्थ परिमाण: अनन्त |
| **5. नाम** | पंचास्तिकाय संग्रह |
| **6. कर्ता** | (1) मूलकर्ता ⟶ श्री वर्धमान स्वामी<br>(2) उत्तर कर्ता ⟶ श्री गौतम गणधर देव<br>(3) उत्तरोत्तर कर्ता ⟶ अनेकों, आचार्य परंपरा |

**मंगल का अर्थ**

- मं = पाप; गल = गलाता है अर्थात् जो पापों को गलाये
- मंगं = पुण्य, सुख;ला = लाता है अर्थात् जो सुख को लाता है

## मंगल करने के प्रयोजन

- नास्तिकता का परिहार
- शिष्टाचार का पालन
- पुण्य की प्राप्ति
- निर्विघ्न समाप्ति

## देवता

- इष्ट (जो स्वयं के लिए पूज्य हैं)
- अधिकृत (ग्रन्थ के प्रारम्भ में नमस्करणीय रूप से विवक्षित हैं)
- अभिमत (सभी लोगों को बिना विवाद के जो स्वीकार हैं।)

## नमस्कार के प्रकार

- आशीर्वादात्मक (स्वस्ति श्री ऋषभः स्वस्ति श्री अजितः आदि )
- वस्तुकथन स्वरूप (आप्त मीमांसा, जिन स्तुति शतक आदि)
- नमन क्रिया (णमो जिणाणं, णमो अरिहंताणं आदि)

## मंगल के भेद

**1 मुख्य -**
जिनेन्द्र भगवान के गुण-स्तोत्र रूप

**2 अमुख्य -**
लोक में मानी गई मंगल सामग्री

**1 निबद्ध -**
ग्रन्थकार द्वारा रचित

**2 अनिबद्ध -**
अन्य ग्रन्थ से लाया हुआ

## समय-व्याख्या मंगलाचरण

सहजानन्दचैतन्यप्रकाशाय महीयसे।
नमोऽनेकान्तविश्रान्तमहिम्ने परमात्मने ॥ १ ॥

अर्थ: सहज आनंद एवं सहज चैतन्यप्रकाशमय होने से जो अति महान है तथा अनेकांत में स्थित जिसकी महिमा है, उस परमात्मा को नमस्कार हो।

**परमात्मा को नमस्कार हो**

(कैसे हैं परमात्मा?)

- जो महान हैं
  - (महान क्यों ? )
    - सहज-आनन्दमयी व चैतन्य प्रकाशमयी होने से
- जो अनेकान्त की महिमा में स्थित हैं।

दुर्निवारनयानीक विरोधध्वंसनौषधि: ।
स्यात्कारजीविता जीयात्जैनी सिद्धान्तपद्धति: ॥ २ ॥

अर्थ: स्यात्कार जिसका जीवन है ऐसी जैनी सिद्धांत पद्धति जो कि दुर्निवार नयसमूह के विरोध का नाश करने वाली औषधि है वह जयवंत हो।

**जैनों की सिद्धान्त पद्धति जयवन्त होवे**

(कैसी है यह पद्धति?)

- दुर्निवार नयों के समूह के विरोध को मेटने वाली औषधि
- स्यात्कार जिसका जीवन है।

सम्यग्ज्ञानामलज्योतिर्जननी द्विनयाश्रया।
अथात: समयव्याख्या संक्षेपेणाऽभिधीयते॥ ३ ॥

अर्थ: अब यहाँ से जो सम्यग्ज्ञान-रूपी निर्मल ज्योति की जननी है ऐसी द्विनयाश्रित समय-व्याख्या संक्षेप से कही जाती है।

**समय व्याख्या टीका कही जाती है।**

**(कैसी है यह टीका?)**

| | |
|---|---|
| सम्यग्ज्ञान की अमल ज्योति की जननी | द्विनयाश्रित (द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक) (निश्चय - व्यवहार) |

पंचास्तिकायषड्द्रव्यप्रकारेण प्ररूपणम्।
पूर्वं मूलपदार्थानामिहसूत्रकृता कृतम्॥ ४ ॥

अर्थ: यह प्रथम सूत्रकर्ता ने मूल पदार्थों का पंचास्तिकाय एवं षड्द्रव्य के प्रकार से प्ररूपण किया है।

जीवाजीवद्विपर्यायरूपाणां चित्रवर्त्मनाम्।
ततो नवपदार्थानां व्यवस्था प्रतिपादिता॥ ५ ॥

अर्थ: जीव और अजीव इन दो की पर्यायोंरूप नवपदार्थों की कि जिनके मार्ग अर्थात् कार्य भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं उनकी व्यवस्था प्रतिपादित की है।

ततस्तत्त्वपरिज्ञानपूर्वेण त्रितयात्मना।
प्रोक्ता मार्गेण कल्याणी मोक्षप्राप्तिरपश्चिमा ॥ ६ ॥

अर्थ: पश्चात् तत्त्व के परिज्ञानपूर्वक त्रयात्मक मार्ग से कल्याणस्वरूप उत्तम मोक्ष प्राप्ति कही है।

| ग्रन्थ की विषय-वस्तु | |
|---|---|
| **प्रथम अधिकार** | मूल पदार्थों का पंचास्तिकाय एवं षड्द्रव्य के प्रकार से प्ररूपण |
| **द्वितीय अधिकार** | (1) जीव-अजीव की पर्यायरूप नव-पदार्थों की व्यवस्था का प्रतिपादन<br>(2) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रात्मक मार्ग से कल्याणरूप उत्तम मोक्ष की प्राप्ति का कथन |

## पीठिका की विषय-वस्तु

| क्रं. | विषय | गाथा क्रं. | कुल गाथाएँ |
|---|---|---|---|
| 1. | मंगलाचरण, ग्रन्थ प्रतिज्ञा | 1-2 | 2 |
| 2. | पंचास्तिकाय का संक्षेप से व्याख्यान | 3-5 | 3 |
| 3. | कालसहित पंचास्तिकाय की द्रव्य संज्ञा | 6 | 1 |
| 4. | संकर-व्यतिकर दोषों का परिहार | 7 | 1 |
| | | **कुल गाथाएँ** | **7** |

# प्रथम अधिकार

इंदसदवंदियाणं तिहुवणहिदमधुरविसदवक्काणं ।

अंतातीदगुणाणं णमो जिणाणं जिदभवाणं ॥१॥

**गाथार्थ: सौ इन्द्रों से पूजित, तीनों लोकों को हितकर, मधुर और विशद वचनों युक्त, अनन्त गुणों से सम्पन्न, जितभवी (संसार को जीतनेवाले) जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार हो।**

**टीका :** यहाँ (इस गाथा में) ''जिनों को नमस्कार हो'' ऐसा कहकर शास्त्र के आदि में जिन को भावनमस्काररूप असाधारण मंगल कहा। ''जो अनादिप्रवाह से प्रवर्तते (चले आ रहे) हुए अनादि प्रवाह से ही प्रवर्तमान (चले आ रहे) सौ-सौ इन्द्रों से वन्दित हैं'' ऐसा कहकर सदैव देवाधिदेवपने के कारण वे ही (जिनदेव ही) असाधारण नमस्कार के योग्य हैं - ऐसा कहा। ''जिनकी वाणी अर्थात् दिव्यध्वनि तीन लोक को ऊर्ध्व-अधो-मध्य लोकवर्ती समस्त जीवसमूह को निर्बाध विशुद्ध आत्मतत्त्व की उपलब्धि का उपाय कहने वाली होने से हितकर है, परमार्थ-रसिक जनों के मन को हरने वाली होने से मधुर है और समस्त शंकादि दोषों के स्थान दूर कर देने से विशद (निर्मल, स्पष्ट) है'' ऐसा कहकर (जिनदेव) समस्त वस्तु के यथार्थ स्वरूप के उपदेशक होने से विचारवंत बुद्धिमान पुरुषों के बहुमान के योग्य हैं - ऐसा कहा। ''अनन्त क्षेत्र से अन्त रहित और काल से अन्त रहित, परमचैतन्यशक्ति के विलासस्वरूप गुण जिनके वर्तते हैं'' ऐसा कहकर (जिनों को) परम अद्भुत ज्ञानातिशय प्रगट होने के कारण ज्ञानातिशय को प्राप्त योगीन्द्रों से भी वन्द्य हैं ऐसा कहा। ''भव अर्थात् संसार पर जिन्होंने विजय प्राप्त की है'' ऐसा कहकर कृतकृत्यपना प्रगट हो जाने से वे ही (जिन ही) अन्य अकृतकृत्य जीवों को शरणभूत हैं - ऐसा उपदेश दिया। ऐसा सर्व पदों का तात्पर्य है ।।1।।

| जिन की वाणी है | क्यों (हेतु) |
|---|---|
| (1) हितकर | (1) निर्बाध विशुद्ध आत्मतत्त्व की उपलब्धि का उपाय कहने वाली होने से।<br>(2) शुद्धात्म स्वरूप की प्राप्ति के उपाय की प्रतिपादक होने से। |
| (2) मधुर | (1) परमार्थ रसिक जनों के मन को हरने वाली होने से।<br>(2) परम समरसी भाव के रसिक जनों को मनोहारी होने से। |
| (3) विशद | (1) समस्त शंकादि दोषों को दूर करने वाली होने से।<br>(2) संशय-विपर्यय-अनध्यवसाय से रहित होने के कारण।<br>(3) 7 तत्त्व, 9 पदार्थ, 5 अस्तिकाय, 6 द्रव्य की प्रतिपादक होने से।<br>(4) पूर्वापर विरोध आदि दोषों से रहित होने से।<br>(5) सभी जीवों को अपनी-अपनी भाषा में स्पष्ट अर्थ की प्रतिपादक होने से।<br>(6) सभी जीवों को समझाने वाली होने से। |

| विशेषण | इस विशेषण से जिनदेव हैं | क्यों (हेतु) |
|---|---|---|
| इंदसद वंदियाणं | असाधारण नमस्कार के योग्य। | सदैव देवाधिदेवपने के कारण |
| तिहुवण हिदमधुर विसदवक्काणं | बुद्धिमान पुरुषों के द्वारा बहुमान के योग्य। | समस्त वस्तु के यथार्थ - स्वरूप के उपदेशक होने से |
| अंतातीद गुणाणं | ज्ञानातिशयता को प्राप्त योगीन्द्रों से भी वंद्य। | परम अद्भुत ज्ञानातिशय प्रगट होने के कारण |
| जिदभवाणं | अन्य अकृतकृत्य जीवों को शरणभूत। | कृतकृत्यता प्रगट हो जाने से |

## इस विशेषण से क्या सूचित होता है

| विशेषण | क्या अतिशयता सूचित |
|---|---|
| इंदसदवंदियाणं | पूजातिशयता |
| तिहुवणहिद मधुर विसदवक्काणं | वचनातिशयता |
| अंतातीद गुणाणं | ज्ञानातिशयता |
| जिदभवाणं | घातिकर्म-अपायातिशयता |

**जिन किसे कहते हैं ?**

↳ कर्मरूपी शत्रुओं को जो जीतते हैं।

↳ कर्म कैसे हैं ?

↳ अनेक भवरूपी वन और विषयरूपी दुःखों को प्राप्त कराने में कारणभूत।

समणमुहुग्गदमट्ठं चदुग्गदिणिवारणं सणिव्वाणं ।
एसो पणमिय सिरसा समयमिणं सुणह वोच्छामि ॥२॥

**गाथार्थ: श्रमण के मुख से निकले हुए अर्थमय, चतुर्गति का निवारण करनेवाले, निर्वाण सहित (निर्वाण को कारणभूत) इस समय को सिरसा प्रणाम कर मैं इसे कहूँगा, तुम सुनो!।**

**टीका :** समय अर्थात् आगम; उसे प्रणाम करके स्वयं उसका कथन करेंगे ऐसी यहाँ (श्रीमद् भगवत्कुंदकुन्दाचार्यदेव ने) प्रतिज्ञा की है।

वह (समय) प्रणाम करने एवं कथन करने योग्य है; क्योंकि वह आप्त द्वारा उपदिष्ट होने से सफल है । वहाँ, उसका आप्त द्वारा उपदिष्टपना इसलिए है कि जिससे वह "श्रमण के मुख से निकला हुआ अर्थमय" है। 'श्रमण' अर्थात् महाश्रमण-सर्वज्ञ-वीतराग-देव; और 'अर्थ' अर्थात् अनेक शब्दों के सम्बन्ध से कहा जाने वाला, वस्तुरूप से एक ऐसा पदार्थ । पुनश्च उसकी (समय की) सफलता इसलिए है कि जिससे वह समय (१) "नारकत्व, तिर्यंचत्व, मनुष्यत्व तथा देवत्व-स्वरूप चार गतियों का निवारण" करने के कारण और (२) शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धिरूप "निर्वाण का परम्परा से कारण" होने के कारण (१) परतंत्रतानिवृत्ति जिसका लक्षण है और (२) स्वतंत्रताप्राप्ति जिसका लक्षण है ऐसे फलसहित है ।।2।।

## समय = आगम

| | प्रतिज्ञा | हेतु |
|---|---|---|
| 1. | समय प्रणाम एवं कथन करने योग्य है। | आप्त द्वारा उपदिष्ट होकर सफल होने से |
| 2. | समय आप्त द्वारा उपदिष्ट है | श्रमण के मुख से निकला अर्थमय होने से |
| 3. | समय सफल है | (1) 4 गतियों का निवारण करने वाला होने से (परतंत्रता निवृत्ति)<br>(2) शुद्धात्म तत्त्व की प्राप्तिरूप निर्वाण का परंपरा कारण होने से (स्वतंत्रता प्राप्ति) |

**श्रमण** → सर्वज्ञ वीतरागी महाश्रमण

**अर्थ** → अनेक शब्दों के संबंध से कहा जाने वाला वस्तुतः एक पदार्थ।

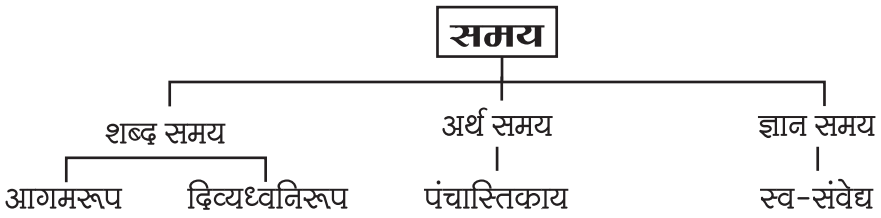


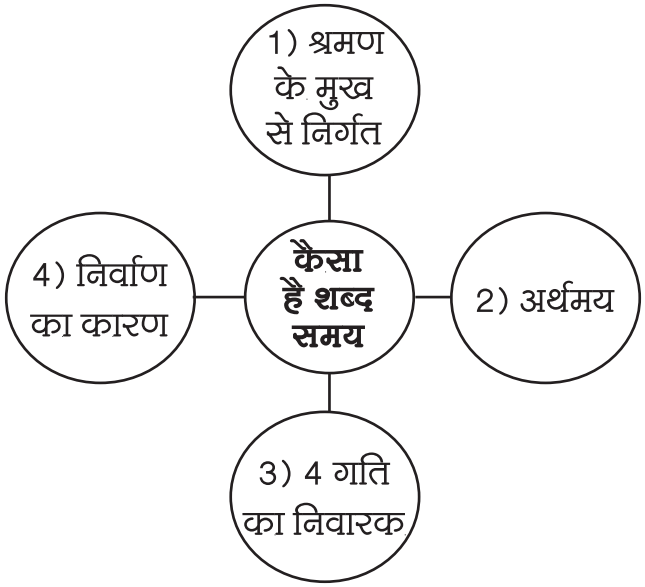


| ग्रन्थ के व्याख्यान-व्याख्येय आदि संबंध | |
|---|---|
| मूल सूत्र = व्याख्येय | टीका = व्याख्यान |
| द्रव्यागमरूप शब्द समय = अभिधान/वाचक | पंचास्तिकाय-रूप अर्थ समय = अभिधेय/वाच्य |
| **फल/प्रयोजन = अज्ञान नाश से लेकर निर्वाण सुख।** | |

समवाओ पंचण्हं समउ त्ति जिणुत्तमेहि पण्णत्तं ।
सो चेव हवदि लोगो तत्तो अमओ अलोगो खं ॥३॥

**गाथार्थ: पाँच अस्तिकायों का समवायरूप समय जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहा गया है, वही लोक है तथा उससे आगे असीम अलोक नामक आकाश है।**

**टीका** : यहाँ (इस गाथा में) शब्दरूप से, ज्ञानरूप से और अर्थरूप से (शब्दसमय, ज्ञानसमय और अर्थसमय) ऐसे तीन प्रकार से "समय" शब्द का अर्थ कहा है तथा लोक-अलोकरूप विभाग कहा है।

वहाँ, (१) 'सम' अर्थात् मध्यस्थ यानी जो रागद्वेष से विकृत नहीं हुआ; 'वाद' अर्थात् वर्ण (अक्षर), पद (शब्द) और वाक्य के समूहवाला पाठ । पाँच अस्तिकाय का 'समवाद' अर्थात् मध्यस्थ (रागद्वेष से विकृत नहीं हुआ) पाठ (मौखिक या शास्त्रारूढ़ निरूपण) वह शब्दसमय है, अर्थात् शब्दागम वह शब्दसमय हैं। (२) मिथ्यादर्शन के उदय का नाश होने पर, उस पंचास्तिकाय का ही सम्यक् अवाय अर्थात् सम्यक् ज्ञान वह ज्ञानसमय है, अर्थात् ज्ञानागम वह ज्ञानसमय है । (३) कथन के निमित्त से ज्ञात हुए उस पंचास्तिकाय का ही वस्तुरूप से समवाय अर्थात् समूह वह अर्थसमय है, अर्थात् सर्वपदार्थसमूह वह अर्थसमय है । उसमें यहाँ ज्ञानसमय की प्रसिद्धि के हेतु शब्दसमय के सम्बन्ध से अर्थसमय का कथन (श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव) करना चाहते हैं ।

अब, उसी अर्थसमय का, लोक और अलोक के भेद के कारण द्विविधपना है । वही पंचास्तिकायसमूह जितना है, उतना लोक है । उससे आगे अमाप अर्थात् अनंत अलोक है । वह अलोक अभाव-मात्र नहीं है किन्तु पंचास्तिकायसमूह जितना क्षेत्र छोड़कर शेष अनन्त क्षेत्र वाला आकाश है (अर्थात् अलोक शून्यरूप नहीं है किन्तु शुद्ध आकाशद्रव्यरूप है ।) ।।3।।

| पाँच अस्तिकायों का समवाद अथवा समवाय समय है। | | |
|---|---|---|
| **(1) शब्द समय (शब्दागम)** | सम<br>(राग-द्वेष से विकृत नहीं हुआ)<br>⇉ मध्यस्थ पाठ/वचनादि।<br>अर्थात् 5 अस्तिकायों का मध्यस्थ पाठ | + वाद<br>+ (अक्षरादि के समूह वाला पाठ)<br>= शब्द समय |
| **(2) ज्ञान-समय (ज्ञानागम)** | सम्<br>(मिथ्यादर्शन के उदय रहित)<br>अर्थात् पंचास्तिकाय का सम्यक् ज्ञान | + अवाय<br>+ (ज्ञान) |
| **(3) अर्थ-समय** | समवाय<br>अर्थात् पाँच अस्तिकाय का वस्तुरूप से (यथार्थ) समूह। | = समूह |
| **प्रयोजन ⇉** | ज्ञान समय की प्रसिद्धि के लिए<br>शब्द समय के सम्बन्ध से<br>अर्थ समय का कथन किया है। | |

| अर्थ समय | | |
|---|---|---|
| **भेद** | **लोक** | **अलोक** |
| **स्वरूप** | पंचास्तिकाय का समूह | लोक से आगे शेष आकाश |
| **विशेषता** | मर्यादित, माप सहित | अमित, अनन्त |

जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा तहेव आगासं ।
अत्थित्तम्हि य णियदा अणण्णमइया अणुमहंता ॥४॥

**गाथार्थ: जीव, पुद्गलकाय, धर्म, अधर्म और आकाश अस्तित्व में नियत, अनन्यमय और अणुमहान है।**

**टीका :** यहाँ (इस गाथा में) पाँच अस्तिकायों की विशेषसंज्ञा, सामान्य-विशेष अस्तित्व तथा कायत्व कहा है। वहाँ जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश यह उनकी विशेष संज्ञाएं अन्वर्थ जानना ।

वे उत्पाद-व्यय, ध्रौव्यमयी सामान्यविशेषसत्ता में नियत-व्यवस्थित (निश्चित विद्यमान) होने से उनके सामान्यविशेष-अस्तित्व भी है ऐसा निश्चित करना चाहिये । वे अस्तित्व में नियत होने पर भी अस्तित्व से अनन्य नहीं हैं; क्योंकि ये सदैव अपने से निष्पन्न (अर्थात् अपने से सत्) होने के कारण (अस्तित्व से) अनन्यमय हैं। "अस्तित्व से अनन्यमय" होने पर भी उनका "अस्तित्व में नियतपना" नयप्रयोग से है। भगवान ने दो नय कहे हैं- द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। वहाँ कथन एक नय के अधीन नहीं होता किन्तु उन दोनों नयों के अधीन होता है। इसलिये वे पर्यायार्थिक कथन से जो अपने से कथंचित् भिन्न भी है ऐसे अस्तित्व में व्यवस्थित (निश्चित स्थित) हैं और द्रव्यार्थिक कथन से स्वयमेव सत् (विद्यमान) होने के कारण अस्तित्व से अनन्यमय हैं ।

उनके कायपना भी है क्योंकि वे अणुमहान हैं। यहाँ अणु अर्थात् प्रदेश-मूर्त और अमूर्त निर्विभाग (छोटे से छोटे) अंश; 'उनके द्वारा (बहु प्रदेशों द्वारा) महान हो' वह अणुमहान; अर्थात् प्रदेशप्रचयात्मक (प्रदेशों के समूहमय) हो वह अणुमहान है । इस प्रकार उन्हें (उपर्युक्त पाँच द्रव्यों को) कायत्व सिद्ध हुआ । 'दो अणुओं (दो प्रदेशों) द्वारा महान हो' वह अणुमहान ऐसी व्युत्पत्ति से द्वि-अणुक पुद्गल-स्कन्धों को भी (अणु-महानपना होने से) कायत्व है । व्यक्ति और शक्तिरूप से 'अणु तथा महान' होने से परमाणुओं को भी, उनके एक प्रदेशात्मकपना होने पर भी (अणुमहानपना सिद्ध होने से) कायत्व सिद्ध होता है। कालाणुओं को व्यक्ति-अपेक्षा से तथा शक्ति-अपेक्षा से प्रदेशप्रचयात्मक महानपने का अभाव होने से, यद्यपि वे अस्तित्व में नियत हैं तथापि, उनके अकायत्व है, ऐसा इसी से (इस कथन से ही) सिद्ध हुआ। इसलिये, यद्यपि वे सत् हैं तथापि, उन्हें अस्तिकाय के प्रकरण में नहीं लिया है । ।। 4 ।।

## पाँच अस्तिकाय

जीव | पुद्गल | धर्म | अधर्म | आकाश

| प्रतिज्ञा | हेतु |
|---|---|
| पाँचों अस्तिकायों का सामान्य-विशेष अस्तित्व है। | क्योंकि वे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमयी सामान्य विशेष सत्ता में नियत/व्यवस्थित हैं। |
| **तब अस्तिकाय और अस्तित्व अन्य-अन्य होंगे?** | |
| नहीं, पाँचों अस्तिकाय अस्तित्व से अनन्य हैं, | क्योंकि वे सदैव ही अपने से निष्पन्न हैं। |
| **तब अस्तिकाय अस्तित्व से अनन्य ही रहा, अस्तित्व में नियत नहीं हुआ।** | |
| नहीं, दोनों ही हैं। | नय प्रयोग से। |
| (1) **पर्यायार्थिक नय** से अस्तिकाय स्वयं से कथंचित् भिन्न अस्तित्व में नियत हैं। (2) **द्रव्यार्थिक नय** से अस्तिकाय स्वयं सत् होने के कारण अस्तित्व से अनन्यमय हैं। | |

**उन अस्तिकायों का कायपना है, क्योंकि वे अस्तिकाय अणुमहान हैं।**

अणु + महान = अणुमहान

अणु → प्रदेश

महान → अनेक

अणुमहान = अनेक प्रदेशों का प्रचय

प्रदेश → मूर्त प्रदेश, अमूर्त प्रदेश

**प्रश्न** - अणु को प्रदेश संज्ञा कैसे है?

**उत्तर** - अणु से प्रदेश नापा जाता है, अतः उपचार से मापक अणु को भी प्रदेश कहा जाता है।

**नोट** - गाथा में पहले पर्यायार्थिक नय का फिर द्रव्यार्थिक नय का वचन है क्योंकि संसारी को पहले भेद से परिचय दिया जाता है, फिर अभेद से।

| अस्तिकायों का अणुमहानपना | | |
|---|---|---|
| (1) जीव, धर्म, अधर्म, आकाश | → | अनेक प्रदेशात्मक, अतः अणुमहान |
| (2) महास्कन्ध से त्रि-अणुक तक के पुद्गल | → | अनेक प्रदेशात्मक अतः अणुमहान |
| (3) द्विअणुक | → | दो अणुओं से महान, अतः अणुमहान |
| (4) पुद्गल परमाणु | → | व्यक्ति अपेक्षा अणु, शक्ति अपेक्षा महान, अतः अणुमहान |
| (5) कालाणु अणुमहान नहीं ? | → | शक्ति और व्यक्ति अपेक्षा भी महान नहीं , अत: अणु-महान नहीं। |

**भावार्थ - अनंत ज्ञानादिरूप शुद्ध जीवास्तिकाय ही उपादेय है।**

जेसिं अत्थि सहाओ गुणेहिं सह पज्जएहिं विविएहिं ।
ते होंति अत्थिकाया णिप्पण्णं जेहिं तइलोक्कं ॥५॥

**गाथार्थ: जिनका विविध गुणों और पर्यायों के साथ अस्तिस्वभाव है, वे अस्तिकाय हैं। उनसे तीन लोक निष्पन्न हैं।**

**टीका :** यहाँ, पाँच अस्तिकायों को अस्तित्व किस प्रकार है और कायत्व किस प्रकार है वह कहा है ।

वास्तव में अस्तिकायों को विविध गुणों और पर्यायों के साथ स्वपना-अपनापन-अनन्यपना है । वस्तु के व्यतिरेकी-विशेष वे पर्यायें हैं और अन्वयी-विशेष वे गुण हैं। इसलिये एक पर्याय से प्रलय को प्राप्त होने वाली, अन्य पर्याय से उत्पन्न होने वाली और अन्वयी गुण से ध्रुव रहने वाली एक ही वस्तु को व्यय-उत्पाद-ध्रौव्य लक्षण अस्तित्व घटित होता ही है । और यदि गुणों तथा पर्यायों के साथ (वस्तु को) सर्वथा अन्यत्व हो तब तो अन्य कोई विनाश को प्राप्त होगा, अन्य कोई प्रादुर्भाव को (उत्पाद को) प्राप्त होगा और कोई अन्य ध्रुव रहेगा। इस प्रकार सब

विप्लव को प्राप्त हो जायेगा । इसलिये (पाँच अस्तिकायों को) अस्तित्व किस प्रकार है तत्सम्बन्धी यह (उपरोक्त) कथन सत्य-योग्य-न्याययुक्त है ।

अब, (उन्हें) कायत्व किस प्रकार है उसका उपदेश किया जाता हैः-जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश यह पदार्थ अवयवी हैं । प्रदेश नाम के उनके जो अवयव हैं वे भी परस्पर व्यतिरेक वाले होने से पर्यायें कहलाती हैं । उनके साथ उन (पाँच) पदार्थों को अनन्यपना होने से कायत्वसिद्धि घटित होती है । परमाणु (व्यक्ति-अपेक्षा से) निरवयव होने पर भी उनको सावयवपने की शक्ति का सद्भाव होने से कायत्वसिद्धि निरपवाद है । वहाँ ऐसी आशंका करना योग्य नहीं है कि पुद्गल के अतिरिक्त अन्य पदार्थ अमूर्तपने के कारण अविभाज्य होने से उनके सावयवपने की कल्पना न्यायविरुद्ध (अनुचित) है । आकाश अविभाज्य होने पर भी उसमें 'यह घटाकाश है, यह अघटाकाश (पटाकाश) है'-ऐसी विभागकल्पना दृष्टिगोचर होती ही है । यदि वहाँ विभाग की कल्पना न की जाये तो जो घटाकाश है वही अघटाकाश हो जायेगा; और वह तो इष्ट नहीं है । इसलिये कालाणुओं के अतिरिक्त अन्य सर्व में कायत्वनाम का सावयवपना निश्चित करना चाहिये ।

उनकी जो तीन लोकरूप निष्पन्नता (रचना) कही वह भी उनका अस्तिकायपना सिद्ध करने के साधन रूप से कही है । वह इस प्रकार है-

(१) ऊर्ध्व-अधो-मध्य तीन लोक के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य वाले भाव, जो कि तीन लोक के विशेष-स्वरूप हैं, भवते हुए (परिणमित होते हुए) अपने मूल-पदार्थों का गुण-पर्याययुक्त अस्तित्व सिद्ध करते हैं ।

(२) पुनश्च, धर्म, अधर्म और आकाश यह प्रत्येक पदार्थ ऊर्ध्व-अधो-मध्य ऐसे लोक के (तीन) विभागरूप से परिणमित होने से उनके कायत्व नाम का सावयवपना है ऐसा अनुमान किया जा सकता है । प्रत्येक जीव के भी ऊर्ध्व-अधो-मध्य ऐसे तीन लोक के विभागरूप से परिणमित लोकपूरण अवस्थारूप व्यक्ति की शक्ति का सदैव सद्भाव होने से जीवों को भी कायत्व नाम का सावयवपना है ऐसा अनुमान किया ही जा सकता है । पुद्गल भी ऊर्ध्व-अधो-मध्य ऐसे लोक के (तीन) विभागरूप से परिणत महास्कंधपने की प्राप्ति की व्यक्तिवाले अथवा शक्तिवाले होने से उन्हें भी वैसी (कायत्व नाम की) सावयवपने की सिद्धि ही है ।। 5 ।।

**वस्तु के व्यतिरेकी विशेष = पर्याय**
**वस्तु के अन्वयी विशेष = गुण**

| वस्तु है |
|---|
| (1) एक पर्याय से प्रलय को प्राप्त होने वाली |
| (2) अन्य पर्याय से उत्पन्न होने वाली |
| (3) अन्वयी गुण से ध्रुव रहने वाली। |
| अतः व्यय-उत्पाद-ध्रौव्य लक्षणरूप अस्तित्व सिद्ध होता ही है। |

| यदि अस्तिकाय व गुण-पर्यायों का सर्वथा अन्यत्व हो, तो? |
|---|
| (1) अन्य कोई नाश को प्राप्त होगा, |
| (2) अन्य कोई प्रादुर्भाव को प्राप्त होगा, |
| (3) कोई अन्य ध्रुव रहेगा। |
| अर्थात् सब अव्यवस्था हो जाएगी। |
| अतः अस्तिकायों का गुण-पर्यायों के साथ अनन्यपना है एवं उनका अस्तित्व व्यय-उत्पाद-ध्रौव्यात्मक है। |

| कायत्व सिद्धि | | |
|---|---|---|
| जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश | = | अवयवी |
| प्रदेश | = | अवयव |
| ये अवयव भी पर्याय कहलाते हैं, क्योंकि वे परस्पर व्यतिरेक वाले हैं। इन प्रदेशरूप पर्यायों का इन पदार्थों से अनन्यपना है। | | |
| अतः इन पाँच पदार्थों में कायत्व सिद्धि होती है। | | |

**प्रश्न –** परमाणु के कायत्व नहीं है क्योंकि वह निरवयव है।

**उत्तर –** नहीं, क्योंकि उसके सावयवपने की शक्ति का सद्भाव है।

**प्रश्न –** पुद्गल के अतिरिक्त अन्य पदार्थ अमूर्तपने के कारण अविभाज्य हैं, अतः वे सावयव नहीं है।

**उत्तर –** नहीं, आकाश अविभाज्य, अमूर्त होने पर भी उसमें विभाग कल्पना होती है। जैसे यह घटाकाश है, यह अघटाकाश है।

**प्रश्न –** यह विभाग कल्पना नहीं की जा सकती।

**उत्तर –** तो जो घटाकाश है, वही अघटाकाश बन जाएगा। जो कि इष्ट नहीं है।

**अतः अमूर्त पदार्थों (कालाणु को छोड़कर) में भी सावयवत्व पाया जाता है।**

- तीन लोक के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य वाले, विशेष-स्वरूप भाव परिणमित होते हैं
- वे मूल पदार्थों का गुण-पर्याययुक्त अस्तित्व सिद्ध करते हैं।

| पदार्थों | को सावयवत्व है | क्योंकि |
|---|---|---|
| आकाश, धर्म, अधर्म | को सावयवत्व है। | यह ऊर्ध्व-अधो-मध्य ऐसे लोक के 3 विभागरूप से परिणमित हैं। |
| जीव | को सावयवत्व है। | जीव को लोकपूरण अवस्थारूप व्यक्ति की शक्ति का सदैव सद्भाव है। |
| पुद्गल | को सावयवत्व है। | पुद्गल 3 लोक के विभागरूप परिणत महास्कन्ध की प्राप्ति की व्यक्ति एवं शक्ति-वाले हैं। |

**भावार्थ –** शुद्ध जीवास्तिकाय की जो अनन्त ज्ञानादि गुणसत्ता, सिद्ध पर्याय सत्ता, शुद्ध असंख्यात प्रदेशरूप कायत्व है, वही उपादेय है।

ते चेव अत्थिकाया तिक्कालियभावपरिणदा णिच्चा।
गच्छंति दवियभावं परियट्टणलिंगसंजुत्ता ।।६।।

**गाथार्थ :- जो तीनों कालों के भावोंरूप परिणमित होते हैं और नित्य हैं ऐसे वे ही अस्तिकाय हैं। परिवर्तन चिह्नवाले काल सहित छहों पदार्थ द्रव्यत्व भाव को प्राप्त होते हैं।**

**टीका :** यहाँ पाँच अस्तिकायों को तथा काल को द्रव्यपना कहा है।

द्रव्य वास्तव में सहभावी गुणों को तथा क्रमभावी पर्यायों को अनन्यरूप से आधारभूत हैं । इसलिए जो वर्त चुके हैं, वर्त रहे हैं और भविष्य में वर्तेंगे उन भावोंरूप (पर्यायोंरूप) परिणमित होने के कारण (पाँच) अस्तिकाय और परिवर्तनलिंग काल (वे छहों) द्रव्य हैं । भूत, वर्तमान और भावी भावोंस्वरूप परिणमित होने से वे कहीं अनित्य नहीं हैं, क्योंकि भूत, वर्तमान और भावी भावरूप अवस्थाओं में भी प्रतिनियत (अपने-अपने निश्चित) स्वरूप को नहीं छोड़ते, इसलिए वे नित्य ही हैं ।

यहाँ काल, पुद्गलादि के परिवर्तन का हेतु होने से तथा पुद्गलादि के परिवर्तन से पर्यायें गम्य (ज्ञात) होती हैं इसलिए उसका अस्तिकायों में समावेश करने के हेतु उसे 'परिवर्तनलिंग' कहा है । ।।6।।

| प्रतिज्ञा | हेतु |
|---|---|
| 5 अस्तिकाय और काल, द्रव्य हैं | क्योंकि वे 3 कालों की पर्यायों रूप परिणमित होते हैं। |
| वे सर्वथा अनित्य नहीं हैं | क्योंकि भूत, वर्तमान व भावी अवस्थाओं में भी प्रतिनियत स्वरूप को नहीं छोड़ते। |

**काल को परिवर्तन लिंग कहने का हेतु**

↳ 5 अस्तिकायों में अंतर्भूत करने के लिए।

↳ इसका भी हेतु (कारण)

↳ **क्योंकि काल -** 1) पुद्गलादि अस्तिकायों के परिवर्तन का हेतु है।

2) पुद्गलादि अस्तिकायों के परिवर्तन द्वारा जाना जाता है।

**अण्णोण्णं पविसंता देंता ओगासमण्णमण्णस्स ।**

**मेलंता वि य णिच्चं सगं सभावं ण विजहंति ॥७॥**

**गाथार्थ: वे परस्पर एक दूसरे में प्रवेश करते हैं, एक दूसरे को अवकाश देते हैं, परस्पर में मिलते भी हैं ; तथापि सदैव अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते हैं।**

**टीका :** यहाँ छह द्रव्यों को परस्पर अत्यन्त संकर होने पर भी वे प्रतिनियत (अपने-अपने निश्चित) स्वरूप से च्युत नहीं होते ऐसा कहा है। इसलिए परिणामवाले होने पर भी वे नित्य हैं ऐसा पहले (छठी गाथा में) कहा था, और इसलिए वे एकत्व को प्राप्त नहीं होते; और यद्यपि जीव तथा कर्म को व्यवहारनय के कथन से एकत्व है तथापि वे (जीव तथा कर्म) एक दूसरे के स्वरूप को ग्रहण नहीं करते ।।7।।

**छहों द्रव्य**

- एक दूसरे में प्रवेश करते हैं
- एक दूसरे को अवकाश देते हैं
- परस्पर मिल जाते हैं

तथापि अपने-अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते।

↓

इसीलिए परिणाम वाले होने पर भी नित्य हैं।

↓

इसीलिए वे एकत्व को प्राप्त नहीं होते।

↓

इसीलिए जीव-कर्म को एकत्व कहने पर भी
वे परस्पर स्वरूप को ग्रहण नहीं करते।

## गाथा 8 से 21 की विषय-वस्तु

| क्रं. | विषय | गाथा क्रमांक | कुल गाथाएँ |
|---|---|---|---|
| 1. | सामान्य-विशेष सत्ता का लक्षण | 8 | 1 |
| 2. | द्रव्य शब्द की व्युत्पत्ति | 9 | 1 |
| 3. | द्रव्य के 3 लक्षण | 10 | 1 |
| 4. | द्रव्य के 2 लक्षण | 11 | 1 |
| 5. | द्रव्य एवं गुण-पर्याय का संबंध | 12-13 | 2 |
| 6. | प्रमाण सप्तभंगी का व्याख्यान | 14 | 1 |
| 7. | द्रव्य का स्थापन | 15-19 | 5 |
| 8. | सिद्ध के असत् उत्पाद | 20 | 1 |
| 9. | उपसंहार | 21 | 1 |
| | | **कुल गाथाएं** | **14** |

सत्ता सव्वपयत्था सविस्सरूवा अणंतपज्जाया ।
भंगुप्पादधुवत्ता सप्पडिवक्खा हवदि एक्का ॥८॥

**गाथार्थ: सत्ता सर्व पदार्थों में स्थित, सविश्वरूप, अनन्त पर्यायमय, भंग-उत्पाद-ध्रौव्यरूप, सप्रतिपक्ष और एक है ।**

**टीका :** यहाँ अस्तित्व का स्वरूप कहा है ।

अस्तित्व अर्थात् सत्ता नामक सत् का भाव अर्थात् सत्त्व ।

विद्यमानमात्र वस्तु न तो सर्वथा नित्यरूप होती है और न सर्वथा क्षणिकरूप होती है । सर्वथा नित्य वस्तु को वास्तव में क्रमभावी भावों का अभाव होने से विकार (परिवर्तन, परिणाम) कहाँ से होगा? और सर्वथा क्षणिक वस्तु में प्रत्यभिज्ञान का अभाव होने से एक प्रवाहपना कहाँ से रहेगा? इसलिए प्रत्यभिज्ञान के हेतुभूत किसी स्वरूप से ध्रुव रहती हुई और किन्हीं दो क्रमवर्ती स्वरूपों से नष्ट होती हुई तथा उत्पन्न होती हुई - इस प्रकार परमार्थतः एक ही काल में तिगुनी (तीन अंशवाली) अवस्था को धारण करती हुई वस्तु सत् जानना । इसलिए 'सत्ता' भी 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक' (त्रिलक्षणा) जानना; क्योंकि भाव और भाववान का कथंचित् एक स्वरूप होता है । और वह (सत्ता) 'एक' है, क्योंकि वह त्रिलक्षण वाले समस्त वस्तु-विस्तार का सादृश्य सूचित करती है । और वह (सत्ता) 'सर्वपदार्थस्थित' है; क्योंकि उसके कारण ही सर्व पदार्थों में त्रिलक्षण की (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की), 'सत्' ऐसे कथन की तथा 'सत्' ऐसी प्रतीति की उपलब्धि होती है। और वह (सत्ता) 'सविश्वरूप' है, क्योंकि वह विश्व के रूपों सहित अर्थात् समस्त वस्तु-विस्तार के त्रिलक्षणवाले स्वभावों सहित वर्तती है। और वह (सत्ता) 'अनन्त-पर्यायमय' है, क्योंकि वह त्रिलक्षणवाली अनन्त द्रव्य-पर्यायरूप व्यक्तियों से व्याप्त है ।

ऐसी होने पर भी वह वास्तव में निरंकुश नहीं है किन्तु सप्रतिपक्ष है । (1) सत्ता को असत्ता प्रतिपक्ष है; (2) त्रिलक्षणा को अत्रिलक्षणपना प्रतिपक्ष है; (3) एक को अनेकपना प्रतिपक्ष है; (4) सर्वपदार्थस्थित को एकपदार्थस्थित प्रतिपक्ष है; (5) सविश्वरूप को एकरूपपना प्रतिपक्ष है; (6) अनन्त-पर्यायमय को एक-पर्यायमय प्रतिपक्ष है ।

(उपर्युक्त सप्रतिपक्षपना स्पष्ट समझाया जाता है:-) सत्ता द्विविध है - महासत्ता और अवान्तरसत्ता। उसमें सर्व पदार्थसमूह में व्याप्त होने वाली, सादृश्यअस्तित्व को सूचित करने वाली महासत्ता (सामान्यसत्ता) तो कही जा चुकी है। दूसरी, प्रतिनिश्चित

(एक-एक निश्चित) वस्तु में रहने वाली, स्वरूप-अस्तित्व को सूचित करने वाली अवान्तरसत्ता (विशेषसत्ता) है । (1) वहाँ, महासत्ता अवांतरसत्तारूप से असत्ता है इसलिए सत्ता को असत्ता है (2) जिस स्वरूप से उत्पाद है उसका (उस स्वरूप का) उस प्रकार से उत्पाद एक ही लक्षण है, जिस स्वरूप से व्यय है उसका (उस स्वरूप का) उस प्रकार से व्यय एक ही लक्षण है और जिस स्वरूप से ध्रौव्य है उसका (उस स्वरूप का) उस प्रकार से ध्रौव्य एक ही लक्षण है इसलिए वस्तु के उत्पन्न होने वाले, नष्ट होने वाले और ध्रुव रहने वाले स्वरूपों में से प्रत्येक को त्रिलक्षण का अभाव होने से त्रिलक्षणा (सत्ता) को अत्रिलक्षणपना है। (3) एक वस्तु की स्वरूप - सत्ता अन्य वस्तु की स्वरूपसत्ता नहीं है इसलिए एक (सत्ता) को अनेकपना है। (4) प्रतिनिश्चित (व्यक्तिगत निश्चित) पदार्थ में स्थित सत्ताओं द्वारा ही पदार्थों का प्रतिनिश्चितपना (भिन्न-भिन्न निश्चित व्यक्तित्व) होता है इसलिए सर्वपदार्थस्थित (सत्ता) को एकपदार्थस्थितपना है। (5) प्रतिनिश्चित एक-एक रूपवाली सत्ताओं द्वारा ही वस्तुओं का प्रतिनिश्चित एक-एकरूप होता है इसलिए सविश्वरूप (सत्ता) को एक-रूपपना है। (6) प्रत्येक पर्याय में स्थित (व्यक्तिगत भिन्न-भिन्न) सत्ताओं द्वारा ही प्रतिनिश्चित एक-एक पर्यायों का अनंतपना होता है इसलिए अनन्तपर्यायमय (सत्ता) को एकपर्यायमयपना भी है।

इस प्रकार सब निरवद्य (निर्दोष) है क्योंकि उसका (सत्तास्वरूप का) कथन सामान्य और विशेष की प्ररूपणा की ओर ढलते हुए दो नयों के अधीन है ।। 8 ।।

**अस्तित्व = सत्ता = सत्त्व = सत् का भाव।**

**सत्ता**

| महासत्ता | अवांतर सत्ता |
|---|---|
| - सर्व पदार्थ समूह में व्याप्त<br>- सादृश्य-अस्तित्व को सूचित करने वाली | - प्रतिनिश्चित वस्तु में रहने वाली<br>- स्वरूपअस्तित्व को सूचित करने वाली |

| विद्यमान मात्र वस्तु | | |
|---|---|---|
| | न सर्वथा नित्य है। | न क्षणिक है। |
| **क्योंकि** | ऐसी नित्य वस्तु को क्रमभावी भावों का अभाव है। | ऐसी क्षणिक वस्तु को प्रत्यभिज्ञान का अभाव है। |
| **फल** | तब विकास (परिवर्तन) संभव नहीं | तब एक प्रवाहपना संभव नहीं। |
| **अतः** | - प्रत्यभिज्ञान के हेतुभूत किसी स्वरूप से ध्रुव रहती हुई<br>- किन्हीं दो क्रमवर्ती स्वरूपों से नष्ट तथा उत्पन्न होती हुई<br>- ऐसी एक ही काल में<br>3 अवस्था को धारण करती हुई<br>वस्तु 'सत्' जानना। | |

**सत्ता है**

| | विशेषण | हेतु |
|---|---|---|
| 1 | उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक (त्रिलक्षणा) | क्योंकि वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक है। एवं भाव और भाववान का कथंचित् एक स्वरूप होता है। |
| 2 | एक | क्योंकि त्रिलक्षण वाले समस्त वस्तुओं का सादृश्य बताती है। |
| 3 | सर्व पदार्थ स्थित | क्योंकि सत्ता के कारण ही सर्व पदार्थों में<br>(अ) सत् की<br>(ब) 'सत्' शब्द की<br>(स) 'सत्' ऐसी प्रतीति की उपलब्धि होती है। |
| 4 | सविश्वरूप | क्योंकि समस्त वस्तुओं के त्रिलक्षणात्मक स्वभाव सहित वर्तती है। |
| 5 | अनंत पर्यायमयी | क्योंकि त्रिलक्षणवाली अनंत द्रव्यपर्यायरूप व्यक्तियों से व्याप्त है। |

## सत्ता है

| | विशेषण | हेतु |
|---|---|---|
| 1 | असत्ता | क्योंकि महासत्तारूप से अवांतर सत्ता असत्ता है। |
| 2 | अत्रिलक्षणा | क्योंकि उत्पाद आदि प्रत्येक को त्रिलक्षण नहीं है। |
| 3 | अनेक | क्योंकि एक की स्वरूपसत्ता अन्य की स्वरूपसत्ता नहीं है। |
| 4 | एक पदार्थ स्थित | क्योंकि प्रतिनियत पदार्थ में स्थित सत्ता द्वारा ही पदार्थों का प्रतिनियतपना होता है। |
| 5 | एकरूप | क्योंकि प्रतिनिश्चित एकरूप वाली सत्ता द्वारा ही वस्तुओं का प्रतिनिश्चित एक-एक रूप होता है। |
| 6 | एक पर्यायमयी | क्योंकि प्रत्येक पर्याय में स्थित सत्ता द्वारा ही एक-एक पर्याय का अनंतपना होता है। |

**दवियदि गच्छदि ताइं ताइं सब्भावपज्जयाइं जं ।**
**दवियं तं भण्णंति हि अणण्णभूदं तु सत्तादो ॥९॥**

**गाथार्थ: उन-उन सद्भाव पर्यायों को जो द्रवित होता है, प्राप्त होता है, उसे द्रव्य कहते हैं ; जो कि सत्ता से अनन्यभूत है।**

**टीका** : यहाँ सत्ता को और द्रव्य को अर्थान्तरपना (भिन्नपदार्थपना, अन्यपदार्थपना) होने का खण्डन किया है ।

'उन-उन क्रमभावी और सहभावी सद्भावपर्यायों को अर्थात् स्वभावविशेषों को जो द्रवित होता है प्राप्त होता है - सामान्यरूप स्वरूप से व्याप्त होता है, वह द्रव्य है'- इस प्रकार अनुगत अर्थवाली निरुक्ति से द्रव्य की व्याख्या की गई। और यद्यपि लक्ष्य-लक्षण भावादिक द्वारा द्रव्य को सत्ता से कथंचित् भेद है तथापि वस्तुतः द्रव्य सत्ता से

अपृथक् ही है ऐसा मानना। इसलिए पहले (८वीं गाथा में) सत्ता को जो सत्पना, असत्पना, त्रिलक्षणपना, अत्रिलक्षणपना, एकपना, अनेकपना, सर्वपदार्थस्थितपना, एकपदार्थस्थितपना, विश्वरूपपना, एकरूपपना, अनन्तपर्यायपना, एकपर्यायपना कहा गया, वह सर्व सत्ता से अनर्थांतरभूत (अभिन्नपदार्थभूत, अनन्यपदार्थभूत) द्रव्य को ही देखना। इसलिए उनमें (उन सत्ता विशेषों में) कोई सत्ताविशेष शेष नहीं रहता जो कि सत्ता को वस्तुतः द्रव्य से पृथक् स्थापित करे ।।9।।

## द्रव्य

उन-उन क्रमभावी-सहभावी सद्भाव विशेषों को
जो द्रवित होता है, प्राप्त होता है, सामान्यरूप स्वरूप से व्याप्त होता है,
वह द्रव्य कहलाता है।

**लक्ष्य-लक्षण भावादि अपेक्षा द्रव्य व सत्ता कथंचित् भिन्न हैं।**
**प्रदेश-तादात्म्य अपेक्षा द्रव्य व सत्ता कथंचित् अभिन्न हैं।**

तब जो सत्ता का स्वरूप है, वह सर्व ही द्रव्य का है। अतः द्रव्य को ही
सत्पना, असत्पना
त्रिलक्षणपना, अत्रिलक्षणपना
एकपना, अनेकपना
सर्वपदार्थ स्थितपना, एकपदार्थ स्थितपना
विश्वरूपपना, एकरूपपना
अनंतपर्यायमयपना, एकपर्यायमयपना
रूप देखना।

दव्वं सल्लक्खणयं उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं ।
गुणपज्जयासयं वा जं तं भण्णंति सव्वण्हू ॥१०॥

**गाथार्थ: जो सत् लक्षणवाला है, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य संयुक्त है अथवा गुण-पर्यायों का आश्रय है, उसे सर्वज्ञ भगवान द्रव्य कहते हैं।**

**टीका** : यहाँ तीन प्रकार से द्रव्य का लक्षण कहा है ।

'सत्' द्रव्य का लक्षण है। पूर्वोक्त लक्षण वाली सत्ता से द्रव्य अभिन्न होने के कारण 'सत्' स्वरूप ही द्रव्य का लक्षण है । और अनेकान्तामक द्रव्य का लक्षण है । और अनेकान्तामक द्रव्य का सत्मात्र ही स्वरूप नहीं है कि जिससे लक्ष्य-लक्षण के विभाग का अभाव हो ।

अथवा, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य द्रव्य का लक्षण है । एक जाति का अविरोधक ऐसा जो क्रमभावी भावों का प्रवाह, उसमें पूर्व भाव का विनाश सो व्यय है, उत्तर भाव का प्रादुर्भाव सो उत्पाद है और पूर्व-उत्तर भावों के व्यय-उत्पाद होने पर भी स्वजाति का अत्याग सो ध्रौव्य है । वे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य जो कि सामान्य आदेश से अभिन्न हैं, विशेष आदेश से (द्रव्य से) भिन्न हैं, युगपद् वर्तते हैं और स्वभावभूत हैं - वे द्रव्य का लक्षण हैं ।

अथवा, गुण-पर्यायें द्रव्य का लक्षण है। अनेकान्तात्मक वस्तु के अन्वयी विशेष वे गुण हैं और व्यतिरेकी विशेष वे पर्यायें हैं । वे गुण-पर्यायें, जो कि द्रव्य में एक ही साथ तथा क्रमशः प्रवर्तते हैं, (द्रव्य से) कथंचित् भिन्न और कथंचित् अभिन्न हैं तथा स्वभावभूत हैं - वे द्रव्य का लक्षण हैं ।

द्रव्य के इन तीन लक्षणों में से (सत् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य और गुण-पर्यायें इन तीन लक्षणों में से) एक का कथन करने पर शेष दोनों (बिना कथन किये) अर्थ से ही आ जाते हैं । यदि द्रव्य सत् हो, तो वह (१) उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला और (२) गुणपर्यायवाला होगा; यदि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला हो, तो वह (१) सत् और (२) गुण-पर्यायवाला होगा; गुण-पर्यायवाला हो, तो वह (१) सत् और (२) उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला होगा। वह इस प्रकार — सत् नित्यानित्यात्मक स्वभाववाला होने से (१) ध्रौव्य को और उत्पाद-व्ययात्मकता को प्रकट करता है तथा (२) ध्रौव्यात्मक गुणों और उत्पाद-व्ययात्मक पर्यायों के साथ एकत्व को दर्शाता है । उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य (१) नित्यानित्यस्वरूप पारमार्थिक सत् को बतलाते हैं तथा (२) अपने स्वरूप की प्राप्ति के कारणभूत गुण-पर्यायों को प्रकट करते हैं। गुण-पर्यायें अन्वय और व्यतिरेक वाली होने से (१) ध्रौव्य को और उत्पाद-व्यय को सूचित करते हैं तथा (२) नित्यानित्य स्वभाववाले पारमार्थिक सत् को बतलाते हैं ।।10।।

## द्रव्य के 3 लक्षण

**1. सत्ता द्रव्य से अभिन्न होने के कारण सत् स्वरूप ही द्रव्य का लक्षण है।**

**प्रश्न** - अभिन्न होने पर लक्ष्य-लक्षण का विभाग कैसे हो सकता है?

**उत्तर** - उन अनेकांतात्मक द्रव्य का सत् मात्र ही स्वरूप नहीं है। अतः लक्ष्य-लक्षण के विभाग का अभाव नहीं होगा।

**2. एक जाति के अविरोधक क्रमभावी पर्यायों के प्रवाह में है**

पूर्व भाव का विनाश = व्यय

उत्तर भाव का प्रादुर्भाव = उत्पाद

स्वजाति का अत्याग = ध्रौव्य

ऐसे उत्पाद व्यय ध्रौव्य, जो कि

- सामान्य आदेश से अभिन्न हैं
- विशेष आदेश से भिन्न हैं
- युगपत् वर्तते हैं
- स्वभावभूत हैं।

वह द्रव्य का लक्षण है।

**3. अनेकान्तात्मक वस्तु के हैं**

अन्वयी विशेष = गुण

व्यतिरेक विशेष = पर्याय

ऐसे गुण-पर्याय, जो कि

- द्रव्य में एक ही साथ व क्रमशः प्रवर्तते हैं,
- कथंचित् भिन्न, कथंचित् अभिन्न हैं,
- स्वभावभूत हैं।

वह द्रव्य का लक्षण है।

## तीनों लक्षणों का अविनाभावीपना

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| | **सत्** | **नित्य** | **अनित्य** | **स्वभाव वाला है।** |
| | | ↓ | ↓ | |
| अतः | | ध्रौव्य | उत्पाद-व्यय | को प्रकट करता है। एवं |
| | | ↓ | ↓ | |
| | | गुण | पर्याय | के साथ एकत्व दर्शाता है। |

उत्पाद-व्यय - ध्रौव्य
↓ ↓
अनित्य - नित्य स्वभावी सत् को बताते हैं।

उत्पाद-व्यय $\xrightarrow[\text{कारण}]{\text{का}}$ पर्याय

ध्रौव्य $\xrightarrow[\text{कारण}]{\text{का}}$ गुण

**अतः उत्पादादि कार्य अपने गुण-पर्यायरूप कारण को प्रगट करते हैं।**

गुण → ध्रौव्य
पर्याय → उत्पाद - व्यय } को सूचित करते हैं।

गुण → नित्य
पर्याय → अनित्य } स्वभावी सत् को बताते हैं।

**अतः एक का कथन करने पर शेष दो का कथन हो ही जाता है।**

उप्पत्ती व विणासो दव्वस्स य णत्थि अत्थि सब्भावो ।
विगमुप्पादधुवत्तं करेंति तस्सेव पज्जाया ॥११॥

**गाथार्थ: द्रव्य का उत्पाद-विनाश नहीं है, सद्भाव है। विनाश, उत्पाद और ध्रुवता को उसकी ही पर्यायें करती हैं।**

**टीका** : यहाँ दोनों नयों द्वारा द्रव्य का लक्षण विभक्त किया है ।

सहवर्ती गुणों और क्रमवर्ती पर्यायों के सद्भावरूप, त्रिकाल-अवस्थायी (त्रिकाल स्थित रहने वाला), अनादि-अनन्त द्रव्य के विनाश और उत्पाद उचित नहीं है । परन्तु उसी की पर्यायों के सहवर्ती कतिपय (पर्यायों) का ध्रौव्य होने पर भी अन्य क्रमवर्ती (पर्यायों) के विनाश और उत्पाद होना घटित होते हैं। इसलिए द्रव्य, द्रव्यार्थिक आदेश से उत्पादरहित, विनाशरहित, सत् स्वभाववाला ही जानना चाहिए और वही (द्रव्य) पर्यायार्थिक आदेश से उत्पादवाला और विनाशवाला जानना चाहिए।

यह सब निरवद्य है, क्योंकि द्रव्य और पर्यायों का अभेद (अभिन्नपना) है ।।11।।

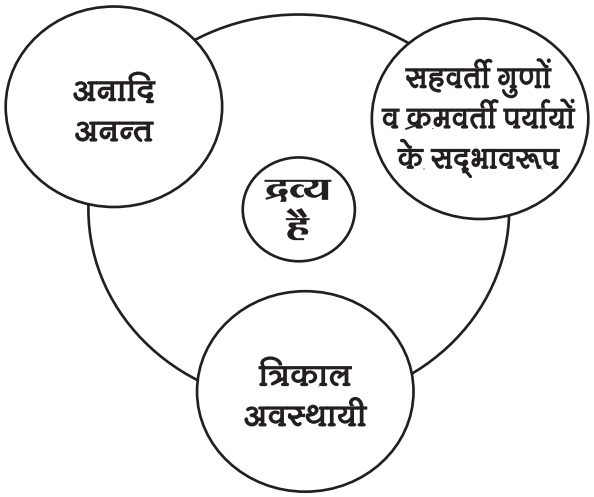

## द्रव्य का लक्षण – 2 नयों द्वारा

**द्रव्य**

द्रव्यार्थिक नय से
उत्पाद-विनाश रहित,
सत् स्वभाव वाला

पर्यायार्थिक नय से
उत्पाद वाला,
विनाश वाला

जानना चाहिए।

**पज्जयविजुदं दव्वं दव्वविजुत्ता य पज्जया णत्थि।**
**दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूवेंति ॥१२॥**

**गाथार्थ: पर्यायरहित द्रव्य और द्रव्यरहित पर्यायें नहीं होती हैं। दोनों का अनन्यभूत भाव / अभिन्नपना श्रमण प्ररूपित करते हैं।**

**टीका** : यहाँ द्रव्य और पर्यायों का अभेद दर्शाया है ।

जिस प्रकार दूध, दही, मक्खन, घी इत्यादि से रहित गोरस नहीं होता उसी प्रकार पर्यायों से रहित द्रव्य नहीं होता; जिस प्रकार गोरस से रहित दूध, दही, मक्खन, घी इत्यादि नहीं होते उसी प्रकार द्रव्य से रहित पर्यायें नहीं होतीं । इसलिए यद्यपि द्रव्य और पर्यायों का आदेशवशात् कथंचित् भेद है तथापि, वे एक अस्तित्व में नियत होने के कारण अन्योन्यवृत्ति नहीं छोड़ती इसलिए वस्तुरूप से उनका अभेद है ।।12।।

दव्वेण विणा ण गुणा गुणेहिं दव्वं विणा ण संभवदि ।

अव्वदिरित्तो भावो दव्वगुणाणं हवदि तम्हा ॥१३॥

**गाथार्थ: द्रव्य के बिना गुण नहीं हैं, गुणों के बिना द्रव्य संभव नहीं है; इसलिये द्रव्य और गुणों के अव्यतिरिक्त / अभिन्न भाव है।**

**टीका :** यहाँ द्रव्य और गुणों का अभेद दर्शाया है ।

जिस प्रकार पुद्गल से पृथक् स्पर्श-रस-गंध-वर्ण नहीं होते उसी प्रकार द्रव्य के बिना गुण नहीं होते; जिस प्रकार स्पर्श-रस-गंध-वर्ण से पृथक् पुद्गल नहीं होता उसी प्रकार गुणों के बिना द्रव्य नहीं होता । इसलिए, द्रव्य और गुणों का आदेशवशात् कथंचित् भेद है तथापि, वे एक अस्तित्व में नियत होने के कारण अन्योन्य-वृत्ति नहीं छोड़ते इसलिए वस्तुरूप से उनमें अभेद है ।।13।।

| उदाहरण | सिद्धान्त | भावार्थ |
|---|---|---|
| जिस प्रकार दूध, दही आदि से भिन्न गोरस नहीं होता | वैसे पर्याय रहित **द्रव्य** नहीं होता। | पर्याय सहित ही द्रव्य होता है। |
| जिस प्रकार गोरस रहित दूध, दही आदि नहीं होते | वैसे **द्रव्य** रहित पर्यायें नहीं होती। | द्रव्य सहित ही पर्यायें होती हैं। |
| जिस प्रकार पुद्गल से पृथक् स्पर्श-रस-गंध-वर्ण नहीं होते | उसी प्रकार **द्रव्य** के बिना गुण नहीं होते। | गुण द्रव्य सहित ही होते हैं। |
| जिस प्रकार स्पर्श-रस-गंध-वर्ण से पृथक् पुद्गल नहीं होता | उसी प्रकार गुणों के बिना **द्रव्य** नहीं होता। | द्रव्य गुण सहित ही होता है। |

**द्रव्य और गुण-पर्यायों का कथन की विवक्षा से**
**कंथचित् भेद है, तथापि वे एक अस्तित्व**
**में नियत होने के कारण परस्पर वृत्ति नहीं छोड़ते,**
**अतः वस्तुरूप से उनका अभेद है।**

| प्रतिज्ञा | हेतु |
|---|---|
| द्रव्य और गुणों की सत्ता अभिन्न है। | अभिन्न द्रव्यत्व होने के कारण<br>अभिन्न क्षेत्रत्व होने के कारण<br>अभिन्न कालत्व होने के कारण<br>अभिन्न भावत्व होने के कारण |

सिय अत्थि णत्थि उहयं अव्वत्तव्वं पुणो य तत्तिदयं।
दव्वं खु सत्तभंगं आदेसवसेण संभवदि ॥१४॥

**गाथार्थः द्रव्य वास्तव में आदेश / कथन के वश से स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, उभय / स्यात् अस्ति-नास्ति, स्यात् अवक्तव्य तथा पुनः उन तीनों रूप अर्थात् स्यात् अस्ति अवक्तव्य, स्यात् नास्ति-अवक्तव्य और स्यात् अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य – इस प्रकार सात भंगरूप है।**

**टीका :** यहाँ द्रव्य के आदेश के वश सप्तभंगी कही है ।

द्रव्य 'स्यात् अस्ति' है; द्रव्य 'स्यात् नास्ति' है; द्रव्य 'स्यात् अस्ति और नास्ति' है; द्रव्य 'स्यात् अवक्तव्य' है; द्रव्य 'स्यात् अस्ति और अवक्तव्य' है; द्रव्य 'स्यात् नास्ति और अवक्तव्य' है; द्रव्य 'स्यात् अस्ति, नास्ति और अवक्तव्य' है।

यहाँ (सप्तभंगी में) सर्वथापने का निषेधक, अनेकान्त का द्योतक 'स्यात्' शब्द 'कथंचित्' ऐसे अर्थ में अव्ययरूप से प्रयुक्त हुआ है। वहाँ- (१) द्रव्य स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से कथन किया जाने पर 'अस्ति' है; (२) द्रव्य पर-द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से कथन किया जाने पर 'नास्ति' है; (३) द्रव्य स्व-द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से और परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से क्रमशः कथन किया जाने पर 'अस्ति और नास्ति' है; (४) द्रव्य स्व-द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से और पर-द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से युगपत् कथन किया जाने पर 'अवक्तव्य' है; (५) द्रव्य स्व-द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से और युगपद् स्व-पर-द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से कथन किया जाने पर 'अस्ति और अवक्तव्य' है; (६) द्रव्य पर-द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से और युगपद् स्व-पर-द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से कथन किया जाने पर 'नास्ति और अवक्तव्य' है; (७) द्रव्य स्व-द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से, पर-द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से और युगपद् स्व-पर-द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से कथन किया जाने पर 'अस्ति, नास्ति और अवक्तव्य' है। यह अयोग्य नहीं है, क्योंकि सर्व वस्तु (१) स्वरूपादि से 'अशून्य' है, (२) पररूपादि से 'शून्य' है, (३) दोनों से (स्वरूपादि से और पररूपादि से) 'अशून्य और शून्य' है, (४) दोनों से (स्वरूपादि से और पररूपादि से) एक ही साथ 'अवाच्य' है, भंगों के संयोग कथन करने पर (५) 'अशून्य और अवाच्य' है, (६) 'शून्य और अवाच्य' है, (७) 'अशून्य, शून्य और अवाच्य' है ।।14।।

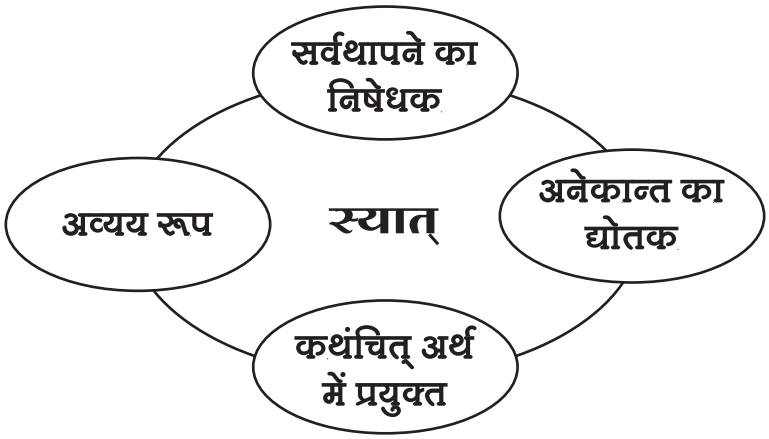


## द्रव्य

| | |
|---|---|
| **स्यात् अस्ति है** | स्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से कथन करने पर |
| **स्यात् नास्ति है** | पर द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से कथन करने पर |
| **स्यात् अस्ति-नास्ति है** | स्व द्रव्यादि और परद्रव्यादि से क्रमशः कथन करने पर |
| **स्यात् अवक्तव्य है** | स्व द्रव्यादि और परद्रव्यादि से युगपत् कथन करने पर |
| **स्यात् अस्ति-अवक्तव्य है** | स्व द्रव्यादि से तथा युगपत् स्व-पर द्रव्यादि से कथन करने पर |
| **स्यात् नास्ति-अवक्तव्य है** | पर द्रव्यादि से तथा युगपत् स्व-पर द्रव्यादि से कथन करने पर |
| **स्यात् अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य है।** | स्व द्रव्यादि से, पर द्रव्यादि से तथा युगपत् स्व-पर द्रव्यादि से कथन करने पर |

यह सब (सप्तभङ्गी) अयोग्य नहीं है, क्योंकि सर्व वस्तुएं हैं-

(1) स्वरूपादि से अशून्य

(2) पररूपादि से शून्य

(3) स्वरूप -पररूपादि से अशून्य-शून्य

(4) स्वरूप-पररूपादि से एक साथ अवाच्य

(5) अशून्य, अवाच्य

(6) शून्य, अवाच्य

(7) अशून्य, शून्य, अवाच्य

**भावस्स णत्थि णासो णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो ।**

**गुणपज्जएसु भावा उप्पादवए पकुव्वंति ॥१५॥**

**गाथार्थ: भाव का नाश नहीं है, अभाव का उत्पाद नहीं है, भाव गुण-पर्यायों में उत्पाद-व्यय करते हैं।**

**टीका :** यहाँ उत्पाद में असत् के प्रादुर्भाव का और व्यय में सत् के विनाश का निषेध किया है ।

भाव का—सत् द्रव्य का द्रव्यरूप से विनाश नहीं है, अभाव का—असत् अन्य द्रव्य का द्रव्यरूप से उत्पाद नहीं है; परन्तु भाव—सत् द्रव्य, सत् के विनाश और असत् के उत्पाद बिना ही, गुण-पर्यायों में विनाश और उत्पाद करते हैं। जिस प्रकार घी की उत्पत्ति में गोरस का—सत् का विनाश नहीं है तथा गोरस से भिन्न पदार्थान्तर का असत् का उत्पाद नहीं है, किन्तु गोरस सत् का विनाश और असत् का उत्पाद किये बिना ही, पूर्व अवस्था से विनाश प्राप्त होने वाले और उत्तर अवस्था से उत्पन्न होने वाले स्पर्श-रस-गंध-वर्णादिक परिणामी गुणों में मक्खन पर्याय विनाश को प्राप्त होती है तथा घी पर्याय उत्पन्न होती है; उसी प्रकार सर्व भावों का भी वैसा ही है ।।15।।

| सिद्धांत | भावार्थ |
|---|---|
| (1) भाव का नाश नहीं है।<br>(2) अभाव का उत्पाद नहीं है।<br>(3) भाव (द्रव्य) गुण-पर्यायों में उत्पाद-विनाश करते हैं। | व्यय में सत् का नाश नहीं होता।<br>उत्पाद में असत् का प्रादुर्भाव नहीं होता। |

**भावा जीवादीया जीवगुणा चेदणा य उवओगो ।**

**सुरणरणारयतिरिया जीवस्स य पज्जया बहुगा ॥१६॥**

**गाथार्थ: जीवादि भाव हैं। चेतना और उपयोग जीव के गुण हैं तथा देव, मनुष्य, नारकी, तिर्यंच आदि अनेक जीव की पर्यायें हैं।**

**टीका** : यहाँ भाव (द्रव्य), गुण और पर्याय बतलाते हैं ।

जीवादि छह पदार्थ वे 'भाव' हैं । उनके गुण और पर्यायें हैं, तथापि आगे (अगली गाथा में) जो उदाहरण देना है उसकी प्रसिद्धि के हेतु जीव के गुणों और पर्यायों का कथन किया जाता है:-

जीव के गुण ज्ञानानुभूतिस्वरूप शुद्धचेतना तथा कार्यानुभूतिस्वरूप और कर्मफलानुभूतिस्वरूप अशुद्धचेतना है और चैतन्यानुविधायी-परिणामस्वरूप, सविकल्प-निर्विकल्परूप, शुद्धता-अशुद्धता के कारण सकलता-विकलता को धारण करने वाला, दो प्रकार का उपयोग है ।

जीव की पर्यायें इस प्रकार हैं- अगुरुलघुगुण की हानि-वृद्धि से उत्पन्न होने वाली पर्यायें शुद्ध पर्यायें हैं और सूत्र में (इस गाथा में) कही हुई, देव-नारक-तिर्यंच-मनुष्यस्वरूप पर्यायें परद्रव्य के सम्बन्ध से उत्पन्न होती हैं, इसलिए अशुद्ध पर्यायें हैं ।।16।।

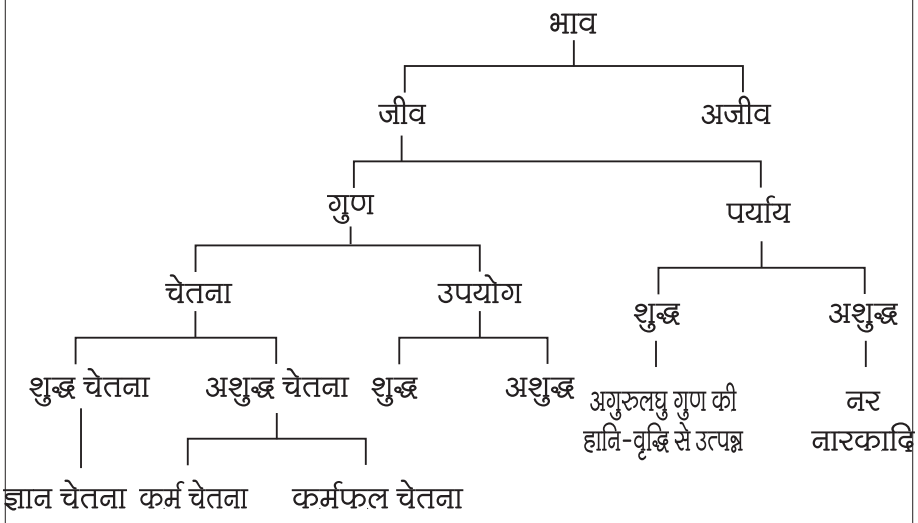


**शुद्ध पर्याय** - जो पर द्रव्य के संबंध से नहीं हो।
**अशुद्ध पर्याय** - जो परद्रव्य के संबंध से होती है।

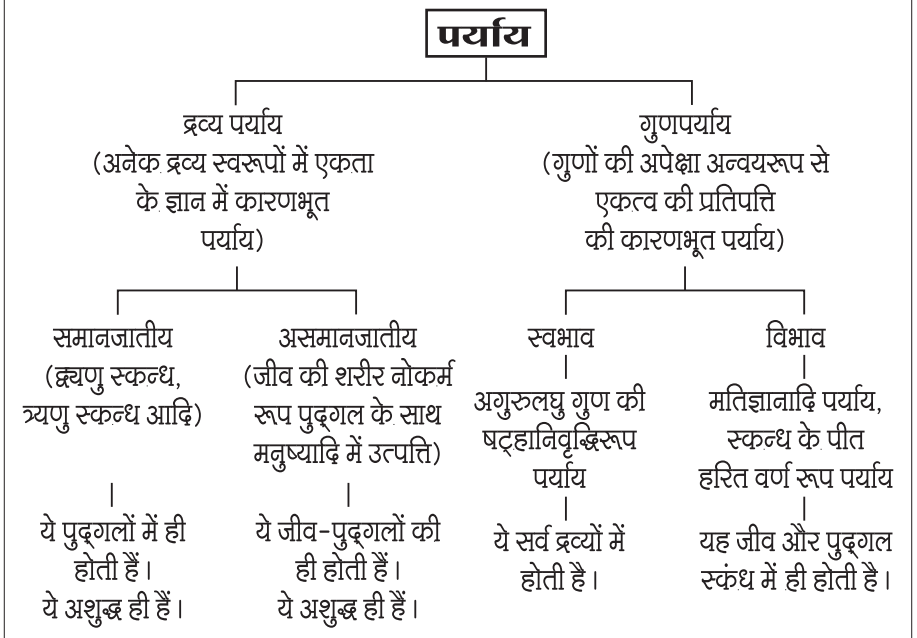

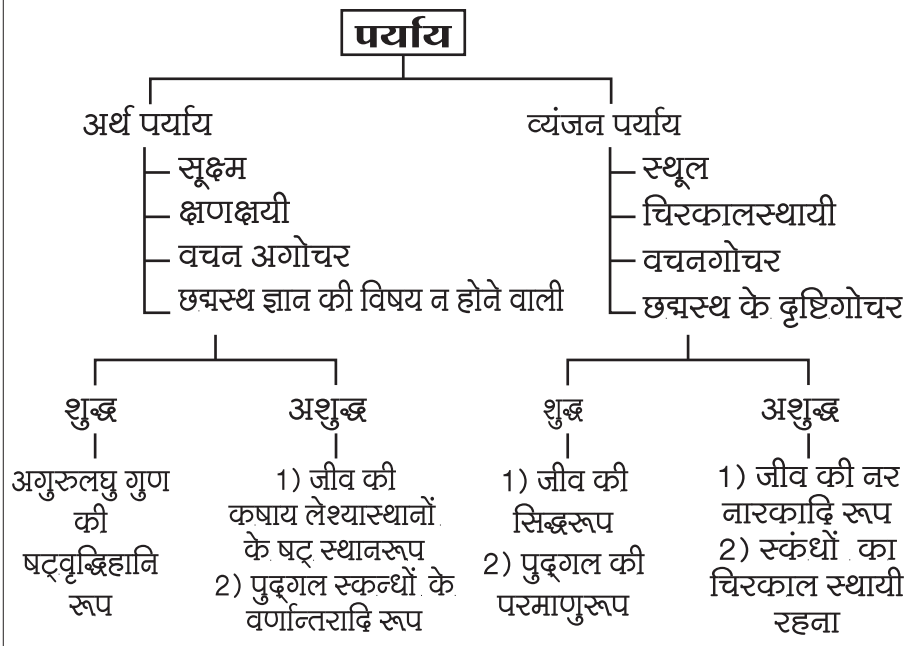


**मणुसत्तणेण णट्ठो देही देवो हवेदि इदरो वा ।**
**उभयत्थ जीवभावो ण णस्सदि ण जायदे अण्णो ॥१७॥**

**गाथार्थ: मनुष्यत्व से नष्ट हुआ देही (शरीरधारी जीव) देव या अन्य रूप में उत्पन्न होता है; (परन्तु) इन दोनों (दशाओं) में जीव भाव नष्ट नहीं हुआ है और अन्य उत्पन्न नहीं हुआ है।**

**टीका :** 'भाव का नाश नहीं होता और अभाव का उत्पाद नहीं होता' – उसका यह उदाहरण है ।

प्रतिसमय होनेवाली अगुरुलघुगुण की हानि-वृद्धि से उत्पन्न होने वाली स्वभाव-पर्यायों की सन्तति का विच्छेद न करने वाली एक सोपाधिक मनुष्यत्व-स्वरूप पर्याय से जीव विनाश को प्राप्त होता है और तथाविध (स्वभावपर्यायों के प्रवाह को न तोड़ने वाली सोपाधिक) देवत्वस्वरूप, नारकत्वस्वरूप, या तिर्यंचत्वस्वरूप अन्य पर्याय

से उत्पन्न होता है । वहाँ ऐसा नहीं है कि मनुष्यत्व से विनष्ट होने पर जीवत्व से भी नष्ट होता है और देवत्व आदि से उत्पाद होने पर जीवत्व भी उत्पन्न होता है, किन्तु सत् के उच्छेद और असत् के उत्पाद बिना ही तदनुसार विवर्तन (परिणमन, परिवर्तन) करता है ।।17।।

| | | |
|---|---|---|
| मनुष्यत्व रूप पर्याय से | जीव | विनाश को प्राप्त होता है, |
| देवत्व रूप पर्याय से | जीव | उत्पन्न होता है। |
| ऐसा होने पर भी जीवत्व से | जीव | नाश को प्राप्त नहीं होता, |
| जीवत्व से | जीव | उत्पन्न नहीं होता। |

परन्तु सत् (जीवत्व) के नाश और
असत् (जीवत्व) के उत्पाद बिना ही उपर्युक्त परिणमन होता है।

**मनुष्यत्व आदि पर्यायों की विशेषता**

- (1) स्वभाव पर्याय की संतति का विच्छेद न करने वाली।
- (2) सोपाधिक (कर्म उपाधिसहित)

**सो चेव जादि मरणं जादि ण णट्ठो ण चेव उप्पण्णो।**
**उप्पण्णो य विणट्ठो देवो मणुसो त्तिपज्जाओ ।।१८।।**

**गाथार्थ :- वही जीव जन्म लेता है और वही मरण को प्राप्त होता है; तथापि न वह जीव उत्पन्न होता है और न वह मरण को प्राप्त होता है। देव-मनुष्यादि पर्यायें ही उत्पन्न और नष्ट होती हैं।**

**टीका** : यहाँ, द्रव्य कथंचित् व्यय और उत्पादवाला होने पर भी उसका सदैव अविनष्टपना और अनुत्पन्नपना कहा है ।

जो द्रव्य पूर्व पर्याय के वियोग से और उत्तर पर्याय के संयोग से होनेवाली उभय अवस्था को आत्मसात् (अपने रूप) करता हुआ विनष्ट होता और उपजता दिखाई देता है, वही (द्रव्य) वैसी उभय अवस्था में व्याप्त होने वाला जो प्रतिनियत एक वस्तुत्व के कारणभूत स्वभाव, उसके द्वारा अविनष्ट एवं अनुत्पन्न ज्ञात होता है; उसकी पर्यायें पूर्व-पूर्व परिणाम के नाशरूप और उत्तर-उत्तर परिणाम के उत्पादरूप होने से विनाश-उत्पाद धर्मवाली कही जाती हैं, और वे (पर्यायें) वस्तुरूप से द्रव्य से अपृथग्भूत ही कही गई हैं । इसलिए, पर्यायों के साथ एकवस्तुपने के कारण जन्मता और मरता होने पर भी जीव-द्रव्य सर्वदा अनुत्पन्न एवं अविनष्ट ही देखना (श्रद्धा करना); देव मनुष्य पर्यायें उपजती हैं और विनष्ट होती हैं क्योंकि वे क्रमवर्ती होने से उनका स्वसमय उपस्थित होता है और बीत जाता है ।।18।।

जो द्रव्य पूर्व पर्याय के वियोग से **विनष्ट** होता दिखाई देता है और
उत्तर पर्याय के तादात्म्य संयोग से **उत्पन्न** होता दिखाई देता है,
वही द्रव्य उभय अवस्थाओं में व्याप्त प्रतिनियत एक वस्तुत्व के द्वारा **अविनष्ट और अनुत्पन्न** ज्ञात होता है।

**शंका -** एक ही पदार्थ में उत्पाद-व्यय और नित्यता कैसे हो सकती है? शीत-उष्ण के समान यह विरुद्ध है।

**समाधान -** जिनके मत में पदार्थ सर्वथा एकान्त से नित्य या क्षणिक है, उनके मत में उपर्युक्त दोष आता है। अनेकान्तवादी जैनमत में यह दोष नहीं है।

जिस भाव से पदार्थ उत्पाद-व्यय वाला है, उसी भाव से नित्य नहीं है।

जिस भाव से पदार्थ नित्य है, उसी भाव से उत्पाद-व्यय वाला नहीं है।

पदार्थ द्रव्य अपेक्षा नित्य है, पर्याय अपेक्षा अनित्य है । ऐसा पदार्थ का द्रव्य-पर्यायात्मक स्वभाव है। अतः विरोध नहीं है।

एवं सदो विणासो असदो जीवस्स णत्थि उप्पादो ।

तावदिओ जीवाणं देवो मणुसो त्ति गदिणामो ॥१९॥

**गाथार्थ: इसप्रकार जीव के सत् का विनाश और असत् का उत्पाद नहीं है; जीवों के देव, मनुष्य आदि ( सम्बन्धी) गति-नाम आदि (योग्यता, कर्म ) उतने ही समय के होने से (देव का जन्म, मनुष्य का मरण इत्यादि) कहा जाता है ।**

**टीका :** यहाँ सत् का अविनाश और असत् का अनुत्पाद ध्रुवता के पक्ष से कहा है ।

यदि वास्तव में जो जीव मरता है वही जन्मता है, जो जीव जन्मता है वही मरता है, तो इसप्रकार सत् का विनाश और असत् का उत्पाद नहीं है ऐसा निश्चित होता है । और 'देव जन्मता है और मनुष्य मरता है' ऐसा जो कहा जाता है वह (भी) अविरुद्ध है क्योंकि मर्यादित काल की देवत्व-पर्याय और मनुष्यत्व-पर्याय को रचने वाले देवगति नामकर्म और मनुष्यगति नामकर्म मात्र उतने काल जितने ही होते हैं । जिस प्रकार एक बड़े बाँस के क्रमवर्ती अनेक पर्व अपने-अपने माप में मर्यादित होने से अन्य पर्व में न जाते हुए अपने-अपने स्थानों में भाववाले (विद्यमान) हैं और पर स्थानों में अभाववाले (अविद्यमान) हैं तथा बाँस तो समस्त पर्व-स्थानों में भाववाला होने पर भी अन्य पर्व के सम्बन्ध द्वारा अन्य पर्व के सम्बन्ध का अभाव होने से अभाव वाला (भी) है; उसी प्रकार निरवधि त्रिकाल स्थित रहने वाले एक जीवद्रव्य की क्रमवर्ती अनेक मनुष्यत्वादि पर्याय अपने-अपने माप में मर्यादित होने से अन्य पर्याय में न जाती हुई अपने-अपने स्थानों में भाववाली है और पर स्थानों में अभाववाली है तथा जीव-द्रव्य तो सर्व पर्यायस्थानों में भाववाला होने पर भी अन्य पर्याय के सम्बन्ध द्वारा अन्य पर्याय के सम्बन्ध का अभाव होने से अभाववाला (भी) है ।।19।।

**सिद्धान्त** → जो मरता है, वही जन्मता है। तथा जो जन्मता है, वही मरता है।
**निष्कर्ष** → अतः सत् का विनाश और असत् का उत्पाद नहीं होता।

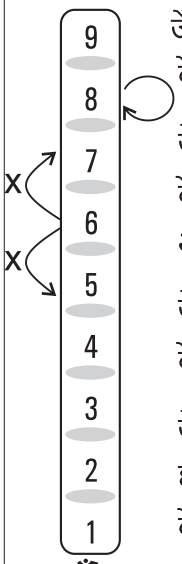

**बाँस**

जैसे एक पर्व अपने स्थान में **भाववाला** है,
वैसे मनुष्यादि एक पर्याय अपने स्थान में **भाववाली** है।

जैसे एक पर्व अन्य पर्व में न जाने से परस्थानों में **अभाववाला** है,
वैसे मनुष्यादि एक पर्याय अन्य पर्याय में न जाने से परस्थानों में **अभाववाली** है।

जैसे बाँस समस्त पर्वस्थानों में **भाववाला** है
वैसे जीव द्रव्य सर्व पर्याय स्थानों में **भाववाला** है।

जैसे बाँस अन्य पर्व के संबंध द्वारा अन्य पर्व के संबंध का अभाव होने से **अभाववाला** है।
वैसे जीव द्रव्य अन्य पर्याय के संबंध द्वारा अन्य पर्याय के संबंध का अभाव होने से **अभाववाला** है।

**णाणावरणादीया भावा जीवेण सुट्ठु अणुबद्धा ।**
**तेसिमभावं किच्चा अभूदपुव्वो हवदि सिद्धो ॥२०॥**

**गाथार्थ: ज्ञानावरणादि भाव जीव के साथ भली-भाँति अनुबद्ध हैं। उनका अभाव करके यह अभूतपूर्व सिद्ध होता है।**

**टीका** : यहाँ, सिद्ध को अत्यन्त असत्-उत्पाद का निषेध किया है ।

जिस प्रकार कुछ समय तक अन्वयरूप से (साथ-साथ) रहने वाली, नामकर्म-विशेष के उदय से उत्पन्न होने वाली जो देवादि पर्यायें उनमें से जीव को एक पर्याय स्व-कारण की निवृत्ति होने पर निवृत्त हो तथा अन्य कोई अभूतपूर्व पर्याय ही उत्पन्न हो, वहाँ असत् की उत्पत्ति नहीं है; उसी प्रकार दीर्घकाल तक अन्वयरूप से रहने

वाली ज्ञानावरणादि कर्मसामान्य के उदय से उत्पन्न होने वाली संसारित्व पर्याय भव्य को स्व-कारण की निवृत्ति होने पर निवृत्त हो और अभूतपूर्व सिद्धत्वपर्याय उत्पन्न हो, वहाँ असत् की उत्पत्ति नहीं है ।

पुनश्च (विशेष समझाया जाता है ।):-

जिस प्रकार जिसका विचित्र चित्रों से चित्र-विचित्र नीचे का अर्ध भाग कुछ ढँका हुआ और कुछ बिन ढँका हो तथा सुविशुद्ध (अचित्रित) ऊपर का अर्ध भाग मात्र ढँका हुआ ही हो ऐसे बहुत लंबे बाँस पर दृष्टी डालने से वह दृष्टि सर्वत्र विचित्र चित्रों से हुए चित्र-विचित्रपने की व्याप्ति का निर्णय करती हुई ''वह बाँस सर्वत्र अविशुद्ध है (अर्थात् सम्पूर्ण रंग-बिरंगा है)'' ऐसा अनुमान करती है; उसीप्रकार जिसका ज्ञानावरणादि कर्मों से हुआ चित्र-विचित्रता-युक्त (विविध विभाव पर्यायवाला) बहुत बड़ा नीचे का भाग कुछ ढँका हुआ और कुछ बिन ढँका है तथा सुविशुद्ध (सिद्ध पर्यायवाला) बहुत बड़ा ऊपर का भाग मात्र ढँका हुआ ही है ऐसे किसी जीवद्रव्य में बुद्धि लगाने से वह बुद्धि सर्वत्र ज्ञानावरणादि कर्म से हुए विचित्रपने की व्याप्ति का निर्णय करती हुई 'वह जीव सर्वत्र अविशुद्ध है (अर्थात् सम्पूर्ण संसार पर्यायवाला है)' ऐसा अनुमान करती है । पुनश्च जिस प्रकार उस बाँस में व्याप्ति-ज्ञानाभास का कारण (नीचे के खुले भाग में) विचित्र चित्रों से हुए चित्र-विचित्रपने का अन्वय है, उसी प्रकार उस जीवद्रव्य में व्याप्ति-ज्ञानाभास का कारण (नीचे के खुले भाग में) ज्ञानावरणादि कर्म से हुए चित्र-विचित्रपने का अन्वय है । और जिस प्रकार बाँस में (ऊपर के भाग में) सुविशुद्धपना है क्योंकि (वहाँ) विचित्र चित्रों से हुए चित्र-विचित्रपने के अन्वय का अभाव है, उसी प्रकार उस जीवद्रव्य में (ऊपर के भाग में) सिद्धपना है क्योंकि (वहाँ) ज्ञानावरणादि कर्म से हुए चित्र-विचित्रपने के अन्वय का अभाव है कि जो अभाव आप्त-आगम के ज्ञान से, सम्यक् अनुमान-ज्ञान से और अतीन्द्रिय ज्ञान से ज्ञात होता है ।।20।।

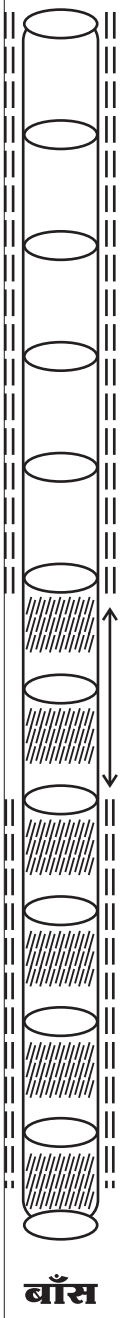


**चित्र के संकेत**

- ✻ 3 भाग 3 कालों को बताते हैं।
- ✻ नीचे का ढका भाग अतीत काल को दर्शाता है।
- ✻ बीच का बिना ढका वर्तमान भव (जन्म से) को दिखाता है।
- ✻ ऊपर का ढका, अचित्रित भाग भविष्य काल को बताता है,
- ✻ चित्रित पर्व संसार–अवस्था की विविधता/अशुद्धता बताते हैं।
- ✻ अचित्रित पर्व शुद्ध अवस्था को दर्शाते हैं।

ज्ञानावरण आदि कर्मों से हुए विविधपने की निरंतरता का अभाव इन प्रमाणों से जाना जाता है -

(1) आप्त के ज्ञान से (सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष)

(2) आगम के ज्ञान से (आगम परोक्ष प्रमाण)

(3) सम्यक् अनुमान ज्ञान से (अनुमान परोक्ष प्रमाण)

(4) अतींद्रिय ज्ञान से (प्रत्यक्ष प्रमाण)

| | |
|---|---|
| जिस प्रकार | उसी प्रकार |
| कुछ समय तक | दीर्घ काल तक |
| अन्वय रूप से रहने वाले | |
| नामकर्म विशेष के उदय से उत्पन्न होने वाली | ज्ञानावरणादिक कर्म सामान्य के उदय से उत्पन्न होने वाली |
| देवादि पर्याय | संसारित्व पर्याय |
| जीव को | भव्य जीव को |
| स्वकारण की निवृति होने पर निवृत्त होकर | |
| अन्य कोई अभूतपूर्व पर्याय ही उत्पन्न हो | अभूतपूर्व सिद्धत्व पर्याय उत्पन्न हो |
| **वहाँ असत् की उत्पत्ति नहीं है।** | |

**एवं भावमभावं भावाभावं अभावभावं च ।**
**गुणपज्जयेहिं सहिदो संसरमाणो कुणदि जीवो ॥२१॥**

**गाथार्थ: इसप्रकार गुण-पर्यायों सहित जीव संसरण करता हुआ भाव, अभाव, भावाभाव और अभावभाव को करता है।**

**टीका** : यह, जीव को उत्पाद, व्यय, सत्-विनाश और असत्-उत्पाद का कर्तृत्व होने की सिद्धिरूप उपसंहार है ।

द्रव्य वास्तव में सर्वदा अविनष्ट और अनुत्पन्न आगम में कहा है; इसलिए जीवद्रव्य को द्रव्यरूप से नित्यपना कहा गया । (१) देवादिपर्याय रूप से उत्पन्न होता है इसलिए उसी को (जीवद्रव्य को ही) भाव (उत्पाद) का कर्तृत्व कहा गया है; (२)

मनुष्यादि-पर्यायरूप से नाश को प्राप्त होता है इसलिए उसी को अभाव (व्यय) का कर्तृत्व कहा है; (३) सत् (विद्यमान) देवादि-पर्याय का नाश करता है इसलिए उसी को भावाभाव का (सत् के विनाश का) कर्तृत्व कहा गया है; और (४) फिर से असत् (अविद्यमान) मनुष्यादि पर्याय का उत्पाद करता है इसलिए उसी को अभावभाव का (असत् के उत्पाद का) कर्तृत्व कहा गया है ।

यह सब निरवद्य (निर्दोष, निर्बाध, अविरुद्ध) है, क्योंकि द्रव्य और पर्याय में से एक की गौणता से और अन्य की मुख्यता से कथन किया जाता है । वह इस प्रकार है-

जब जीव, पर्याय की गौणता से और द्रव्य की मुख्यता से विवक्षित होता है तब वह (१) उत्पन्न नहीं होता, (२) विनष्ट नहीं होता, (३) क्रम-वृत्ति से वर्तन नहीं करता इसलिए सत् पर्यायसमूह को विनष्ट नहीं करता और (४) असत् को उत्पन्न नहीं करता; और जब जीव, द्रव्य की गौणता से और पर्याय की मुख्यता से विवक्षित होता है तब वह (१) उपजता है, (२) विनष्ट होता है, (३) जिसका स्व-काल बीत गया ऐसे सत् पर्यायसमूह को विनष्ट करता है और (४) जिसका स्व-काल उपस्थित हुआ है ऐसे असत् को उत्पन्न करता है ।

यह प्रसाद वास्तव में अनेकान्तवाद का है कि ऐसा विरोध भी (वास्तव में) विरोध नहीं है। इस प्रकार षट् द्रव्य की सामान्य प्ररूपणा समाप्त हुई ।।21।।

**द्रव्यार्थिक नय से**

द्रव्य सर्वदा अनुत्पन्न, अविनष्ट है,

अतः जीवद्रव्य द्रव्यरूप से नित्य है।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| **जीव द्रव्य** | देवादिरूप पर्याय से उत्पन्न होता है। | **इसलिए उसे ही** | भाव | का कर्तृत्व कहा गया है। |
| | मनुष्यादिरूप पर्याय से नाश को प्राप्त होता है | | अभाव | |
| | सत्‌रूप देवादि पर्याय का नाश करता है | | भावाभाव | |
| | असत्‌रूप मनुष्यादि पर्याय का उत्पाद करता है। | | अभाव-भाव | |

**जीव द्रव्य**

| **पर्याय की गौणता, द्रव्य की मुख्यता होने पर** | **द्रव्य की गौणता, पर्याय की मुख्यता होने पर** |
|---|---|
| (1) उत्पन्न नहीं होता | (1) उत्पन्न होता है |
| (2) नष्ट नहीं होता | (2) नष्ट होता है |
| (3) सत् पर्याय समूह को नष्ट नहीं करता | (3) सत् पर्याय समूह को नष्ट करता है |
| (4) असत् को उत्पन्न नहीं करता | (4) असत् को उत्पन्न करता है |

**यह सारा प्रसाद अनेकान्तवाद का है कि ऐसा विरोध भी विरोध नहीं है।**
**!! जय हो अनेकान्तवाद की !!**

## भाव, अभाव आदि चार भंगों का अर्थ

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| भाव | → | उत्पाद | | |
| अभाव | → | व्यय | | |
| भावाभाव | → | भाव ↓ सत्‌रूप पर्याय | का | अभाव ↓ व्यय (नाश) |
| अभावभाव | → | अभाव का ↓ असत्‌रूप अवस्था | | भाव ↓ उत्पाद |

**विशेष –**

- ये चारों एक ही साथ एक समय में हैं।
- जब सत् का नाश कह रहे हैं, उस समय तो वह असत् हो चुकी है, क्योंकि उसका नाश कह रहे हैं।
- इसी प्रकार जब असत् की उत्पत्ति कह रहे हैं, तब वह सत् हो चुकी है। क्योंकि उसकी उत्पत्ति कह रहे हैं।
- विश्व में सर्वदा ही असत् की उत्पत्ति हुआ करती है।

## गाथा 22 से 25 की विषय-वस्तु

| क्रं. | विषय | गाथा क्रमांक | कुल गाथाएँ |
|---|---|---|---|
| 1. | जीवादि 5 अस्तिकायों की सूचना | 22 | 1 |
| 2. | निश्चयकाल का कथन | 23 | 1 |
| 3. | व्यवहारकाल की मुख्यता से कथन | 24-25 | 2 |
| | | **कुल गाथाएँ** | **4** |

जीवा पोग्गलकाया आयासं अत्थिकाइया सेसा ।
अमया अत्थित्तमया कारणभूदा हि लोगस्स ।।२२।।

**गाथार्थ: जीव, पुद्गलकाय, आकाश और शेष दो (धर्म, अधर्म) अस्तिकाय अकृत, अस्तित्वमय और वास्तव में लोक के कारणभूत हैं।**

**टीका** : यहाँ, सामान्यतः जिनका स्वरूप (पहले) कहा गया है ऐसे छह द्रव्यों में से पाँच को अस्तिकायपना स्थापित किया गया है ।

अकृत होने से, अस्तित्वमय होने से और अनेक प्रकार की अपनी परिणतिरूप लोक के कारण होने से जो स्वीकार किये गए हैं ऐसे छह द्रव्यों में जीव, पुद्गल, आकाश, धर्म और अधर्म प्रदेश-प्रचयात्मक (प्रदेशों के समूहमय) होने से वे पाँच अस्तिकाय हैं । काल प्रदेशप्रचयात्मकपने का अभाव होने से वास्तव में अस्तिकाय नहीं है ऐसा (बिना कथन किये भी) सामर्थ्य से निश्चित होता है ।।22।।

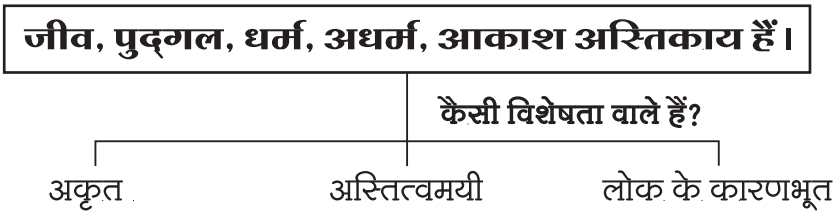

सब्भावसभावाणं जीवाणं तह य पोग्गलाणं च ।
परियट्टणसंभूदो कालो णियमेण पण्णत्तो ॥२३॥

**गाथार्थ: सत्ता स्वभाव वाले जीवों और पुद्गलों के परिवर्तन से सिद्ध होने वाले काल का (सर्वज्ञ द्वारा) नियम से कथन किया गया है।**

**टीका :** काल अस्तिकायरूप से अनुक्त होने पर भी उसे अर्थपना सिद्ध होता है ऐसा यहाँ दर्शाया है ।

इस जगत में वास्तव में जीवों को और पुद्गलों को सत्तास्वभाव के कारण प्रतिक्षण उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की एकवृत्तिरूप परिणाम वर्तता है । वह (परिणाम) वास्तव में सहकारी कारण के सद्भाव में दिखाई देता है, गति-स्थिति-अवगाह परिणाम की भाँति । यह जो सहकारी कारण सो काल है । जीव-पुद्गल के परिणाम की अन्यथा-अनुपपत्ति द्वारा ज्ञात होता है इसलिए, निश्चयकाल (अस्तिकायरूप से) अनुक्त होने पर भी (द्रव्यरूप से) विद्यमान है ऐसा निश्चित होता है । और जो निश्चय काल की पर्यायरूप व्यवहारकाल वह, जीव-पुद्गलों के परिणाम से व्यक्त (गम्य) होता है इसलिए अवश्य तदाश्रित ही (जीव तथा पुद्गल के परिणाम के आश्रित ही) गिना जाता है ।।23।।

| काल द्रव्य की सिद्धि | |
|---|---|
| **स्वभाव** | (1) जीव, पुद्गलों को प्रतिक्षण परिणाम वर्तता है। |
| **काल की आवश्यकता** | (2) वह परिणाम गति, स्थिति, अवगाह परिणाम की तरह सहकारी कारण के सद्भाव में दिखता है। |
| **आवश्यकता की पूर्ति** | (3) वह सहकारी कारण काल है। |

| निश्चय-व्यवहार काल की सिद्धि | | | |
|---|---|---|---|
| जीव पुद्गलों के परिणाम | की अन्यथा-अनुपपत्ति से से व्यक्त होने वाले | निश्चय व्यवहार | काल का सद्भाव सिद्ध होता है। |

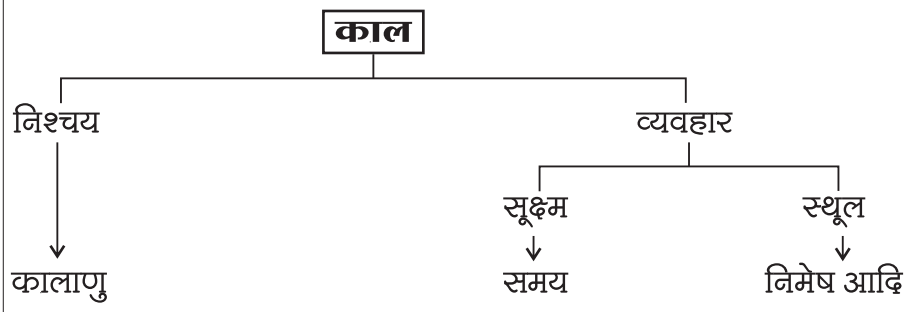


ववगदपणवण्णरसो ववगददोगंधअट्ठफासो य।
अगुरुलहुगो अमुत्तो वट्टणलक्खो य कालो त्ति।। २३-१।।

गाथार्थ :- पाँच वर्ण रहित, पाँच रस रहित, दो गन्ध रहित, आठ स्पर्श रहित, अगुरुलघुगुण सहित, अमूर्तिक और वर्तनालक्षणवाला काल है।

समओ णिमिसो कट्ठा कला य णाली तदो दिवारत्ती ।
मासोडुअयणसंवच्छरो त्ति कालो परायत्तो ॥२४॥

**गाथार्थ: समय, निमिष, काष्ठा, कला, नाली, घड़ी से होने वाले दिन, रात, मास, ऋतु, अयन, वर्ष ये पराश्रित काल हैं ।**

**टीका :** यहाँ व्यवहारकाल का कथंचित् पराश्रितपना दर्शाया है ।

परमाणु के गमन के आश्रित समय है; आँख के मिचने से आश्रित निमेष है; उसकी अमुक संख्या काष्ठा, कला और घड़ी होती है; सूर्य के गमन के आश्रित अहोरात्र होता है, और उसकी अमुक संख्या से मास, ऋतु, अयन और वर्ष होते हैं । ऐसा व्यवहारकाल केवल काल की पर्यायमात्ररूप से अवधारण करना अशक्य होने से उसे 'पराश्रित' ऐसी उपमा दी जाती है ।।24।।

| काल का नाम | | अर्थ/प्रमाण |
|---|---|---|
| समय | - | एक आकाश प्रदेश को मंदगति से व्यतिक्रम करने का काल |
| निमिष | - | नेत्र पलक बंद करने में लगने वाला काल, असंख्यात समय |
| काष्ठा | - | 15 निमिष |
| कला | - | 30 काष्ठा |
| नाली/घड़ी | - | 20 कला से कुछ अधिक |
| मुहूर्त | - | 2 घड़ी |
| दिन-रात | - | 30 मुहूर्त |
| मास | - | 30 दिन- रात |
| ऋतु | - | 2 मास |
| अयन | - | 3 ऋतु |
| संवत्सर | - | 2 अयन |

णत्थि चिरं वा खिप्पं मत्तारहिदं तु सा वि खलु मत्ता ।
पोग्गलदव्वेण विणा तम्हा कालो पडुच्चभवो ॥२५॥

**गाथार्थ: चिर अथवा क्षिप्र / शीघ्र मात्रा (परिमाण) के बिना नहीं होता है, और वह मात्रा वास्तव में पुद्गल द्रव्य के बिना नहीं है; इसलिये काल प्रतीत्यभव है (पर का आश्रय लेकर व्यक्त होता है)।**

**टीका :** यहाँ व्यवहारकाल के कथंचित् पराश्रितपने के विषय में सत्य युक्ति कही गई है ।

प्रथम तो, निमेष-समयादि व्यवहारकाल में 'चिर' और 'क्षिप्र' ऐसा ज्ञान (अधिक काल और अल्प काल ऐसा ज्ञान) होता है । वह ज्ञान वास्तव में अधिक और अल्प काल के साथ सम्बन्ध रखने वाले प्रमाण बिना संभवित नहीं होता, और वह प्रमाण पुद्गलद्रव्य के परिणाम बिना निश्चित नहीं होता । इसलिए, व्यवहारकाल पर के परिणाम द्वारा ज्ञात होने के कारण यद्यपि निश्चय से वह अन्य के आश्रित नहीं है तथापि आश्रितरूप से उत्पन्न होने वाला कहा जाता है ।

इसलिए, यद्यपि काल को अस्तिकायपने के अभाव के कारण यहाँ अस्तिकाय की सामान्य प्ररूपणा में उसका साक्षात् कथन नहीं है तथापि जीव-पुद्गल के परिणाम की अन्यथा-अनुपपत्ति द्वारा सिद्ध होने वाला निश्चयरूप काल और उनके परिणाम के आश्रित निश्चित होनेवाला व्यवहार-काल पंचास्तिकाय की भाँति लोकरूप में परिणत है- ऐसा, अत्यंत तीक्ष्ण दृष्टि से जाना जा सकता है ।।25।।

## व्यवहार काल के पराश्रितपने की युक्ति

(1) निमिष, समयादि में 'चिर' व 'क्षिप्र' ज्ञान पाया जाता है।

(2) वह ज्ञान अधिक व अल्प काल से संबंध रखने वाले माप (प्रमाण) बिना संभव नहीं।

(3) वह माप पुद्गल द्रव्य के परिणाम बिना निश्चित नहीं होता।

**निष्कर्ष -** अतः व्यवहार काल पर के परिणाम द्वारा ज्ञात होने से पराश्रित कहा जाता है।

# जीवास्तिकाय

## गाथा 27 से 52 की विषय-वस्तु

| क्रं. | विषय | गाथा क्रमांक | कुल गाथाएँ |
|---|---|---|---|
| 1. | अधिकार सूत्र गाथा | 26 | 1 |
| 2. | सर्वज्ञ सिद्धि परक | 27-28 | 2 |
| 3. | जीव सिद्धि परक | 29-31 | 3 |
| 4. | जीव की स्व-देह मात्र स्थिति | 32-33 | 2 |
| 5. | जीव का अमूर्तत्व ज्ञापनार्थ | 34-36 | 3 |
| 6. | चेतनत्व गुण की व्याख्या | 37-38 | 2 |
| 7. | ज्ञान-दर्शनोपयोग संबंधी | 39-41 | 3 |
| 8. | जीव और ज्ञान में अभेद-स्थापनार्थ | 42-44 | 3 |
| 9. | द्रव्य-गुणों में कथंचित् अभेद | 45-47 | 3 |
| 10. | समवाय संबंध निराकरणार्थ | 48-49 | 2 |
| 11. | गुण-गुणी के कथंचित् अभेद विषय में दृष्टांत-दार्ष्टान्त | 50-51 | 2 |
| | | **कुल गाथाएँ** | **26** |

**जीवो त्ति हवदि चेदा उवओगविसेसिदो पहू कत्ता ।**

**भोक्ता य देहमेत्तो ण हि मुत्तो कम्मसंजुत्तो ॥२६॥**

**गाथार्थ: (संसार स्थित आत्मा) जीव, चेतयिता, उपयोगलक्षित, प्रभु, कर्ता, भोक्ता, देहप्रमाण, अमूर्त और कर्मसंयुक्त है।**

**टीका :** यहाँ संसार-दशावाले आत्मा का सोपाधि और निरुपाधि-स्वरूप कहा है ।

आत्मा निश्चय से भाव-प्राण को धारण करता है इसलिए 'जीव' है, व्यवहार से द्रव्यप्राण को धारण करता है इसलिए 'जीव' है; निश्चय से चित्स्वरूप होने के कारण चेतयिता (चेतने वाला) है, व्यवहार से चित्शक्तियुक्त होने से 'चेतयिता' है; निश्चय से अपृथग्भूत ऐसे चैतन्यपरिणामस्वरूप उपयोग द्वारा लक्षित होने से 'उपयोगलक्षित' है, व्यवहार से पृथग्भूत ऐसे चैतन्यपरिणामस्वरूप उपयोग द्वारा लक्षित होने से 'उपयोगलक्षित' है; निश्चय से भावकर्मों के आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष करने में स्वयं ईश (समर्थ) होने से 'प्रभु' है, व्यवहार से द्रव्यकर्मों के आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष करने में स्वयं ईश होने से 'प्रभु' है; निश्चय से पौद्गलिक-कर्म जिनका निमित्त है ऐसे आत्म-परिणामों का कर्तृत्व होने से कर्ता है, व्यवहार से आत्म-परिणाम जिनका निमित्त है ऐसे पौद्गलिक कर्मो का कर्तृत्व होने से 'कर्ता' है; निश्चय से शुभाशुभ कर्म जिनका निमित्त है ऐसे सुख-दुःख परिणामों का भोक्तृत्व होने से भोक्ता है, व्यवहार से शुभाशुभ कर्मों से संपादित इष्टानिष्ट विषयों का भोक्तृत्व होने से 'भोक्ता' है; निश्चय से लोक-प्रमाण होने पर भी, विशिष्ट अवगाह-परिणाम की शक्तिवाला होने से नामकर्म से रचित छोटे-बड़े शरीर में रहता हुआ व्यवहार से 'देह-प्रमाण' है; व्यवहार से कर्मों के साथ एकत्वपरिणाम के कारण मूर्त होने पर भी, निश्चय से अरूपी स्वभाववाला होने के कारण 'अमूर्त' है; निश्चय से पुद्गल-परिणाम को अनुरूप चैतन्यपरिणामात्मक कर्मों के साथ संयुक्त होने से 'कर्मसंयुक्त' है, व्यवहार से चैतन्य-परिणाम को अनुरूप पुद्गलपरिणामात्मक कर्मों के साथ संयुक्त होने से 'कर्मसंयुक्त' है ।।26।।

# जीव का स्वरूप

| जीव है | हेतु | |
|---|---|---|
| | **निश्चय से** | **व्यवहार से** |
| **जीव** | भाव प्राणों को धारण करने से<br>शुद्ध निश्चय नय | द्रव्य प्राणों को धारण करने से<br>अंतरंग द्रव्यप्राण-सद्भूत व्यवहार नय<br>बहिरंग द्रव्यप्राण-असद्भूत व्यवहार नय |
| **चेतयिता** | चित्स्वरूप होने से<br>शुद्ध निश्चय नय | चित्शक्ति युक्त होने से<br>शुद्ध सद्भूत व्यवहार नय |
| **उपयोग लक्षित** | अपृथक्भूत चैतन्य परिणाम स्वरूप उपयोग द्वारा लक्षित होने से<br>शुद्ध निश्चय नय | पृथग्भूत चैतन्य-परिणाम स्वरूप उपयोग द्वारा लक्षित होने से<br>शुद्ध सद्भूत व्यवहार नय |
| **प्रभु** | भावकर्मों के आस्रव, बंध, संवर निर्जरा, मोक्ष करने में स्वयं ईश होने से<br>सद्भूत व्यवहार नय | द्रव्यकर्मों के आस्रवादि करने में स्वयं ईश होने से<br>असद्भूत व्यवहार नय |
| **कर्ता** | पौद्गलिक कर्म निमित्तक आत्म-परिणामों का कर्तृत्व होने से<br>अशुद्ध सद्भूत व्यवहार नय | आत्मपरिणाम निमित्तक पौद्गलिक कर्मों का कर्तृत्व होने से<br>अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय |
| **भोक्ता** | शुभाशुभ कर्म निमित्तक सुख-दुःखादि का भोक्तृत्व होने से<br>अशुद्ध सद्भूत व्यवहार नय | शुभाशुभ कर्म संपादित इष्टानिष्ट विषयों का भोक्तृत्व होने से<br>उपचरित असद्भूत व्यवहार नय |
| **देहप्रमाण** | लोकप्रमाण परिमाण वाला होने पर भी<br>निश्चय नय | विशिष्ट अवगाह शक्तिवाला होने से शरीर में रहता होने के कारण<br>अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय |

| | | |
|---|---|---|
| **अमूर्त** | अरूपी स्वभाववाला होने से<br>निश्चय नय | कर्मों के साथ एकत्व परिणाम होने से मूर्त होने पर भी<br>अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय |
| **कर्म संयुक्त** | पुद्गल परिणामों के अनुरूप चैतन्य परिणामात्मक कर्मों के साथ संयुक्त होने से<br>अशुद्ध सद्भूत व्यवहार नय | चैतन्य परिणामों के अनुरूप पुद्गल परिणामात्मक कर्मों के साथ युक्त होने से<br>उपचरित असद्भूत व्यवहार नय |

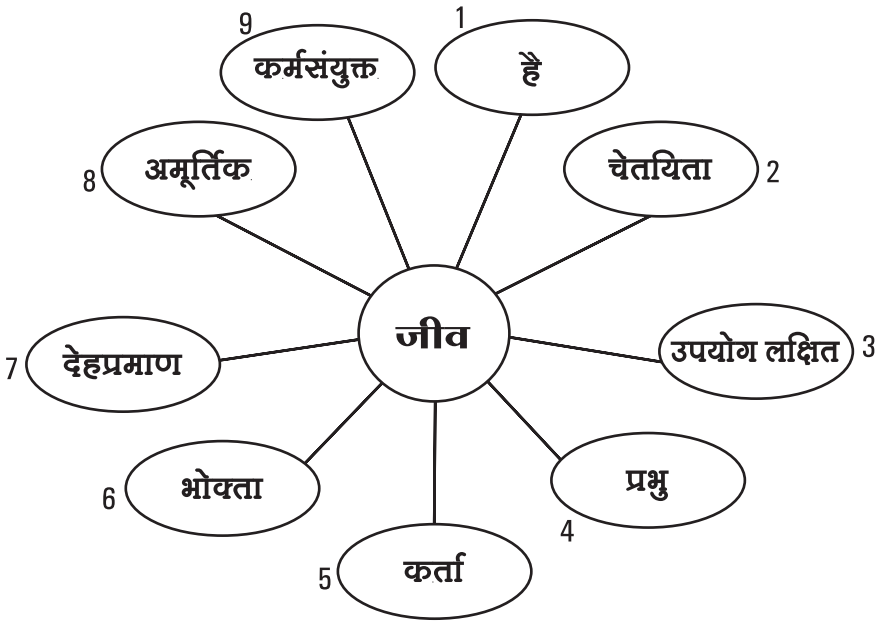


| सोपाधि विशेषण | निरुपाधि विशेषण | सोपाधि-निरुपाधि विशेषण |
|---|---|---|
| कर्ता | चेतयिता | जीव |
| भोक्ता | उपयोगलक्षित | प्रभु |
| देहमात्र | अमूर्त | |
| कर्मसंयुक्त | | |

**'जीवो त्ति हवदि' से उक्त तथ्य:**

**जीव है** - चार्वाक निराकरण, जीव-अस्तित्व सिद्धि, नास्तिकता निराकरण

**जीव हूँ** - स्व प्रयोजन सिद्धि, 'शरीर नहीं, जीव हूँ।' इस प्रकार भेदज्ञान

**जीव हैं** - जीवसमास सिद्धि, सवद्वैत निराकरण।

**जीव जीव है** - वात्सल्य, अहिंसा, करुणा सिद्धि।

**कम्ममलविप्पमुक्को उड्ढं लोगस्स अंतमधिगंता ।**
**सो सव्वणाणदरिसी लहदि सुहमणिंदियमणंतं ॥२७॥**

**गाथार्थ: कर्ममल से विप्रमुक्त, ऊर्ध्व-लोक के अन्त को प्राप्त वे सर्वज्ञ-सर्वदर्शी आत्मा अनन्त अतीन्द्रिय सुख का अनुभव करते हैं ।**

**टीका :** यहाँ मुक्तावस्था वाले आत्मा का निरुपाधि स्वरूप कहा है ।

आत्मा (कर्मरज के) परद्रव्यपने के कारण कर्मरज से सम्पूर्णरूप से जिस क्षण छूटता है, उसी क्षण ऊर्ध्वगमन-स्वभाव के कारण लोक के अंत को पाकर आगे गति-हेतु का अभाव होने से (वहाँ) स्थिर रहता हुआ, केवलज्ञान और केवलदर्शन स्वरूपभूत होने के कारण उनसे न छूटता हुआ अनन्त अतीन्द्रिय सुख का अनुभव करता है । उस मुक्त आत्मा को, भावप्राण-धारण जिसका लक्षण है ऐसा 'जीवत्व' होता है; चिद्रूप जिसका लक्षण है ऐसा 'चेतयितृत्व' होता है; चित्परिणाम जिसका लक्षण है ऐसा 'उपयोग' होता है; प्राप्त किये हुए समस्त (आत्मिक) अधिकारों की शक्तिमात्ररूप 'प्रभुत्व' होता है; समस्त वस्तुओं से असाधारण ऐसे स्वरूप की निष्पत्तिमात्ररूप 'कर्तृत्व' होता है; स्वरूपभूत स्वातन्त्र्य जिसका लक्षण है ऐसे सुख की उपलब्धिरूप 'भोक्तृत्व' होता है; अतीत अनन्तर (अन्तिम) शरीरानुसार अवगाहपरिणामरूप 'देहप्रमाणपना' होता है; और उपाधि के सम्बन्ध से विविक्त ऐसा आत्यन्तिक 'अमूर्तपना' होता है । (मुक्त-आत्मा को) 'कर्मसंयुक्तपना' तो होता ही नहीं, क्योंकि द्रव्यकर्मों और भावकर्मों से विमुक्ति हुई है । द्रव्यकर्म वे पुद्गलस्कन्ध हैं और भावकर्म वे चिद्विवर्त हैं। चित्शक्ति अनादि ज्ञानावरणादि कर्मों के सम्पर्क से संकुचित

व्यापारवाली होने के कारण ज्ञेयभूत विश्व के एक-एक देश में क्रमशः व्यापार करती हुई विवर्तन को प्राप्त होती है। किन्तु जब ज्ञानावरणादि कर्मों का सम्पर्क विनष्ट होता है, तब वह ज्ञेयभूत विश्व के सर्व देशों में युगपद् व्यापार करती हुई कथंचित् कूटस्थ होकर, अन्य विषय को प्राप्त न होती हुई विवर्तन नहीं करती। वह यह वास्तव में निश्चित सर्वज्ञपने की और सर्वदर्शीपने की उपलब्धि है। यही, द्रव्यकर्मों के निमित्तभूत भावकर्मों के कर्तृत्व का विनाश है; यही, विकारपूर्वक अनुभव के अभाव के कारण औपाधिक सुख-दुःख परिणामों के भोक्तृत्व का विनाश है; और यही, अनादि विवर्तन के खेद के विनाश से जिसका अनन्त चैतन्य सुस्थित हुआ है ऐसे आत्मा को स्वतन्त्र-स्वरूपानुभूति-लक्षण सुख का भोक्तृत्व है ।।27।।

| मुक्त आत्मा का निरुपाधि स्वरूप | | |
|---|---|---|
| (1) | भाव प्राण-धारण-लक्षण | जीवत्व |
| (2) | चिद्रूप लक्षण | चेतयितृत्व |
| (3) | चित्परिणाम लक्षण | उपयोग |
| (4) | प्राप्त किए हुए समस्त अधिकारों की शक्ति मात्ररूप | प्रभुत्व |
| (5) | समस्त वस्तुओं से असाधारण स्वरूप की निष्पत्ति मात्र-रूप | कर्तृत्व |
| (6) | स्वरूपभूत स्वातंत्र्यलक्षण सुख की उपलब्धि-रूप | भोक्तृत्व |
| (7) | पूर्व देह के अवगाह परिमाण-रूप | देह प्रमाणपना |
| (8) | उपाधि के संबंध से विविक्त | अमूर्तत्व |
| **मुक्त आत्मा को कर्मसंयुक्तपना नहीं होता।** | | |

**द्रव्यकर्म = पुद्गल स्कंध**
**भावकर्म = चिद् विवर्त**

जादो सयं स चेदा सव्वण्हू सव्वलोगदरिसी य ।

पप्पोदि सुहमणंतं अव्वाबाधं सगममुत्तं ॥२८॥

**गाथार्थ: वह चेतयिता स्वयं सर्वज्ञ और सर्व-लोकदर्शी होता हुआ, अपने अतीन्द्रिय, अव्याबाध, अमूर्त सुख को प्राप्त करता है ।**

**टीका :** यह, सिद्ध के निरुपाधि ज्ञान, दर्शन और सुख का समर्थन है ।

वास्तव में, ज्ञान, दर्शन और सुख जिसका स्वभाव है ऐसा आत्मा संसार-दशा में, अनादि कर्मक्लेश द्वारा आत्मशक्ति संकुचित की गई होने से, पर-द्रव्य के संपर्क द्वारा क्रमशः कुछ-कुछ जानता है और देखता है तथा पराश्रित, मूर्त के साथ सम्बन्धवाला, सव्याबाध और सान्त सुख का अनुभव करता है; किन्तु जब उसके कर्मक्लेश समस्तरूप से विनाश को प्राप्त होते हैं तब, आत्मशक्ति अनर्गल (निरंकुश) और असंकुचित होने से, वह असहायरूप से (किसी की सहायता बिना) स्वयमेव युगपद् सब जानता है और देखता है तथा स्वाश्रित, मूर्त के साथ सम्बन्ध रहित, अव्याबाध और अनंत सुख का अनुभव करता है । इसलिए सब स्वयमेव जानने और देखनेवाले तथा स्वकीय सुख का अनुभवन करनेवाले सिद्ध को पर से (कुछ भी) प्रयोजन नहीं है ।।28।।

| संसारी जीव | मुक्त जीव |
|---|---|
| अनादि कर्म क्लेश द्वारा आत्म-शक्ति संकुचित करने के कारण | आत्मशक्ति अनर्गल और असंकुचित होने के कारण |
| पर द्रव्य के संपर्क द्वारा | असहायरूप से, स्वयमेव |
| क्रमशः | युगपत् |
| कुछ-कुछ | सर्व |
| **जानता और देखता है।** | |

| संसारी जीव | मुक्त जीव |
|---|---|
| पराश्रित | स्वाश्रित |
| मूर्त के साथ संबंध वाला | मूर्त के साथ संबंध रहित |
| सव्याबाध | अव्याबाध |
| सान्त | अनन्त |
| **सुख का अनुभव करता है।** | |

अतः स्वयमेव सर्व जानने-देखने वाले एवं
स्वकीय सुख को अनुभवन करने वाले
सिद्ध को पर से कुछ भी प्रयोजन नहीं है।

**पाणेहिं चदुहिं जीवदि जीविस्सदि जो हु जीविदो पुव्वं।**
**सो जीवो पाणा पुण बलमिंदियमाउ उस्सासो ।। २९ ।।**

**गाथार्थ: जो चार प्राणों से जीता है, जिएगा और पहले जीता था, वह जीव है; तथा प्राण बल, इन्द्रिय, आयु और श्वासोच्छ्वास हैं।**

**टीका :** यह जीवत्वगुण की व्याख्या है ।

प्राण इन्द्रिय, बल, आयु और उच्छ्वासस्वरूप हैं । उनमें चित्सामान्यरूप अन्वयवाले वे भाव-प्राण हैं और पुद्गल-सामान्यरूप अन्वयवाले वे द्रव्य-प्राण हैं । उन दोनों प्राणों को त्रिकाल अच्छिन्न-सन्तानरूप से धारण करता है इसलिए संसारी को जीवत्व है । मुक्त को (सिद्ध को) तो केवल भाव-प्राण ही धारण होने से जीवत्व है ऐसा समझना ।।29।।

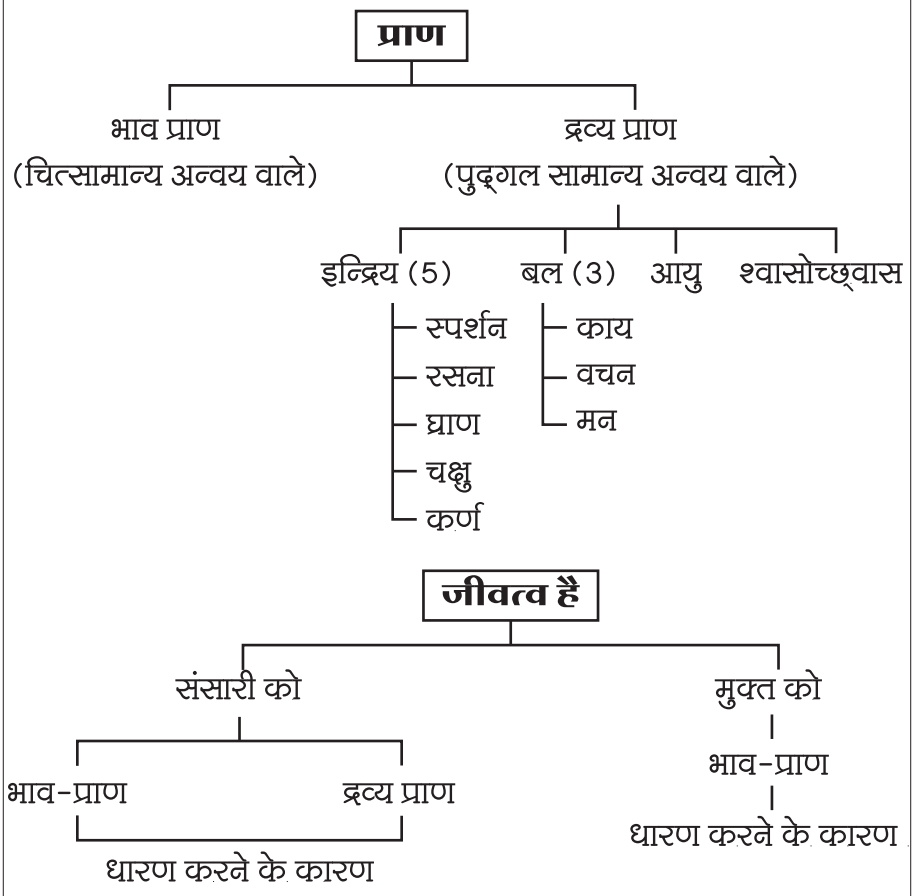


अगुरुलहुगा अणंता तेहिं अणंतेहिं परिणदा सव्वे ।
देसेहिं असंखादा सियलोगं सव्वमावण्णा ॥३०॥
केचिच्च अणावण्णा मिच्छादंसणकसायजोग जुदा ।
विजुदा य तेहिं बहुगा सिद्धा संसारिणो जीवा ॥३१॥ (जुम्मं)

गाथार्थ: अगुरुलघुक अनंत हैं, उन अनन्तों द्वारा सभी परिणमित हैं, वे प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यात हैं । उनमें से कुछ तो कथंचित् सम्पूर्ण लोक को प्राप्त हैं और कुछ अप्राप्त हैं । अनेक जीव मिथ्यादर्शन, कषाय से सहित संसारी हैं तथा अनेक उनसे रहित सिद्ध हैं ।

**टीका** : यहाँ जीवों का स्वाभाविक प्रमाण तथा उनका मुक्त और अमुक्त ऐसा विभाग कहा है ।

जीव वास्तव में अविभागी-एकद्रव्यपने के कारण लोकप्रमाण-एकप्रदेश वाले हैं । उनके अगुरुलघुगुण—अगुरुलघुत्व नाम का जो स्वरूपप्रतिष्ठत्व के कारणभूत स्वभाव उसका अविभाग परिच्छेद—प्रतिसमय होने वाली षट्स्थानपतित वृद्धिहानिवाले अनंत हैं; और (उन जीवों के) प्रदेश जो कि अविभाग परमाणु जितने मापवाले सूक्ष्म अंशरूप हैं वे असंख्य हैं । ऐसे उन जीवों में कतिपय कथंचित् (केवलसमुद्घात के कारण) लोकपूरण-अवस्था के प्रकार द्वारा समस्त लोक में व्याप्त होते हैं और कतिपय समस्त लोक में अव्याप्त होते हैं । और उन जीवों में जो अनादिप्रवाहरूप से प्रवर्तमान मिथ्यादर्शन-कषाय-योग सहित हैं वे संसारी हैं, जो उनसे विमुक्त हैं वे सिद्ध हैं; और वे हर प्रकार के जीव अनेक हैं ।।30-31।।

**अगुरुलघुत्व गुण = स्वरूप प्रतिष्ठत्व का कारणभूत स्वभाव।**

(1) जीव के अगुरुलघु गुण के अविभाग-प्रतिच्छेद अनंत हैं। वे अनंत प्रतिसमय होने वाली षट्स्थान पतित वृद्धि-हानि वाले हैं।

(2) जीव के प्रदेश असंख्य हैं।

जीव वास्तव में अविभागी एक द्रव्यपने के कारण लोकप्रमाण एक प्रदेश वाला है।

(3) कुछ जीव लोकपूरण अवस्था के द्वारा सर्व लोक में व्याप्त हैं, कुछ जीव सर्व लोक में अव्याप्त हैं।

(4) उनमें जो मिथ्यादर्शन, कषाय, योग सहित हैं वे संसारी हैं।

जो इनसे विमुक्त हैं, वे मुक्त हैं।

(5) वे संसारी और मुक्त अनंत हैं। (परन्तु मुक्त संसारी से कम ही हैं।)

जह पउमरायरयणं खित्तं खीरे पभासयदि खीरं ।
तह देही देहत्थो सदेहमेत्तं पभासयदि ॥३२॥

**गाथार्थ: जैसे दूध में पडा हुआ पद्मराग रत्न दूध को प्रकाशित करता है ; उसी प्रकार देह में स्थित देही / संसारी जीव स्वदेहमात्र प्रकाशित होता है ।**

**टीका :** यह देहप्रमाणपने के दृष्टान्त का कथन है ।

जिस प्रकार पद्मराग रत्न दूध में डाला जाने पर अपने से अव्यतिरिक्त प्रभासमूह द्वारा उस दूध में व्याप्त होता है, उसी प्रकार जीव अनादि काल से कषाय द्वारा मलिनता होने के कारण शरीर में रहता हुआ स्वप्रदेशों द्वारा उस शरीर में व्याप्त होता है । और जिस प्रकार अग्नि के संयोग से उस दूध में उफान आने पर उस पद्मराग रत्न के प्रभासमूह में उफान आता है और दूध बैठ जाने पर प्रभासमूह भी बैठ जाता है, उसी प्रकार विशिष्ट आहारादि के वश उस शरीर में वृद्धि होने पर उस जीव के प्रदेश विस्तृत होते हैं और शरीर फिर सूख जाने पर प्रदेश भी संकुचित हो जाते हैं । पुनश्च, जिस प्रकार वह पद्मराग रत्न दूसरे अधिक दूध में डाला जाने पर स्वप्रभासमूह के विस्तार द्वारा उस अधिक दूध में व्याप्त होता है, उसी प्रकार जीव दूसरे बड़े शरीर में स्थिति को प्राप्त होने पर स्वप्रदेशों के विस्तार द्वारा उस बड़े शरीर में व्याप्त होता है । और जिस प्रकार वह पद्मराग रत्न दूसरे कम दूध में डालने पर स्वप्रभासमूह के संकोच द्वारा उस थोड़े दूध में व्याप्त होता है, उसी प्रकार जीव अन्य छोटे शरीर में स्थिति को प्राप्त होने पर स्वप्रदेशों के संकोच द्वारा उस छोटे शरीर में व्याप्त होता है ।।32।।

| दृष्टान्त | दार्ष्टान्त |
|---|---|
| जिस प्रकार | उसी प्रकार |
| पद्मराग रत्न | जीव |
| दूध में डाला जाने पर | देह में रहता हुआ |
| अपनी प्रभा से | अपने प्रदेशों द्वारा |
| दूध को | स्वदेह मात्रत्व को |
| प्रकाशित करता है। | प्रकाशित करता है। |

**तथ्य :**

- ❖ दूध में डालने पर भी रत्न दूधमय नहीं होता।
- ❖ रत्न की प्रभा अभी भी दूध से एकमेक नहीं हुई है।
- ❖ दूध का एक हिस्सा निकल जाने पर उसके साथ रत्न की प्रभा नहीं आ जाती।
- ❖ रत्न के सामने दूध की कीमत नगण्य है।
- ❖ रत्न को आसानी से दूध से पृथक् किया जा सकता है।

**प्रश्न-** रत्न तो दूध के एक देश में रहता है, तो क्या आत्मा भी देह के एकदेश में रहता है, सर्वत्र नहीं?

**उत्तर-** यहाँ दृष्टान्त में रत्न की प्रभा को भी रत्न से अव्यतिरिक्त कहा है, जिससे रत्न, रत्न मात्र जितना ही नहीं है, वह प्रभा प्रमाण है। अब जिस प्रकार प्रभासहित रत्न सर्व दूध में व्याप्त है, उसी प्रकार आत्मा स्व-प्रदेशों द्वारा सर्व शरीर में व्याप्त है।

**सव्वत्थ अत्थि जीवो ण य एक्को एक्क काय एक्कट्ठो ।**
**अज्झवसाणविसिट्ठो चिट्ठदि मलिणो रजमलेहिं ।।३३।।**

**गाथार्थ: जीव सर्वत्र (सभी क्रमवर्ती शरीरों में) है तथा एक शरीर में (क्षीर-नीरवत्) एक रूप में रहता है; तथापि उसके साथ एकमेक नहीं है। अध्यवसान विशिष्ट वर्तता हुआ, रजमल (कर्ममल) द्वारा मलिन होने से वह भ्रमण करता है ।**

**टीका :** यहाँ जीव का देह से देहान्तर में अस्तित्व, देह से पृथक्त्व तथा देहान्तर में गमन का कारण कहा है ।

आत्मा संसार अवस्था में क्रमवर्ती अच्छिन्न शरीरप्रवाह में जिस प्रकार एक शरीर में वर्तता है; इस प्रकार उसे सर्वत्र (सर्व शरीरों में) अस्तित्व है । और किसी एक शरीर में, पानी में दूध की भाँति एकरूप से रहने पर भी, भिन्न स्वभाव के कारण उसके साथ

एक (तद्रूप) नहीं है; इस प्रकार उसे देह से पृथक्पना है । अनादि बंधनरूप उपाधि से विवर्तन पानेवाले विविध अध्यवसायों से विशिष्ट होने के कारण तथा वे अध्यवसाय जिसका निमित्त हैं ऐसे कर्मसमूह से मलिन होने के कारण भ्रमण करते हुए आत्मा को तथाविध अध्यवसायों तथा कर्मों से रचे जाने वाले अन्य शरीर में प्रवेश होता है; इस प्रकार उसे देहान्तर में गमन होने का कारण कहा गया ।।33।।

**तथ्य :**

(1) आत्मा संसार-दशा में क्रमवर्ती अच्छिन्न शरीर प्रवाह में वर्तता है, अतः वह सर्वत्र है।

(2) एक शरीर में एकरूप से रहने पर भी भिन्न स्वभाव के कारण उनसे एक नहीं है। यह देह से पृथक्त्व है।

(3) **देहान्तर में गमन का कारण -** विविध अध्यवसाय और कर्म समूह से मलिन होने से आत्मा का उन अध्यवसाय और कर्मों से रचित शरीर में प्रवेश होता है।

**जेसिं जीवसहाओ णत्थि अभावो य सव्वहा तस्स ।**
**ते होंति भिण्णदेहा सिद्धा वचिगोयरमदीदा ।।३४।।**

**गाथार्थ: जिनके विभाव-प्राण धारण करनेरूप जीवस्वभाव नहीं है, और उसका सर्वथा अभाव भी नहीं है ; वे शरीर से भिन्न, वचनगोचर अतीत (वचनातीत) सिद्ध हैं ।**

**टीका :** यह सिद्धों के जीवत्व और देह-प्रमाणत्व की व्यवस्था है ।

सिद्धों को वास्तव में द्रव्यप्राण के धारणस्वरूप जीवस्वभाव मुख्यरूप से नहीं है; (उन्हें) जीव-स्वभाव का सर्वथा अभाव नहीं है, क्योंकि भाव-प्राण के धारणस्वरूप जीवस्वभाव का मुख्यरूप से सद्भाव है । और उन्हें शरीर के साथ, नीर-क्षीर की भाँति, एकरूप वृत्ति नहीं है; क्योंकि शरीर-संयोग से हेतुभूत कषाय और योग का वियोग हुआ

है इसलिए वे अतीत अनंतर शरीर-प्रमाण अवगाहरूप परिणत होने पर भी अत्यन्त देहरहित हैं । और वचन-गोचरातीत उनकी महिमा है; क्योंकि लौकिक प्राण के धारण बिना और शरीर के सम्बन्ध बिना, संपूर्णरूप से प्राप्त किये हुए निरुपाधि स्वरूप द्वारा वे सतत प्रतपते हैं (प्रतापवंत वर्तते हैं) ।।34।।

## सिद्ध भगवान

| क्रं. | विशेषण | हेतु |
|---|---|---|
| 1. | को जीव स्वभाव नहीं है। | क्योंकि द्रव्य प्राण का धारण नहीं है। |
| 2. | के जीव स्वभाव है। | क्योंकि भाव प्राण का धारण है। |
| 3. | अत्यन्त देहरहित हैं । | क्योंकि शरीर संयोग के हेतुभूत कषाय-योग का वियोग हुआ है। |
| 4. | की महिमा वचनगोचरातीत है। | क्योंकि लौकिक प्राण व शरीर के बिना ही सम्पूर्ण निरुपाधि स्वरूप द्वारा वे प्रतापवंत हैं। |

**ण कुदोचि वि उप्पण्णो जम्हा कज्जं ण तेण सो सिद्धो ।**
**उप्पादेदि ण किंचि वि कारणमवि तेण ण स होदि ॥३५॥**

**गाथार्थ: वे सिद्ध किसी से भी उत्पन्न नहीं हुए हैं, अत: कार्य नहीं हैं ; तथा किसी को भी उत्पन्न नहीं करते, अत: वे कारण भी नहीं हैं ।**

**टीका :** यह, सिद्ध को कार्य-कारण भाव होने का निरास है ।

जिस प्रकार संसारी जीव कारणभूत ऐसी भाव-कर्मरूप आत्म-परिणाम-सन्तति और द्रव्य-कर्मरूप पुद्गल-परिणाम-सन्तति द्वारा उन-उन देव-मनुष्य-तिर्यंच-नारक

के रूप में कार्यभूतरूप से उत्पन्न होता है, उसी प्रकार सिद्धरूप से भी उत्पन्न होता है—ऐसा नहीं है; (और) सिद्ध वास्तव में, दोनों कर्मों का क्षय होने पर, स्वयं (सिद्धरूप से) उत्पन्न होते हुए अन्य किसी कारण से उत्पन्न नहीं होते ।

पुनश्च, जिस प्रकार वही संसारी (जीव) कारणभूत होकर कार्यभूत ऐसी भाव-कर्मरूप आत्म-परिणाम-सन्तति और द्रव्य-कर्मरूप पुद्गल-परिणाम-सन्तति रचता हुआ कार्यभूत ऐसे वे-वे देव-मनुष्य-तिर्यंच-नारक के रूप में अपने में उत्पन्न करता है, उसी प्रकार सिद्ध का रूप भी उत्पन्न करता है— ऐसा नहीं है; (और) सिद्ध वास्तव में, दोनों कर्मों का क्षय होने पर, स्वयं अपने को (सिद्धरूप से) उत्पन्न करते हुए अन्य कुछ भी उत्पन्न नहीं करते ।।35।।

| सिद्ध भगवान | |
|---|---|
| **कार्य नहीं हैं ।** | क्योंकि भाव व द्रव्य कर्मों रूप कारणों के द्वारा सिद्ध रूप से उत्पन्न नहीं हुए हैं। |
| **कारण नहीं हैं।** | क्योंकि देवादि पर्यायरूप कार्यों को अपने में उत्पन्न नहीं करते। |

| संसारी जीव | |
|---|---|
| **कार्य है।** | क्योंकि भाव-द्रव्य कर्मरूप कारणों के द्वारा देव-मनुष्य-तिर्यंच- नारक रूप में उत्पन्न होता है। |
| **कारण है ।** | क्योंकि देवादि पर्यायरूप कार्यों को अपने में उत्पन्न करता है। |

| मुक्त जीव | |
|---|---|
| भाव-द्रव्य कर्म संततिरूप कारणों के | कार्य नहीं हैं। |
| देवादि पर्यायरूप कार्यों के | कारण नहीं हैं। |

| संसारी जीव | |
|---|---|
| भाव-द्रव्य कर्म संततिरूप कारणों के | कार्य हैं। |
| देवादि पर्यायरूप कार्यों के | कारण हैं। |

| सिद्ध (मुक्त जीव)<br>दोनों कर्मों का क्षय होने पर | |
|---|---|
| स्वयं उत्पन्न होते हुए<br>अन्य किसी कारण से **उत्पन्न नहीं होते।** | स्वयं अपने को उत्पन्न करते हुए<br>अन्य कुछ भी **उत्पन्न नहीं करते।** |

**सस्सदमध उच्छेदं भव्वमभव्वं च सुण्णमिदरं च ।**
**विण्णाणमविण्णाणं ण वि जुज्जदि असदि सब्भावे ॥३६॥**

**गाथार्थ: (मोक्ष में जीव का) सद्भाव न होने पर शाश्वत, नाशवान, भव्य (होने योग्य), अभव्य (न होने योग्य), शून्य, अशून्य, विज्ञान और अविज्ञान (जीव में) घटित नहीं होते हैं।**

**टीका :** यहाँ, 'जीव का अभाव सो मुक्ति है' इस बात का खण्डन किया है ।

(१) द्रव्य, द्रव्यरूप से शाश्वत है, (२) नित्य द्रव्य में पर्यायों का प्रतिसमय नाश होता है, (३) द्रव्य, सर्वदा अभूत पर्यायरूप से भाव्य (होने योग्य, परिणमित होने योग्य) है, (४) द्रव्य, सर्वदा भूत पर्यायरूप से अभाव्य (न होने योग्य) है, (५) द्रव्य, अन्य द्रव्यों से सदा शून्य है, (६) द्रव्य, स्वद्रव्य से सदा अशून्य है, (७) किसी जीवद्रव्य में अनंत ज्ञान और किसी में सान्त ज्ञान है, (८) किसी जीवद्रव्य में अनन्त अज्ञान और किसी में सान्त अज्ञान है। यह सब, अन्यथा घटित न होता हुआ, मोक्ष में जीव के सद्भाव को प्रगट करता है ।।36।।

| द्रव्य है | |
|---|---|
| 1. द्रव्यरूप से | शाश्वत |
| 2. पर्यायरूप से | नाशवंत |
| 3. सर्वदा अभूत पर्यायों से | भाव्य |
| 4. सर्वदा भूत पर्यायों से | अभाव्य |
| 5. अन्य द्रव्यों से सदा | शून्य |
| 6. स्वद्रव्य से सदा | अशून्य |

**किसी जीव द्रव्य में है**

| पद | स्वामी |
|---|---|
| अनन्त ज्ञान | मुक्त जीव |
| सान्त ज्ञान | सम्यग्ज्ञान से मिथ्याज्ञान प्राप्त करने वाला जीव |
| अनन्त अज्ञान | अभव्य जीव, दूरान्दूर भव्य |
| सान्त अज्ञान | निकट भव्य मिथ्यादृष्टि, जिसे शीघ्र ही सम्यग्ज्ञान होना है। |
| **अतः मोक्ष में जीव का सद्भाव है।** | |

कम्माणं फलमेक्को एक्को कज्जं तु णाणमध एक्को ।
चेदयदि जीवरासी चेदगभावेण तिविहेण ॥३७॥

गाथार्थ: तीन प्रकार के चेतक-भाव द्वारा एक जीवराशि कर्मों के फल को, एक जीवराशि कार्य को और एक जीवराशि ज्ञान को चेतती है / वेदती है ।

**टीका** : यह, चेतयितृत्वगुण की व्याख्या है ।

कोई चेतयिता अर्थात् आत्मा तो, जो अति प्रकृष्ट मोह से मलिन है और जिसका प्रभाव (शक्ति) अति प्रकृष्ट ज्ञानावरण से मुंद गया है, ऐसे चेतक-स्वभाव द्वारा सुख-दुःखरूप कर्मफल को ही प्रधानतः चेतते हैं, क्योंकि उनका अति प्रकृष्ट वीर्यान्तराय से कार्य करने का सामर्थ्य नष्ट हो गया है ।

दूसरे चेतयिता अर्थात् आत्मा, जो अति प्रकृष्ट मोह से मलिन है और जिसका प्रभाव प्रकृष्ट ज्ञानावरण से मुंद गया है, ऐसे चेतक-स्वभाव द्वारा सुख-दुःख-रूप कर्मफल के अनुभव से मिश्रितरूप से 'कार्य' को ही प्रधानतः चेतते हैं, क्योंकि उन्होंने अल्प वीर्यान्ताराय के क्षयोपशम से कार्य करने का सामर्थ्य प्राप्त किया है ।

और दूसरे चेतयिता अर्थात् आत्मा, जिसमें से सकल मोह-कलंक धुल गया है तथा समस्त ज्ञानावरण के विनाश के कारण जिसका समस्त प्रभाव अत्यन्त विकसित हो गया है ऐसे चेतक-स्वभाव द्वारा 'ज्ञान' को ही कि जो ज्ञान अपने से अव्यतिरिक्त स्वाभाविक सुख वाला है उसी को चेतते हैं, क्योंकि उन्होंने समस्त वीर्यान्तराय के क्षय से अनन्त वीर्य को प्राप्त किया है इसलिए उनको कर्मफल निर्जरित हो गया है और अत्यन्त कृतकृत्यपना हुआ है ।।37।।

**सव्वे खलु कम्मफलं थावरकाया तसा हि कज्जजुदं ।**

**पाणित्तमदिक्कंता णाणं विंदंति ते जीवा ॥३८॥**

**गाथार्थ: सभी स्थावर जीवसमूह कर्मफल का; त्रस कर्मसहित कर्मफल का वेदन करते हैं तथा प्राणित्व का अतिक्रमण कर गए वे जीव (सर्वज्ञ भगवान) ज्ञान का वेदन करते हैं।**

**टीका** : यहाँ, 'कौन क्या चेतता है?' वह कहा है ।

चेतता है, अनुभव करता है, उपलब्ध करता है और वेदता है– ये एकार्थ हैं, क्योंकि चेतना, अनुभूति, उपलब्धि और वेदना का एक अर्थ है । वहाँ, स्थावर कर्मफल को चेतते हैं, त्रस कार्य को चेतते हैं, केवलज्ञानी ज्ञान को चेतते हैं ।।38।।

| कोई चेतयिता आत्मा... | | | | | | | स्वामी |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| जो अतिप्रकृष्ट मोह से मलिन हैं, | जिसका प्रभाव अतिप्रकृष्ट ज्ञानावरण से मुंढ़ गया है | ऐसे चेतक स्वभाव द्वारा | सुख-दुःख रूप कर्मफल को ही | प्रधानतः चेतते हैं | क्योंकि अति प्रकृष्ट वीर्यांतराय से कार्य करने का सामर्थ्य नष्ट हो गया है, | उसके वह **कर्मफल चेतना** है | सर्व स्थावर जीव समूह |
| जो अतिप्रकृष्ट मोह से मलिन हैं, | जिनका प्रभाव प्रकृष्ट ज्ञानावरण से मुंढ़ गया है | ऐसे चेतक स्वभाव द्वारा | सुख-दुःख रूप कर्मफल से मिश्रित कार्य को ही | प्रधानतः चेतते हैं | क्योंकि अल्प वीर्यांतराय के क्षयोपशम से कार्य करने का सामर्थ्य प्राप्त किया है, | उसके वह **कर्म चेतना** है। | सर्व त्रस जीव समूह |
| जिसके सकल मोह कलंक धुल गया है | जिसका समस्त प्रभाव ज्ञानावरण के विनाश के कारण अत्यंत विकसित हो गया है | ऐसे चेतक स्वभाव द्वारा | स्वयं से अव्यतिरिक्त स्वाभाविक सुख वाले ज्ञान को ही | प्रधानतः चेतते हैं | क्योंकि समस्त वीर्यांतराय के क्षय से अनंतवीर्य को प्राप्त किया है, | उसके वह **ज्ञान चेतना** है। | प्राणों का अतिक्रम करने वाले केवली भगवान |

**प्रश्न** - ज्ञान-चेतना वाले जीव अनंत वीर्य-संपन्न होने पर भी कुछ कार्य क्यों नहीं करते ?

**उत्तर** - क्योंकि उनके (1) कर्मफल निर्जरित हो गया है।
(2) अत्यंत कृतकृत्यपना हुआ है।

उवओगो खलु दुविहो णाणेण य दंसणेण संजुत्तो ।
जीवस्स सव्वकालं अणण्णभूदं वियाणीहि॥३९॥

**गाथार्थ: वास्तव में जीव के सर्वकाल, अनन्यरूप से रहनेवाला ज्ञान और दर्शन से संयुक्त दो प्रकार का उपयोग जानो।**

अब उपयोग गुण का व्याख्यान है

आत्मा का चैतन्य-अनुविधायी (अर्थात् चैतन्य का अनुसरण करने वाला) परिणाम सो उपयोग है । वह भी दो प्रकार का है- ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग । वहां, विशेष को ग्रहण करने वाला ज्ञान है और सामान्य को ग्रहण करने वाला दर्शन है । और उपयोग सर्वदा जीव से अपृथग्भूत (अभिन्न) ही है, क्योंकि एक अस्तित्व से रचित है ।।39।।

**उपयोग**

**(आत्मा का चैतन्य-अनुविधायी परिणाम)**
**(सर्वदा जीव से अपृथग्भूत)**

| ज्ञानोपयोग | दर्शनोपयोग |
|---|---|
| (विशेष को ग्रहण करने वाला) | (सामान्य को ग्रहण करने वाला) |

आभिणिसुदोधिमणकेवलाणि णाणाणि पंचभेयाणि ।
कुमदिसुदविभंगाणि य तिण्णि वि णाणेहिं संजुत्ते ॥४०॥

**गाथार्थ: आभिनिबोधिक (मतिज्ञान), श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान - ये ज्ञान के पाँच भेद हैं ; तथा कुमति, कुश्रुत, विभंग - ये तीन (अज्ञान) भी ज्ञान के साथ संयुक्त हैं।**

**टीका** : यह, ज्ञानोपयोग के भेदों के नाम और स्वरूप का कथन है ।

वहां, (१) आभिनिबोधिकज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मनःपर्ययज्ञान, (५) केवलज्ञान, (६) कुमतिज्ञान, (७) कुश्रुतज्ञान और (८) विभंगज्ञान– इस प्रकार (ज्ञानोपयोग के भेदों के) नाम का कथन है ।

(अब उनके स्वरूप का कथन किया जाता हैः-) आत्मा वास्तव में अनंत, सर्व आत्म-प्रदेशों में व्यापक, विशुद्ध ज्ञानसामान्य-स्वरूप है । वह (आत्मा) वास्तव में अनादि ज्ञानावरण कर्म से आच्छादित प्रदेशवाला वर्तता हुआ, (१) उस प्रकार के (अर्थात् मतिज्ञान के) आवरण के क्षयोपशम से और इन्द्रिय-मन के अवलम्बन से मूर्त-अमूर्त द्रव्य का विकलरूप से विशेषतः अवबोधन करता है वह आभिनिबोधिक ज्ञान है; (२) उस प्रकार के (अर्थात् श्रुतज्ञान के ) आवरण के क्षयोपशम से और मन के अवलम्बन से मूर्त-अमूर्त द्रव्य का विकलरूप से विशेषतः अवबोधन करता है वह श्रुतज्ञान है; (३) उस प्रकार के आवरण के क्षयोपशम से ही मूर्त द्रव्य का विकलरूप से विशेषतः अवबोधन करता है वह अवधिज्ञान है, (४) उस प्रकार के आवरण के क्षयोपशम से ही परमनोगत मूर्त द्रव्य का विकलरूप से विशेषतः अवबोधन करता है वह मनःपर्ययज्ञान है, (५) समस्त आवरण के अत्यन्त क्षय से, केवल ही (आत्मा अकेला ही), मूर्त-अमूर्त द्रव्य का सकलरूप से विशेषतः अवबोधन करता है वह स्वाभाविक केवलज्ञान है, (६) मिथ्यादर्शन के उदय के साथ का आभिनिबोधिक ज्ञान ही कुमतिज्ञान है, (७) मिथ्यादर्शन के उदय के साथ का श्रुतज्ञान ही कुश्रुतज्ञान है, (८) मिथ्यादर्शन के उदय के साथ का अवधिज्ञान ही विभंगज्ञान है । इस प्रकार स्वरूप का कथन है ।

इस प्रकार मतिज्ञानादि आठ ज्ञानोपयोगों का व्याख्यान किया गया ।।40।।

## आत्मा

**सर्व आत्मप्रदेशों में व्यापक, विशुद्ध ज्ञानसामान्य स्वरूप है।**
**वह वास्तव में अनादि ज्ञानावरण कर्म से आच्छादित होता हुआ...**

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| मतिज्ञानावरण | **कर्म के क्षयो-पशम से** | इंद्रिय, मन के अवलंबन से | मूर्त-अमूर्त द्रव्य को | **विकल रूप से** | **विशेषतः जानता है वह** | **आभिनि-बोधिक ज्ञान** है। |
| श्रुतज्ञानावरण | | मन के अवलंबन से | मूर्त-अमूर्त द्रव्य को | | | **श्रुतज्ञान** है। |
| अवधिज्ञानावरण | | | मूर्त द्रव्य को | | | **अवधिज्ञान** है। |
| मनः पर्यय ज्ञानावरण | | | परमनोगत मूर्त द्रव्य को | | | **मनः पर्यय ज्ञान** है। |
| समस्त आवरण | कर्म के अत्यंत क्षय से | केवल ही | मूर्त-अमूर्त द्रव्य को से | सकल रूप अवबोधन करता है, वह | विशेषतः है। | **केवलज्ञान** |

| | | |
|---|---|---|
| मिथ्यादर्शन के उदय के साथ का | { | आभिनिबोधिक ज्ञान ही **कुमतिज्ञान** है।<br>श्रुतज्ञान ही **कुश्रुतज्ञान** है।<br>अवधिज्ञान ही **विभंगज्ञान** है। |

**मदिणाणं पुण तिविहं उवलद्धी भावणं च उवओगो ।**
**तह एव चदुवियप्पं दंसणपुव्वं हवदि णाणं ।।४०-१।।**

**गाथार्थ: उपलब्धि, भावना और उपयोग के भेद से मतिज्ञान तीन प्रकार का है; उसी प्रकार वह चार प्रकार का है; तथा वह ज्ञान दर्शनपूर्वक होता है।**

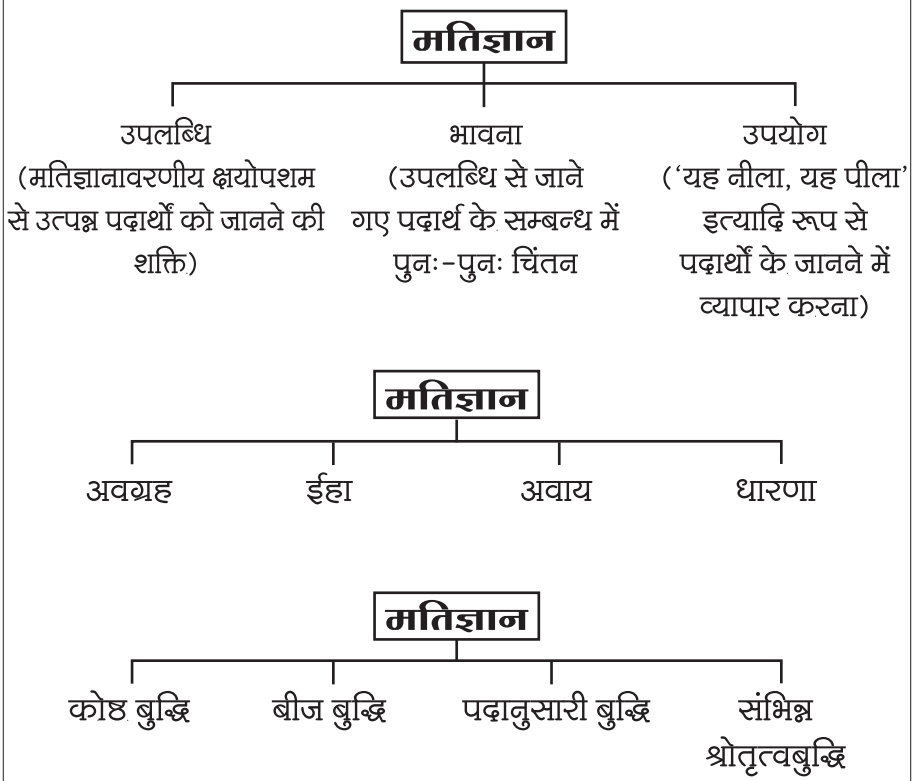

सुदणाणं पुण णाणी भणंति लद्धी य भावणा चेव ।
उवओगणयवियप्पम णाणेण य वत्थु अत्थस्स ।।४०-२।।

गाथार्थ : लब्धि और भावना-रूप जानने की अपेक्षा सम्पूर्ण वस्तु को जानने वाले उपयोग प्रमाण-रूप और वस्तु के एकदेश को जानने वाले नय विकल्परूप-ज्ञान को ज्ञानी श्रुतज्ञान कहते हैं।

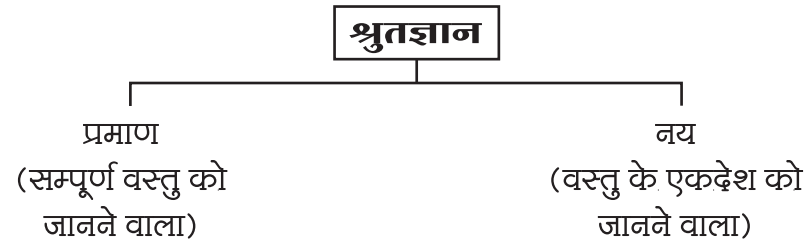


ओहिं तहेव घेप्पदु देसं परमं च ओहिसव्वं च ।
तिण्णिवि गुणेण णियमा भवेण देसं तहा णियदं ।।४०-३।।

गाथार्थ: अवधिज्ञान उसी प्रकार अर्थात् प्रत्यक्ष रूप में मूर्त वस्तु को जानता है। देशावधि, परमावधि और सर्वावधि ये तीनों नियम से गुणप्रत्यय होते हैं तथा भवप्रत्यय नियत देश (देव-नरकगति) में होता है ।

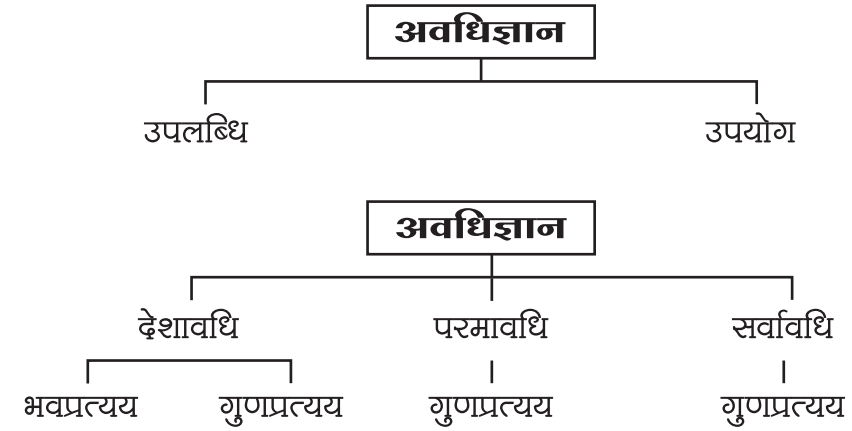


विउलमदी पुण णाणं अज्जवणाणं च दुविह मण्णाणं ।
एदे संजमलद्धी उवओगे अप्पमत्तस्स ।।४०-४।।

गाथार्थ: मन:पर्यय ज्ञान, ऋजुमति और विपुलमति के भेद से दो प्रकार का है; तथा संयम-लब्धि युक्त अप्रमत्त जीव के विशुद्ध परिणाम में होता है ।

णाणं णेयणिमित्तं केवलणाणं ण होदि सुदणाणं ।
णेयं केवलणाणं णाणाणाणं च णत्थि केवलिणो ।।४०-५।।

गाथार्थ: केवलज्ञान ज्ञेय-निमित्तक ज्ञान नहीं है, तथापि वह श्रुतज्ञान भी नहीं है। सम्पूर्ण ज्ञेयों को जानने वाला केवलज्ञान है, केवली के कथंचित् ज्ञानाज्ञान नहीं है (सर्वथा ज्ञान ही है)।

**केवलज्ञान नहीं है**

ज्ञेय-निमित्तक | श्रुतज्ञान | ज्ञानाज्ञान

तो कैसा है?

**सर्वत्र ज्ञानरूप ही है**

मिच्छत्ता अण्णाणं अविरदिभावो य भावावरणा ।
णेयं पडुच्च काले तह दुण्णय दुप्पमाणं च ।।४०-६।।

**गाथार्थ: मिथ्यात्व के कारण भाव आवरण से अज्ञान और अविरतिभाव, मिथ्यात्वरूप हो जाते हैं; ज्ञेयों को जानते समय (सभी नय) दुर्नय तथा (सभी प्रमाण) दुष्प्रमाण कहलाते हैं।**

दंसणमवि चक्खुजुदं अचक्खुजुदमवि य ओहिणा सहियं ।
अणिधणमणंतविसयं केवलियं चावि पण्णत्तं ॥४१॥

**गाथार्थ: दर्शन भी चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और अनिधन / अविनाशी अनंत विषय वाले केवलदर्शन के भेद से चार प्रकार का कहा गया है ।**

**टीका :** यह, दर्शनोपयोग के भेदों के नाम और स्वरूप का कथन है ।

(१) चक्षुदर्शन, (२) अचक्षुदर्शन, (३) अवधिदर्शन और (४) केवलदर्शन - इस प्रकार (दर्शनोपयोग के भेदों के) नाम का कथन है ।

(अब उनके स्वरूप का कथन किया जाता है:-) आत्मा वास्तव में अनंत, सर्व आत्मप्रदेशों में व्यापक, विशुद्ध दर्शनसामान्य-स्वरूप है । वह (आत्मा) वास्तव में अनादि दर्शनावरण कर्म से आच्छादित प्रदेशोंवाला वर्तता हुआ, (१) उस प्रकार के (अर्थात् चक्षुदर्शन के) आवरण के क्षयोपशम से और चक्षु इन्द्रिय के अवलम्बन से मूर्त द्रव्य का विकलरूप से सामान्यतः अवबोधन करता है वह चक्षुदर्शन है, (२) उस प्रकार के आवरण के क्षयोपशम से तथा चक्षु के अतिरिक्त शेष चार इन्द्रियों और मन के अवलम्बन से मूर्त-अमूर्त द्रव्य का विकलरूप से सामान्यतः अवबोधन करता है वह अचक्षुदर्शन है, (३) उस प्रकार के आवरण के क्षयोपशम से ही मूर्त द्रव्य का विकलरूप

से सामान्यतः अवबोधन करता है, वह अवधिदर्शन है, (४) समस्त आवरण के अत्यन्त क्षय से, केवल ही (आत्मा अकेला ही), मूर्त-अमूर्त द्रव्य का सकलरूप से सामान्यतः अवबोधन करता है वह स्वाभाविक केवलदर्शन है । इस प्रकार (दर्शनोपयोग के भेदों के) स्वरूप का कथन है ।।41।।

**आत्मा**

**सर्व आत्मप्रदेशों में व्यापक, विशुद्ध दर्शनसामान्य स्वरूप है।**

**वह वास्तव में अनादि दर्शनावरण कर्म से आच्छादित होता हुआ...**

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| चक्षु दर्शनावरण | **कर्म के क्षयोपशम से** | चक्षु इंद्रिय के अवलंबन से | मूर्त द्रव्य का | **विकल रूप से** | **सामान्यतः अवबोधन करता है, वह** | **चक्षुदर्शन** है। |
| अचक्षु दर्शनावरण | | शेष 4 इंद्रियों एवं मन के अवलंबन से | मूर्त-अमूर्त द्रव्य का | | | **अचक्षुदर्शन** है। |
| अवधि दर्शनावरण | | | मूर्त द्रव्य का | | | **अवधिदर्शन** है। |
| समस्त आवरण | कर्म के अत्यंत क्षय से | केवल ही (स्वयं ही) | मूर्त-अमूर्त द्रव्य का | सकल रूप से | सामान्यतः अवबोधन करता है वह | स्वाभाविक **केवलदर्शन** है |

ण वियप्पदि णाणादो णाणी णाणाणि होंति णेगाणि ।

तम्हा दु विस्सरूवं भणियं दवियत्ति णाणीहिं ॥४२॥

**गाथार्थ: ज्ञानी को ज्ञान से पृथक् नहीं किया जा सकता है । ज्ञान अनेक हैं, इसलिये ज्ञानियों ने द्रव्य को विश्वरूप / अनेक रूप कहा है ।**

**टीका :** एक आत्मा के अनेक ज्ञानात्मक होने का यह समर्थन है ।

प्रथम तो ज्ञानी (आत्मा) ज्ञान से पृथक् नहीं है; क्योंकि दोनों एक अस्तित्व से रचित होने से दोनों को एकद्रव्यपना है, दोनों के अभिन्न प्रदेश होने से दोनों को एकक्षेत्रपना है, दोनों एक समय में रचे जाते होने से दोनों को एककालपना है, दोनों का एक स्वभाव होने से दोनों को एकभावपना है । किन्तु ऐसा कहा जाने पर भी, एक आत्मा में आभिनिबोधिक आदि अनेक ज्ञान विरोध नहीं पाते, क्योंकि द्रव्य विश्वरूप है। द्रव्य वास्तव में सहवर्ती और क्रमवर्ती ऐसे अनंत गुणों तथा पर्यायों का आधार होने के कारण अनन्तरूप वाला होने से, एक होने पर भी, विश्वरूप कहा जाता है ।।42।।

ज्ञानी (आत्मा) ज्ञान से पृथक् नहीं है। क्योंकि

**ज्ञान और ज्ञानी को**

- एक द्रव्यपना है — दोनों एक अस्तित्व से रचित होने से
- एक क्षेत्रपना है — दोनों के अभिन्न प्रदेश होने से
- एककालपना है — दोनों एकसमय में रचे जाने से
- एक भावपना है — दोनों का एक स्वभाव होने से

तथापि एक आत्मा में मति आदि अनेक ज्ञान हैं

क्योंकि द्रव्य विश्वरूप (अनेक रूप) है।

द्रव्य विश्वरूप है, क्योंकि वह अनंत गुण और पर्यायों का आधार है।

जदि हवदि दव्वमण्णं गुणदो य गुणा य दव्वदो अण्णे ।
दव्वाणंतियमहवा दव्वाभावं पकुव्वंति ॥४३॥

**गाथार्थ: यदि द्रव्य गुण से (सर्वथा) अन्य हो तथा गुण, द्रव्य से अन्य हों तो (या तो) द्रव्य की अनन्तता होगी या द्रव्य का अभाव हो जाएगा ।**

**टीका :** द्रव्य का गुणों से भिन्नत्व हो और गुणों का द्रव्य से भिन्नत्व हो तो दोष आता है उसका यह कथन है ।

गुण वास्तव में किसी के आश्रय से होते हैं; (वे) जिसके आश्रित हों वह द्रव्य होता है । वह (द्रव्य) यदि गुणों से अन्य (भिन्न) हो तो फिर भी, गुण किसी के आश्रित होंगे; (वे) जिसके आश्रित हों वह द्रव्य होता है । वह यदि गुणों से अन्य हो तो फिर भी, गुण किसी के आश्रित होंगे; (वे) जिसके आश्रित हों वह द्रव्य होता है । वह भी गुणों से अन्य ही हो.....इस प्रकार यदि द्रव्य का गुणों से भिन्नत्व हो तो, द्रव्य की अनन्तता हो ।

वास्तव में द्रव्य अर्थात् गुणों का समुदाय । गुण यदि समुदाय से अन्य हो तो समुदाय कैसा ? इस प्रकार, यदि गुणों का द्रव्य से भिन्नत्व हो तो, द्रव्य का अभाव हो ।।43।।

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1) द्रव्य | गुणों से | **अन्य हो तो** | द्रव्य की अनंतता हो जाएगी। |
| 2) गुण | द्रव्य से | | द्रव्य का अभाव हो जाएगा। |

**द्रव्य = गुणों का समुदाय**

↓

यदि गुण समुदाय से अन्य हो तो समुदाय ही नहीं रहा।

↓

तब द्रव्य का ही अभाव हुआ।

↓

**अतः गुण द्रव्य से अन्य नहीं होते।**

**अविभत्तमणण्णत्तं दव्वगुणाणं विभत्तमण्णत्तं ।**

**णेच्छन्ति णिच्चयण्हू तव्विवरीदं हि वा तेसिं ॥४४॥**

**गाथार्थः द्रव्य और गुणों के अविभक्तरूप अनन्यता है। निश्चय के ज्ञाता उनके (द्रव्य-गुणों के) विभक्तरूप अन्यता या उससे विपरीत विभक्तरूप अनन्यता स्वीकार नहीं करते हैं।**

**टीका** : यह, द्रव्य और गुणों के स्वोचित अनन्यपने का कथन है ।

द्रव्य और गुणों को अविभक्त-प्रदेशत्वस्वरूप अनन्यपना स्वीकार किया जाता है; परन्तु विभक्त-प्रदेशत्वस्वरूप अन्यपना तथा (विभक्त-प्रदेशत्वस्वरूप) अनन्यपना स्वीकार नहीं किया जाता । वह स्पष्ट समझाया जाता हैः-जिस प्रकार एक परमाणु को एक स्व-प्रदेश के साथ अविभक्तपना होने से अनन्यपना है, उसी प्रकार एक परमाणु को तथा उसमें रहने वाले स्पर्श-रस-गंध-वर्ण आदि गुणों को अविभक्त-प्रदेशत्व होने से अनन्यपना है; परन्तु जिस प्रकार अत्यन्त दूर ऐसे सह्य और विंध्य को विभक्त-प्रदेशत्वस्वरूप अन्यपना है तथा अत्यन्त निकट ऐसे मिश्रित क्षीर-नीर को विभक्त-प्रदेशत्वस्वरूप अनन्यपना है, उसी प्रकार द्रव्य और गुणों को विभक्त-प्रदेशत्व न होने से (विभक्त-प्रदेशत्वस्वरूप) अन्यपना तथा (विभक्त-प्रदेशत्वस्वरूप) अनन्यपना नहीं है ।।44।।

| पद | स्वामी | उदाहरण |
|---|---|---|
| 1. अविभक्त प्रदेशत्व अनन्यता | द्रव्य-गुण | अग्नि-ऊष्णता, परमाणु-वर्ण, जीव-ज्ञान |
| 2. अविभक्त प्रदेशत्व अन्यता | द्रव्य-गुण | |
| 3. विभक्त प्रदेशत्व अन्यता | दो भिन्न द्रव्य | सह्य-विंध्य पर्वत, जीव-अन्य जीव, पिता-पुत्र |
| 4. विभक्त प्रदेशत्व अनन्यता | दो भिन्न द्रव्य | मिश्रित जल-दूध, देह-जीव, जीव-कर्म |

अविभक्त प्रदेशत्व - क्षेत्र अपेक्षा

अनन्यत्व - भाव अपेक्षा

❖ प्रस्तुत गाथा में 'अविभक्त प्रदेशत्व अन्यता' की चर्चा नहीं की है, तथापि वह द्रव्य-गुणों में सद्भूत व्यवहार नय से बन जाती है।

❖ एक क्षेत्रावगाही होने पर भी विभक्त प्रदेशत्व हो सकता है। जैसे जीव-देह, नीर-क्षीर आदि।

**ववदेसा संठाणा संखा विसया य होंति ते बहुगा ।**
**ते तेसिमणण्णत्ते अण्णत्ते चावि विज्जन्ते ॥४५॥**

**गाथार्थ: वे व्यपदेश, संस्थान, संख्या और विषय अनेक हैं ; तथापि वे उनके (द्रव्य-गुणों के) अनन्यत्व-अन्यत्व में भी विद्यमान रहते हैं ।**

**टीका :** 'व्यपदेश (कथन) आदि एकान्त से द्रव्य-गुणों के अन्यपने का कारण है' - इसका यहाँ खण्डन किया है ।

जिस प्रकार ''देवदत्त की गाय'' इस प्रकार अन्यपने में षष्ठी व्यपदेश होता है, उसी प्रकार ''वृक्ष की शाखा'', ''द्रव्य के गुण'' ऐसे अनन्यपने में भी (षष्ठी व्यपदेश) होता है। जिस प्रकार 'देवदत्त फल को अंकुश द्वारा धनदत्त के लिए वृक्ष पर से बगीचे में तोड़ता है' ऐसे अन्यपने में कारक-व्यपदेश होता है, उसी प्रकार मिट्टी स्वयं घटभाव को अपने द्वारा अपने लिए अपने में से अपने में करती है', 'आत्मा आत्मा को आत्मा द्वारा

आत्मा के लिए आत्मा में से आत्मा में जानता है' ऐसे अनन्यपने में भी (कारक-व्यपदेश) होता है । जिस प्रकार 'ऊँचे देवदत्त की ऊँची गाय' ऐसा अन्यपने में संस्थान होता है, उसी प्रकार 'विशाल वृक्ष का विशाल शाखा समुदाय', 'मूर्त द्रव्य के मूर्त गुण' ऐसे अनन्यपने में भी (संस्थान) होता है । जिस प्रकार 'एक देवदत्त की दस गायें', ऐसे अन्यपने में संख्या होती है, उसी प्रकार 'एक वृक्ष की दस शाखाएं', 'एक द्रव्य के अनन्त गुण' ऐसे अनन्यपने में भी (संख्या) होती है । जिस प्रकार 'बाड़े में गायें' ऐसे अन्यपने में विषय (आधार) होता है, उसी प्रकार 'वृक्ष में शाखायें', 'द्रव्य में गुण' ऐसे अनन्यपने में भी (विषय) होता है । इसलिए व्यपदेश आदि, द्रव्य-गुणों में वस्तुरूप से भेद सिद्ध नहीं करते ।।45।।

| जिस प्रकार | | | | दृष्टान्त | दार्ष्टान्त |
|---|---|---|---|---|---|
| 'देवदत्त की गाय' | इस प्रकार अन्यत्व में | षष्ठी व्यपदेश | होता है, उसी प्रकार अनन्यत्व में भी होता है। | वृक्ष की शाखा | द्रव्य के गुण |
| देवदत्त फल को अंकुर द्वारा धनदत्त के लिए वृक्ष से बगीचे में तोड़ता है | | कारक व्यपदेश | | मिट्टी घट भाव को अपने द्वारा अपने लिए अपने में से अपने में करती है, | आत्मा आत्मा को आत्मा द्वारा आत्मा के लिए आत्मा में में से आत्मा में जानता है |
| ऊँचे देवदत्त की ऊँची गाय | | संस्थान | | विशाल वृक्ष का विशाल शाखा समुदाय | मूर्त द्रव्य के मूर्त गुण |
| एक देवदत्त की दस गायें | | संख्या | | एक वृक्ष की दस शाखाएँ | एक द्रव्य के अनंत गुण |
| बाड़े में गायें | | विषय | | वृक्ष में शाखाएँ | द्रव्य में गुण |

**अतः व्यपदेश आदि द्रव्य-गुणों में वस्तुरूप से भेद सिद्ध नहीं करते।**

णाणं धणं च कुव्वदि धणिणं जह णाणिणं च दुविधेहिं ।
भण्णंति तह पुधत्तं एयत्तं चावि तच्चण्हू ॥४६॥

**गाथार्थ : जिस प्रकार ज्ञान और धन (जीव को) ज्ञानी और धनी - दो प्रकार से करते हैं ; उसीप्रकार तत्त्वज्ञ पृथक्त्व और एकत्व कहते हैं।**

**टीका :** यह, वस्तुरूप से भेद और अभेद का उदाहरण है ।

जिस प्रकार (१) भिन्न अस्तित्व से रचित, (२) भिन्न संस्थान वाला, (३) भिन्न संख्या वाला और (४) भिन्न विषय में स्थित ऐसा धन (१) भिन्न अस्तित्व से रचित, (२) भिन्न संस्थान वाले, (३) भिन्न संख्या वाले और (४) भिन्न विषय में स्थित ऐसे पुरुष को 'धनी' ऐसा व्यपदेश पृथक्त्व प्रकार से करता है, तथा जिस प्रकार (१) अभिन्न अस्तित्व से रचित, (२) अभिन्न संस्थान वाला, (३) अभिन्न संख्या वाला और (४) अभिन्न विषय में स्थित ऐसा ज्ञान (१) अभिन्न अस्तित्व से रचित, (२) अभिन्न संस्थान वाले, (३) अभिन्न संख्या वाले और (४) अभिन्न विषय में स्थित ऐसे पुरुष को 'ज्ञानी' ऐसा व्यपदेश एकत्व प्रकार से करता है, उसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए । जहाँ द्रव्य के भेद से व्यपदेश आदि हों वहाँ पृथक्त्व है, जहाँ (द्रव्य के) अभेद से (व्यपदेश आदि) हों वहाँ एकत्व है ।।46।।

❖ जिस प्रकार भिन्न धन भिन्न पुरुष को 'धनी' ऐसा व्यपदेश (कथन) पृथक्त्व प्रकार से करता है।

उसी प्रकार अभिन्न ज्ञान अभिन्न पुरुष को 'ज्ञानी' ऐसा व्यपदेश (कथन) एकत्व प्रकार से करता है।

**सूत्र**

जहाँ द्रव्य के भेदपूर्वक कथन हो, वहाँ **पृथक्त्व** है।
जहाँ द्रव्य के अभेद से कथन हो, वहाँ **एकत्व** है।

णाणी णाणं च सदा अत्थंतरिदो दु अण्णमण्णस्स ।
दोण्हं अचेदणत्तं पसजदि सम्मं जिणावमदं ॥४७॥

**गाथार्थ: यदि ज्ञानी और ज्ञान सदा परस्पर अर्थान्तरभूत (पूर्ण भिन्न) हों तो दोनों को अचेतनता का प्रसंग आएगा; जो सम्यक् प्रकार से जिनों को सम्मत नहीं है ।**

**टीका** : द्रव्य और गुणों को अर्थान्तरपना हो तो यह दोष आयेगा ।

यदि ज्ञानी (आत्मा) ज्ञान से अर्थान्तरभूत हो तो (आत्मा) अपने करण-अंश बिना, कुल्हाड़ी रहित देवदत्त की भांति, करण का व्यापार करने में असमर्थ होने से नहीं चेतता (जानता) हुआ अचेतन ही होगा । और यदि ज्ञान ज्ञानी से अर्थान्तरभूत हो तो ज्ञान अपने कर्तृ-अंश के बिना, देवदत्त रहित कुल्हाड़ी की भांति, अपने कर्ता का व्यापार करने में असमर्थ होने से नहीं चेतता (जानता) हुआ अचेतन ही होगा । पुनश्च, युतसिद्ध ऐसे ज्ञान और ज्ञानी को संयोग से चेतनपना हो ऐसा भी नहीं है, क्योंकि निर्विशेष द्रव्य और निराश्रय गुण शून्य होते हैं ।।47।।

- ज्ञानी ज्ञान से भिन्न पदार्थ हो तो ज्ञानी अचेतन ही होगा
  क्योंकि ज्ञानरूप करण अंश बिना करण का कार्य नहीं कर सकता।
- ज्ञान ज्ञानी से भिन्न पदार्थ हो, तो ज्ञान अचेतन ही होगा
  क्योंकि ज्ञानीरूप कर्तृ-अंश के बिना कर्ता का कार्य नहीं कर सकता।

**निष्कर्ष - ज्ञानी (आत्मा) और ज्ञान भिन्न-भिन्न पदार्थ नहीं हैं, एक ही हैं।**

ण हि सो समवायादो अत्थंतरिदो दु णाणदो णाणी ।
अण्णाणीति य वयणं एगत्तपसाधगं होदि ॥४८॥

**गाथार्थ: ज्ञान से अर्थान्तरभूत वह समवाय से भी ज्ञानी नहीं हो सकता । 'अज्ञानी' ऐसा वचन ही उनके एकत्व को सिद्ध करता है ।**

**टीका** : यह, ज्ञान और ज्ञानी को समवाय सम्बन्ध होने का निराकरण है ।

ज्ञान से अर्थान्तरभूत आत्मा ज्ञान के समवाय से ज्ञानी होता है ऐसा मानना वास्तव में योग्य नहीं है । वह (आत्मा) ज्ञान का समवाय होने से पहले वास्तव में ज्ञानी है कि अज्ञानी ? यदि ज्ञानी है, तो ज्ञान का समवाय निष्फल है । अब यदि अज्ञानी है, तो (पूछते हैं कि)

अज्ञान के समवाय से अज्ञानी है कि अज्ञान के साथ एकत्व से अज्ञानी है ? प्रथम, अज्ञान के समवाय से अज्ञानी हो नहीं सकता; क्योंकि अज्ञानी को अज्ञान का समवाय निष्फल है और ज्ञानीपना तो ज्ञान के समवाय का अभाव होने से है ही नहीं । इसलिए 'अज्ञानी' ऐसा वचन अज्ञान के साथ एकत्व को अवश्य सिद्ध करता ही है । और इस प्रकार अज्ञान के साथ एकत्व सिद्ध होने से ज्ञान के साथ भी एकत्व अवश्य सिद्ध होता है ।।48।।

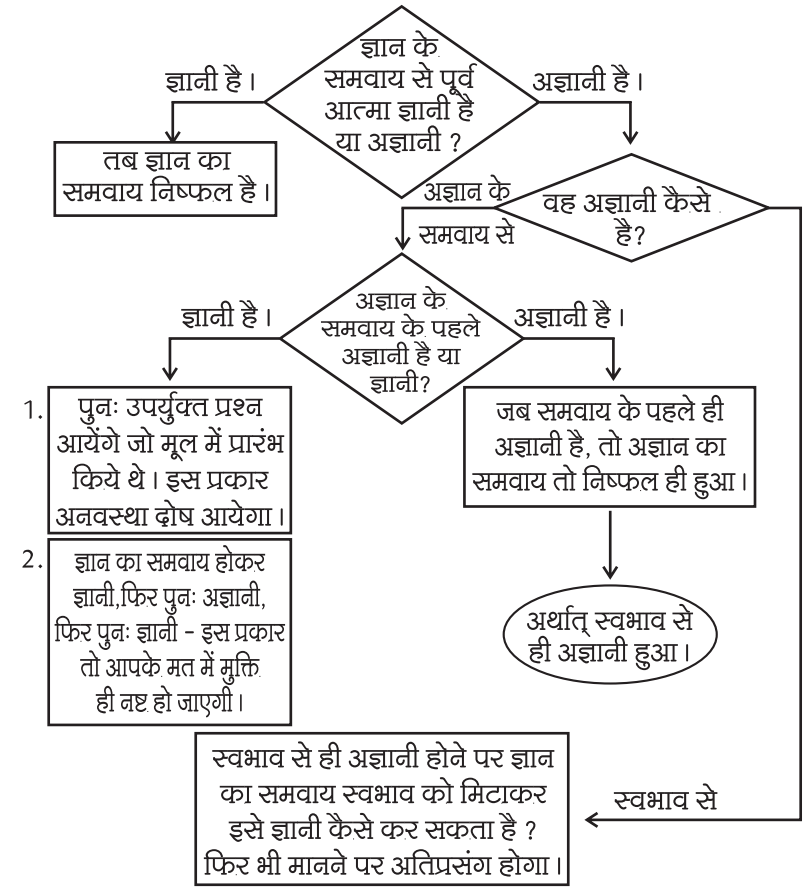


अर्थात् अज्ञान किसी पदार्थ का स्वभाव ही है । स्वभाव के साथ एकत्व हुआ करता है, ना कि समवाय । अतः जैसे 'अज्ञानी' यह शब्द अज्ञान के साथ एकत्व बताता है, वैसे ही 'ज्ञानी' यह शब्द ज्ञान के साथ एकत्व बताता है । अतः ज्ञान के समवाय से कोई ज्ञानी नहीं होता, बल्कि स्वभाव से ही कोई ज्ञानी हुआ करता है, जैसे कोई स्वभाव से ही अज्ञानी (जड़, अचेतन) हुआ करता है ।

समवत्ती समवाओ अपुधब्भूदो य अजुदसिद्धो य ।
तम्हा दव्वगुणाणं अजुदासिद्धि त्ति णिदिट्ठा ॥४९॥

**गाथार्थ: समवर्तित्व, समवाय, अपृथग्भूतत्व और अयुतसिद्धत्व - ये एकार्थवाची हैं; इसलिए द्रव्य-गुणों के अयुतसिद्धि है - ऐसा कहा है ।**

**टीका** : यह, समवाय में पदार्थान्तरपना होने का निराकरण है ।

द्रव्य और गुण एक अस्तित्व से रचित हैं। उनकी जो अनादि-अनन्त सहवृत्ति वह वास्तव में समवर्तीपना है; वही, जैनों के मत में समवाय है; वही, संज्ञादि भेद होने पर भी वस्तुरूप से अभेद होने से अपृथक्पना है; वही, युतसिद्ध के कारणभूत अस्तित्वान्तर का अभाव होने से अयुतसिद्धपना है। इसलिए समवर्तित्व-स्वरूप समवायवाले द्रव्य और गुणों को अयुतसिद्धि ही है, पृथक्पना नहीं है ।।49।।

| **द्रव्य - गुणों का** | |
|---|---|
| 1. एक ही अस्तित्व से रचे जाने से | समवर्तीत्व है। |
| 2. वस्तुरूप से अभेद होने से | अपृथग्भूतत्व है |
| 3. युतसिद्धि के कारणभूत अन्य अस्तित्व के अभाव से | अयुतसिद्धत्व है। |
| **अतः द्रव्य - गुणों का अयुतसिद्धत्व ही है, पृथक्त्व नहीं है।** | |

अनादि-अनिधन सहवृत्ति
= समवर्तीत्व
= समवाय।

अर्थात् अन्य कोई समवाय नाम का पदार्थ नहीं है, जिसके द्वारा द्रव्य के साथ गुण मिलते हों।

**(वैशेषिक मत निराकरण)**

वण्णरसगंधफासा परमाणुपरूविदा विसेसेहिं ।
दव्वादो य अणण्णा अण्णत्तपगासगा होंति ॥५०॥

दंसणणाणाणि तहा जीवणिबद्धाणि णण्णभूदाणि ।
ववदेसदो पुधत्तं कुव्वन्ति हि णो सभावादो ॥५१॥ (जुम्मं)

**गाथार्थ: जैसे परमाणु में प्ररूपित द्रव्य से अनन्य वर्ण, रस, गंध, स्पर्श; विशेषों द्वारा अन्यत्व के प्रकाशक होते हैं; उसीप्रकार जीव में निबद्ध अनन्यभूत दर्शन, ज्ञान; व्यपदेश से पृथक्त्व करते हैं, स्वभाव से नहीं।**

**टीका** : दृष्टान्तरूप और दार्ष्टान्तरूप पदार्थपूर्वक, द्रव्य तथा गुणों के अभिन्नपदार्थपने के व्याख्यान का यह उपसंहार है ।

वर्ण-रस-गन्ध-स्पर्श वास्तव में परमाणु में प्ररूपित किये जाते हैं; वे परमाणु से अभिन्न प्रदेशवाले होने के कारण अनन्य होने पर भी, संज्ञादि व्यपदेश के कारणभूत विशेषों द्वारा अन्यत्व को प्रकाशित करते हैं । इस प्रकार आत्मा में सम्बद्ध ज्ञान-दर्शन भी आत्मद्रव्य से अभिन्न प्रदेशवाले होने के कारण अनन्य होने पर भी, संज्ञादि व्यपदेश के कारणभूत विशेषों द्वारा पृथक्पने को प्राप्त होते हैं, परन्तु स्वभाव से सदैव अपृथक्पने को ही धारण करते हैं।

इस प्रकार उपयोग गुण का व्याख्यान समाप्त हुआ ।।50-51।।

| **दृष्टान्त** | **दार्ष्टान्त** |
|---|---|
| जिस प्रकार | उसी प्रकार |
| परमाणु में प्ररूपित | आत्मा में संबद्ध |
| वर्ण-गंध-रस-स्पर्श | ज्ञान-दर्शन |
| परमाणु से | आत्म द्रव्य से |
| अभिन्न प्रदेश वाले होने के कारण | |
| अनन्य होने पर भी | |
| संज्ञादि के कारणभूत विशेषों द्वारा | |
| **पृथक्पने** को प्राप्त होते हैं, | |
| परन्तु स्वभाव से सदैव **अपृथक्पने** को ही धारण करते हैं। | |

## गाथा 52 से 72 की विषय-वस्तु

| क्रं. | विषय | गाथा क्रमांक | कुल गाथाएँ |
|---|---|---|---|
| 1. | समुदाय कथन | 52-54 | 3 |
| 2. | औदयिक आदि 5 भावों का कथन | 55 | 1 |
| 3. | कर्तृत्व की मुख्यतया से कथन | 56-61 | 6 |
| 4. | कर्तृत्व - भोक्तृत्व संबंधी पूर्वपक्ष | 62 | 1 |
| 5. | पूर्व पक्ष का परिहार | 63-69 | 7 |
| 6. | जीवास्तिकाय चूलिका | 70-72 | 3 |
| | | **कुल गाथाएँ** | **26** |

जीवा अणाइणिहणा संता णंता य जीवभावादो ।
सब्भावदो अणंता पंचग्गगुणप्पहाणा य ॥५२॥

**गाथार्थ: जीव जीवभाव की अपेक्षा अनादि, अनन्त, सांत और अनंत हैं । सद्भाव की अपेक्षा अनन्त और पाँच मुख्य गुणों की प्रधानता युक्त हैं ।**

**टीका :** अब कर्तृत्वगुण का व्याख्यान है। उसमें प्रारंभ की तीन गाथाओं से उसका उपोद्घात किया जाता है।

निश्चय से पर-भावों का कर्तृत्व न होने से जीव स्व-भावों के कर्ता होते हैं; और उन्हें (अपने भावों को) करते हुए, क्या वे अनादि-अनन्त हैं ? क्या सादि-सांत हैं ? क्या सादि-अनन्त हैं ? क्या तदाकाररूप परिणत है ? क्या (तदाकाररूप) अपरिणत हैं ? ऐसी आशंका करके यह कहा गया है-

जीव वास्तव में सहजचैतन्यलक्षण पारिणामिक भाव से अनादि-अनन्त हैं। वे ही औदयिक, क्षायोपशमिक और औपशमिक भावों से सादि-सांत हैं। वे ही क्षायिक भाव से सादि-अनन्त हैं।

'क्षायिक भाव सादि होने से सांत होगा' – ऐसी आशंका करना योग्य नहीं है । (कारण इस प्रकार हैः-) वह वास्तव में उपाधि की निवृत्ति होने पर प्रवर्तता हुआ, सिद्धभाव की भाँति, जीव का सद्भाव ही है; और सद्भाव से तो जीव अनन्त ही स्वीकार किये जाते हैं ।

पुनश्च, 'अनादि-अनन्त सहज-चैतन्य-लक्षण एक भाववाले उन्हें सादि-सांत और सादि-अनन्त भावान्तर घटित नहीं होते'- ऐसा कहना योग्य नहीं है; (क्योंकि) वे वास्तव में अनादि कर्म से मलिन वर्तते हुए कादव से सम्पृक्त जल की भाँति तदाकाररूप परिणत होने के कारण, पाँच प्रधान गुणों से प्रधानतावाले ही अनुभव में आते हैं ।।52।।

| जीव | |
|---|---|
| पारिणामिक भाव से | अनादि अनंत है। |
| औदयिक, क्षायोपशमिक, औपशमिक भाव से | सादि-सान्त है। |
| क्षायिक भाव से | सादि अनन्त है। |

**एवं सदो विणासो असदो जीवस्स हवदि उप्पादो ।**

**इदि जिणवरेहिं भणिद अण्णोण्णविरुद्धमविरुद्धं ॥५३॥**

**गाथार्थ: इसप्रकार जीव के सत् का विनाश और असत् का उत्पाद होता है ; ऐसा परस्पर विरुद्ध होने पर भी जिनवरों ने अविरुद्ध कहा है ।**

**टीका :** यह, जीव को भाववशात् सादि-सांतपना और अनादि-अनन्तपना होने में विरोध का परिहार है ।

इस प्रकार वास्तव में पाँच भावरूप से स्वयं परिणमित होनेवाले इस जीव को कदाचित् औदयिक ऐसे एक मनुष्यत्वादि-स्वरूप भाव की अपेक्षा से सत् का विनाश और औदयिक ही ऐसे दूसरे देवत्वादि-स्वरूप भाव की अपेक्षा से असत् का उत्पाद होता ही है । और यह (कथन) 'सत् का विनाश नहीं है तथा असत् का उत्पाद नहीं है' ऐसे

पूर्वोक्त सूत्र के (१९वीं गाथा के) साथ विरोधवाला होने पर भी विरोधवाला नहीं है; क्योंकि जीव को द्रव्यार्थिक नय के कथन से सत् का नाश नहीं है और असत् का उत्पाद नहीं है तथा उसी को पर्यायार्थिक नय के कथन से सत् का नाश है और असत् का उत्पाद है । और यह अनुपपन्न नहीं है, क्योंकि नित्य ऐसे जल में कल्लोलों का अनित्यपना दिखाई देता है ।।53।।

| जीव को | |
|---|---|
| (1) द्रव्यार्थिक नय से | सत् का नाश नहीं, असत् का उत्पाद नहीं। |
| (2) पर्यायार्थिक नय से | सत् का नाश है, असत् का उत्पाद है। |
| इस प्रकार समस्त कथन सापेक्ष और निर्दोष है। | |

| जीवों की संख्या | |
|---|---|
| द्रव्य-स्वभाव की अपेक्षा | अनन्त (सर्व जीव) |
| अभव्य | अनन्त |
| भव्य | अनन्त (पूर्व से अनन्त गुणे) |
| अभव्य समान भव्य | अनन्त (पूर्व से अनन्त गुणे) |

**णेरइयतिरियमणुआ देवा इदि णामसंजुदा पयडी ।**
**कुव्वंति सदो णासं असदो भावस्स उप्पादं ॥५४॥**

**गाथार्थ: नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव - इन नामों से संयुक्त (नामकर्म की) प्रकृतियाँ सत्भाव का नाश और असत्भाव का उत्पाद करती हैं।**

**टीका** : जीव को सत् भाव के उच्छेद और असत् भाव के उत्पाद में निमित्तभूत उपाधि का यह प्रतिपादन है ।

जिस प्रकार समुद्ररूप से असत् के उत्पाद और सत् के उच्छेद का अनुभव न करने वाले ऐसे समुद्र को चारों दिशाओं में से क्रमशः बहती हुई हवाएँ कल्लोलों-सम्बन्धी असत् का उत्पाद और सत् का उच्छेद करती हैं, उसी प्रकार जीवरूप से सत् के उच्छेद और असत् के उत्पाद का अनुभव न करने वाले ऐसे जीव को क्रमशः उदय को प्राप्त होने वाली नारक-तिर्यंच-मनुष्य-देव नाम की प्रकृतियाँ सत् का उच्छेद तथा असत् का उत्पाद करती हैं ।।54।।

| दृष्टान्त | दार्ष्टान्त |
|---|---|
| जिस प्रकार | उसी प्रकार |
| समुद्र रूप से | जीव रूप से |
| असत् के उत्पाद और सत् के उच्छेद का अनुभव न करने वाले | |
| समुद्र को | जीव को |
| चारों दिशाओं में से क्रमशः | नरकादि चारों गतियों में से क्रमशः |
| बहती हुई हवाएँ | उदय को प्राप्त होने वाली प्रकृतियाँ |
| कल्लोलों संबंधी | पर्याय संबंधी |
| असत् का उत्पाद और सत् का विनाश करती हैं। | |
| (**नय**-असद्भूत अनुपचरित व्यवहार नय) | |

**उदयेण उवसमेण य खयेण दुहिं मिस्सिदेहिं परिणामे ।**
**जुत्ता ते जीवगुणा बहुसु य अत्थेसु वित्थिण्णा ॥५५॥**

**गाथार्थ: उदय, उपशम, क्षय, इन दोनों के मिश्र / क्षयोपशम और परिणाम से सहित वे जीव के गुण अनेक प्रकारों में विस्तृत हैं ।**

**टीका :** जीव को भावों के उदय का यह वर्णन है ।

कर्मों का फलदान-समर्थरूप से उद्भव सो 'उदय' है, अनुद्भव सो 'उपशम' है, उद्भव तथा अनुद्भव सो 'क्षयोपशम' है, अत्यन्त विश्लेष सो 'क्षय' है, द्रव्य का आत्मलाभ (अस्तित्व) जिसका हेतु है वह 'परिणाम' है । वहाँ, उदय से युक्त वह 'औदयिक' है, उपशम से युक्त वह 'औपशमिक' है, क्षयोपशम से युक्त वह 'क्षायोपशमिक' है, क्षय से युक्त वह 'क्षायिक' है, परिणाम से युक्त वह 'पारिणामिक' है। ऐसे यह पाँच जीवगुण हैं। उनमें (इन पाँच गुणों में) उपाधि का चतुर्विधपना जिनका कारण है ऐसे चार हैं, स्वभाव जिसका कारण है ऐसा एक है। उपाधि के भेद से और स्वरूप के भेद से भेद करने पर, उनके अनेक प्रकारों में विस्तृत किया जाता है ।।55।।

**कर्मों का फलदान समर्थ रूप से...**

| | |
|---|---|
| उद्भव | उदय है। |
| अनुद्भव | उपशम है। |
| उद्भव-अनुद्भव | क्षयोपशम है। |
| अत्यंत विश्लेष | क्षय है। |

द्रव्य का आत्मलाभ (अस्तित्व) जिसका हेतु है, वह परिणाम है।

| जीव के 5 गुण | | इनका कारण | ये किसके हेतु हैं? |
|---|---|---|---|
| उदय से युक्त | औदयिक | उपाधि (कर्म) का चतुर्विधपना | बन्ध का कारण |
| उपशम से युक्त | औपशमिक | | मोक्ष के कारण |
| क्षयोपशम से युक्त | क्षायोपशमिक | | |
| क्षय से युक्त | क्षायिक | | |
| परिणाम से युक्त | पारिणामिक | स्वरूप | बंध-मोक्ष का अकारण |

**कम्मं वेदयमाणो जीवो भावं करेदि जारिसयं ।**
**सो तस्स तेण कत्ता हवदि त्ति य सासणे पढिदं ॥५६॥**

**गाथार्थ: कर्म का वेदन करता हुआ जीव जैसा भाव करता है, वह उस रूप से उसका कर्ता है - ऐसा शासन में कहा है ।**

**टीका** : यह, जीव के औदयिकादि भावों के कर्तृत्व प्रकार का कथन है ।

जीव द्वारा द्रव्यकर्म व्यवहार नय से अनुभव में आता है; और वह अनुभव में आता हुआ जीवभावों का निमित्तमात्र कहलाता है । वह (द्रव्यकर्म) निमित्तमात्र होने से, जीव द्वारा कर्तारूप से अपना कर्मरूप (कार्यरूप) भाव किया जाता है । इसलिये जो भाव जिस प्रकार से जीव द्वारा किया जाता है, उस भाव का उस प्रकार से वह जीव कर्ता है ।।56।।

**जो भाव जिस प्रकार से जीव द्वारा किया जाता है**
**उस भाव का उस प्रकार से वह जीव कर्ता है।**

| निमित्त | कर्ता | कर्म (क्रिया) |
|---|---|---|
| द्रव्य कर्म | जीव | जीव के औदयिकादि भाव |

**कम्मेण विणा उदयं जीवस्स ण विज्जदे उवसमं वा।**
**खइयं खओवसमियं तम्हा भावं तु कम्मकदं ॥५७॥**

**गाथार्थ: कर्म के उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम बिना जीव के (तत्सम्बन्धी भाव) नहीं होते हैं; अत: वे भाव कर्म-कृत हैं।**

**टीका** : यहाँ, निमित्तमात्र-रूप से द्रव्यकर्मों को औदयिकादि भावों का कर्तापना कहा है।

(एक प्रकार से व्याख्या करने पर-) कर्म के बिना जीव को उदय-उपशम तथा क्षय-क्षयोपशम नहीं होते; इसलिए क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक या औपशमिक भाव कर्मकृत सम्मत करना। पारिणामिक भाव तो अनादि-अनन्त, निरुपाधि, स्वाभाविक ही है। क्षायिक भाव, यद्यपि स्वभाव की व्यक्तिरूप होने से अनन्त (अंतरहित) है तथापि, कर्म-क्षय द्वारा उत्पन्न होने के कारण सादि है इसलिए कर्मकृत ही कहा गया है। औपशमिक भाव कर्म के उपशम से उत्पन्न होने के कारण और अनुपशम से नष्ट होने के कारण कर्मकृत ही है।

अथवा (दूसरे प्रकार से व्याख्या करने पर)-उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशमस्वरूप चार (अवस्थाएँ) द्रव्यकर्म की अवस्थाएँ हैं, परिणामस्वरूप एक अवस्थावाले जीव की नहीं है; इसलिए उदयादिक द्वारा उत्पन्न होनेवाले आत्मा के भावों को निमित्तमात्रभूत ऐसे उस प्रकार की अवस्थाओंरूप (द्रव्यकर्म) स्वयं परिणमित होने के कारण द्रव्यकर्म भी व्यवहार नय से आत्मा के भावों के कर्तृत्व को प्राप्त होता है ।।57।।

| | |
|---|---|
| **व्यतिरेक व्याप्ति** | कर्म के उदय आदि बिना जीव के औदयिकादि भाव नहीं होते हैं। |
| **अन्वय व्याप्ति** | जीव के औदयिकादि भाव होते हैं, तो कर्म के उदयादि होते ही हैं। |

**अतः जीव के औदयिकादि भाव कर्मकृत हैं।**
**(अनुपचरित असदभूत व्यवहार नय)**

**प्रश्न** - क्षायिक भाव स्वभाव की व्यक्तिरूप है, तो कर्मकृत कैसे हुआ?

**उत्तर** - क्षायिक भाव कर्म के क्षय द्वारा उत्पन्न होने के कारण सादि है, अतः कर्मकृत कहा जाता है।

**प्रश्न** - औपशमिक भाव तो जीव के स्वभावरूप हैं । वे कैसे कर्मकृत कहे जाते हैं ?

**उत्तर** - औपशमिक भाव (1) कर्म के उपशम से उत्पन्न होने के कारण तथा (2) अनुपशम से नष्ट होने के कारण कर्मकृत ही हैं ।

**निश्चय नय -** जीव जिन औदयिकादि भावरूप होता है, उनका कर्ता होता है। (गाथा 56)

**व्यवहार नय -** जीव जिन औदयिकादि भावरूप होता है, उनका कर्ता कर्म का उदयादि है। (गाथा 57)

भावो जदि कम्मकदो अत्ता कम्मस्स होदि किध कत्ता ।
ण कुणदि अत्ता किंचि वि मुत्ता अण्णं सगं भावं ॥५८॥

**गाथार्थ: यदि भाव कर्मकृत हों, तो आत्मा कर्म का कर्ता होना चाहिए; परन्तु वह कैसे हो सकता है ? क्योंकि आत्मा अपने भाव को छोडकर अन्य कुछ भी नहीं करता है ।**

**टीका** : कर्म को जीवभाव का कर्तृत्व होने के सम्बन्ध में यह पूर्वपक्ष है ।

यदि औदयिकादिरूप जीव का भाव, कर्म द्वारा किया जाता हो, तो जीव उसका कर्ता नहीं है - ऐसा सिद्ध होता है । और जीव का अकर्तृत्व तो इष्ट नहीं है । इसलिये,

शेष यह रहा कि जीव द्रव्यकर्म का कर्ता होना चाहिये। लेकिन वह तो कैसे हो सकता है ? क्योंकि, निश्चय नय से आत्मा अपने भाव को छोड़कर अन्य कुछ भी नहीं करता। (इस प्रकार पूर्वपक्ष उपस्थित किया गया) ।।58।।

**शंका :** कर्म का उदयादि जीव-भाव का कर्ता हो, तो जीव द्रव्यकर्म का कर्ता होगा!

↳ इसमें क्या दोष है?

↳ नहीं, क्योंकि जीव अपने भाव को छोड़कर अन्य कुछ नहीं करता- ऐसा बताया गया है।

**भावो कम्मणिमित्तो कम्मं पुण भावकारणं हवदि ।**

**ण दु तेसिं खलु कत्ता ण विणा भूदा दु कत्तारं ॥५९॥**

**गाथार्थ: (रागादि) भाव कर्मनिमित्तक हैं, कर्म (रागादि) भावनिमित्तक हैं; परन्तु वास्तव में उनके (परस्पर) कर्तापना नहीं है; तथा वे कर्ता के बिना भी नहीं होते हैं।**

**टीका** : यह, पूर्व सूत्र में कहे हुए पूर्वपक्ष के समाधानरूप सिद्धान्त है ।

व्यवहार से निमित्तमात्रपने के कारण जीवभाव का कर्ता, कर्म है, कर्म का भी कर्ता जीवभाव है; निश्चय से तो जीवभावों का कर्ता न तो कर्म है और न कर्म का कर्ता जीवभाव है । वे (जीवभाव और द्रव्यकर्म) कर्ता के बिना होते हैं ऐसा भी नहीं है; क्योंकि निश्चय से जीव-परिणामों का कर्ता जीव है और कर्म-परिणामों का कर्ता, कर्म है ।।59।।

**सिद्धान्त -** (1) जीव-भावों का कर्म निमित्त है। (असद्भूत व्यवहार नय)
(2) कर्म का जीव-भाव निमित्त है। (असद्भूत व्यवहार नय)
(3) जीव-भाव व कर्म एक दूसरे के कर्ता नहीं है। (निश्चय नय)
(4) जीव-भाव व कर्म बिना कर्ता के होते भी नहीं क्योंकि वे अपने-अपने कर्ता हैं। (निश्चय नय)

**नोट -** असद्भूत व्यवहार नय से निमित्त को कर्ता कहा जाता है, अतः पूर्व गाथा में (58) जो जीव-भाव का कर्ता कर्म को कहा है, वह निमित्त अपेक्षा ही कहा है। यह यहाँ स्पष्ट किया गया है।

कुव्वं सगं सहावं अत्ता कत्ता सगस्स भावस्स ।
ण हि पोग्गलकम्माणं इदि जिणवयणं मुणेयव्वं ॥६०॥

**गाथार्थ: अपने भाव को करता हुआ आत्मा वास्तव में अपने भाव का ही कर्ता है, पुद्गल कर्मों का नहीं- ऐसा जिनवचन जानना चाहिए।**

निश्चय से जीव को अपने भावों का कर्तृत्व है और पुद्गल कर्मों का अकर्तृत्व है – ऐसा यहाँ आगम द्वारा दर्शाया गया है ।।60।।

| जीव को | |
|---|---|
| अपने भावों का **कर्तृत्व** है | पुद्गल कर्मों का **अकर्तृत्व** है। |

कम्मं पि सगं कुव्वदि सेण सहावेण सम्ममप्पाणं ।
जीवो वि य तारिसओ कम्मसहावेण भावेण ॥६१॥

**गाथार्थ: कर्म भी अपने स्वभाव से सम्यक्रूप में स्वयं को करता है; उसी प्रकार जीव भी कर्मस्वभाव (रागादि) भाव से सम्यक्रूप में स्वयं को करता है।**

**टीका** : निश्चय नय से अभिन्न कारक होने से कर्म और जीव स्वयं स्वरूप के कर्ता हैं ऐसा यहाँ कहा है ।

कर्म वास्तव में (१) कर्मरूप से प्रवर्तमान पुद्गल-स्कन्धरूप से कर्तृत्व को धारण करता हुआ, (२) कर्मपना प्राप्त करने की शक्तिरूप करणपने को अंगीकृत करता हुआ, (३) प्राप्य ऐसे कर्मत्व-परिणामरूप से कर्मपने का अनुभव करता हुआ, (४) पूर्व भाव का नाश हो जाने पर भी ध्रुवत्व को अवलम्बन करने से जिसने अपादानपने को प्राप्त किया है ऐसा, (५) उत्पन्न होने वाले परिणामरूप कर्म द्वारा समाश्रित होने से सम्प्रदानपने को प्राप्त और (६) धारण किये हुए परिणाम का आधार होने से जिसने अधिकरणपने को ग्रहण किया है ऐसा – स्वयमेव षट्कारकरूप से वर्तता हुआ अन्य कारक की अपेक्षा नहीं रखता ।

इस प्रकार जीव भी (१) भाव-पर्यायरूप से प्रवर्तमान आत्म-द्रव्यरूप से कर्तृत्व को धारण करता हुआ, (२) भाव-पर्याय प्राप्त करने की शक्तिरूप करणपने को अंगीकृत करता हुआ, (३) प्राप्य ऐसी भाव-पर्यायरूप से कर्मपने का अनुभव करता हुआ, (४) पूर्व भाव-पर्याय का नाश होने पर भी ध्रुवत्व का अवलम्बन करने से जिसने अपादानपने को प्राप्त किया है ऐसा, (५) उत्पन्न होने वाले भाव-पर्यायरूप कर्म द्वारा समाश्रित होने से सम्प्रदानपने को प्राप्त और (६) धारण की हुई भाव-पर्याय का आधार होने से जिसने अधिकरणपने को ग्रहण किया है ऐसा - स्वयमेव षट्कारकरूप से वर्तता हुआ अन्य कारक की अपेक्षा नहीं रखता ।

इसलिए निश्चय से कर्मरूप कर्ता को जीव कर्ता नहीं है और जीवरूप कर्ता को कर्म कर्ता नहीं है ।।61।।

## द्रव्य कर्म

1. द्रव्यकर्म-रूप से प्रवर्तमान पुद्गल-स्कंधरूप से **कर्तृत्व** को धारण करता हुआ...
2. द्रव्य-कर्मत्व प्राप्त करने की शक्तिरूप **करणपने** को अंगीकृत करता हुआ...
3. प्राप्य द्रव्य- कर्मत्व परिणामरूप से **कर्मत्व** का अनुभव करता हुआ...
4. पूर्वभाव का नाश होने पर भी ध्रुवत्व को अवलंबन करने से **अपादानपने** को प्राप्त...
5. उत्पन्न होने वाली पर्याय-रूप कर्म द्वारा आश्रय लिया होने से **संप्रदानपने** को प्राप्त...
6. धारण किए हुए परिणाम का आधार होने से **अधिकरणपने** को ग्रहण किया हुआ...

**स्वयमेव षट्कारक-रूप से वर्तता हुआ**

**अन्य कारक की अपेक्षा नहीं रखता।**

**अतः कर्मरूप कर्ता को जीव कर्ता नहीं है।**

***इसी प्रकार जीव के षट्कारक भी समझना।***

कम्मं कम्मं कुव्वदि जदि सो अप्पा करेदि अप्पाणं ।
किध तस्स फलं भुंजदि अप्पा कम्मं च देदि फलं ॥६२॥

गाथार्थ: यदि कर्म, कर्म को करता है और वह आत्मा, आत्मा को करता है तो आत्मा उसका फल क्यों भोगता है ? और कर्म उसे फल क्यों देता है ?

**टीका** : यदि कर्म और जीव को अन्योन्य अकर्तापना हो, तो 'अन्य का दिया हुआ फल अन्य भोगे' ऐसा प्रसंग आएगा – ऐसा दोष बतलाकर यहाँ पूर्वपक्ष उपस्थित किया गया है ।।62।।

## पूर्वपक्ष

कर्म ही कर्म का एवं जीव ही जीव-भाव का कर्ता है। ऐसा सिद्ध होने पर

↳ 1) जब जीव कर्म का कर्ता नहीं, तब कर्म का फल भी कैसे भोग सकता है ?

↳ 2) तथा बिना जीव द्वारा किए कर्म जीव को फल कैसे दे सकते हैं ?

ओगाढगाढणिचिदो पोग्गलकायेहिं सव्वदो लोगो ।
सुहुमेहिं बादरेहिं य णंताणंतहिं विविधेहिं ।।६३।।

गाथार्थ: लोक सर्व प्रदेशों में विविध प्रकार के अनन्तानंत सूक्ष्म-बादर पुद्गलकायों द्वारा अवगाहित होकर गाढ भरा हुआ है।

**टीका** : यहाँ ऐसा कहा है कि कर्म-योग्य पुद्गल अंजनचूर्ण से भरी हुई डिब्बी के न्याय से समस्त लोक में व्याप्त हैं; इसलिये जहाँ आत्मा है वहाँ, बिना लाए ही वे स्थित हैं ।।63।।

अत्ता कुणदि सहावं तत्थ गदा पोग्गला सहावेहिं ।
गच्छन्ति कम्मभावं अण्णोण्णागाहमवगाढा ॥६४॥

गाथार्थ: आत्मा अपने (मोह-राग-द्वेषादि) भाव को करता है; (तब) अन्योन्य अवगाहरूप से प्रविष्ट वहाँ स्थित पुद्गल, अपने भावों से कर्मभाव को प्राप्त होते हैं।

**टीका** : अन्य द्वारा किये गए बिना कर्म की उत्पत्ति किस प्रकार होती है, उसका यह कथन है। आत्मा वास्तव में संसार-अवस्था में पारिणामिक चैतन्य-स्वभाव को छोड़े बिना ही अनादि बंधन द्वारा बद्ध होने से अनादि मोह-राग-द्वेष द्वारा स्निग्ध ऐसे अविशुद्ध भावोंरूप से ही विवर्तन को प्राप्त होता है । वह (संसारस्थ आत्मा) वास्तव में जहाँ और जब मोहरूप, रागरूप या द्वेषरूप ऐसे अपने भाव को करता है, वहाँ और उसी समय उसी भाव को निमित्त बनाकर पुद्गल अपने भावों से ही जीव के प्रदेशों में (विशिष्टतापूर्वक) परस्पर अवगाहरूप से प्रविष्ट हुए कर्मभाव को प्राप्त होते हैं ।।64।।

**जह पोग्गलदव्वाणं बहुप्पयारेहिं खंधणिव्वत्ती ।**
**अकदा परेहिं दिट्ठा तह कम्माणं वियाणीहि॥६५॥**

**गाथार्थ: जैसे पुद्गलद्रव्यों सम्बन्धी अनेक प्रकार की स्कन्धरचना पर से अकृत (दूसरे से किए बिना) दिखाई देती है; उसी प्रकार कर्मों की बहुप्रकारता पर से अकृत जानना चाहिए।**

**टीका** : कर्मों की विचित्रता अन्य द्वारा नहीं की जाती ऐसा यहाँ कहा है ।

जिस प्रकार अपने को योग्य चन्द्र-सूर्य के प्रकाश की उपलब्धि होने पर, संध्या, बादल, इन्द्रधनुष, प्रभा-मण्डल इत्यादि अनेक प्रकार से पुद्गल-स्कन्ध-भेद अन्य कर्ता की अपेक्षा बिना ही उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार अपने को योग्य जीव-परिणाम की उपलब्धि होने पर, ज्ञानावरणादि अनेक प्रकार के कर्म भी अन्य कर्ता की अपेक्षा के बिना ही उत्पन्न होते हैं ।।65।।

## सिद्धान्त सूत्र

(1) यह लोक सर्वतः विविध प्रकार के अनतानंत सूक्ष्म-बादर पुद्गलकायों द्वारा अवगाहित होकर गाढ़ भरा है।

(2) जब आत्मा अपने मोहादि भाव करता है, तब वहीं रहने वाले पुद्गल अपने भावों से जीव में अन्योन्य-अवगाहरूप से कर्मभाव को प्राप्त होते हैं।

(3) जिस प्रकार पुद्गल द्रव्यों की अनेक प्रकार की स्कंध रचना स्वकृत होती है, परकृत नहीं, उसी प्रकार कर्मों की अनेकविधता (प्रकृति-प्रदेश आदि) स्वकृत ही है, जीवकृत नहीं ।

जीवा पोग्गलकाया अण्णोण्णागाढगहणपडिबद्धा ।
काले विजुज्जमाणा सुहदुक्खं दिंति भुंजंति ॥६६॥

**गाथार्थ: जीव और पुद्गलकाय (विशिष्ट प्रकार से) अन्योन्य अवगाह के ग्रहण द्वारा (परस्पर) प्रतिबद्ध हैं। काल से पृथक् होने पर (उदयावस्था के समय) वे (पुद्गल) सुख-दुःख देते हैं (और जीव उन्हें) भोगते हैं।**

**टीका :** निश्चय से जीव और कर्म को एक का (निज-निज रूप का ही) कर्तृत्व होने पर भी, व्यवहार से जीव को कर्म के द्वारा दिए गए फल का उपभोग विरोध को प्राप्त नहीं होता - ऐसा यहाँ कहा है ।

जीव मोह-राग-द्वेष से स्निग्ध होने के कारण तथा पुद्गल-स्कन्ध स्वभाव से स्निग्ध होने के कारण, (वे) बन्ध अवस्था में परमाणु-द्वंद्वों की भाँति अन्योन्य-अवगाह के ग्रहण द्वारा बद्धरूप से रहते हैं । जब वे परस्पर पृथक् होते हैं तब उदय पाकर खिर जाने वाले पुद्गलकाय सुख-दुःखरूप आत्म-परिणामों के निमित्तमात्र होने की अपेक्षा से निश्चय से, और इष्टानिष्ट विषयों के निमित्तमात्र होने की अपेक्षा से व्यवहार से, सुख-दुःखरूप फल देते हैं; तथा जीव निमित्तमात्रभूत द्रव्यकर्म से निष्पन्न होने वाले सुख-दुःखरूप आत्म-परिणामों के भोक्ता होने की अपेक्षा से निश्चय से और द्रव्यकर्म के उदय से संपादित इष्टानिष्ट विषयों के भोक्ता होने की अपेक्षा से व्यवहार से, उस प्रकार का फल भोगते हैं ।

इससे (इस कथन से) जीव के भोक्तृत्व-गुण का भी व्याख्यान हुआ ।।66।।

| **उदय आकर खिरने वाले पुद्गल काय** | |
|---|---|
| निश्चय से (अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय) | व्यवहार से (उपचरित असद्भूत व्यवहारनय) |
| सुख-दुःख रूप आत्म परिणामों के | इष्ट-अनिष्ट विषयों के |
| **निमित्त मात्र होने से सुख-दुःखरूप फल देते हैं।** | |

| जीव | |
|---|---|
| निश्चय से (उपचरित सद्भूत व्यवहारनय, अशुद्ध निश्चय) | व्यवहार से (उपचरित असद्भूत व्यवहारनय) |
| निमित्तमात्रभूत द्रव्यकर्म से रचित | द्रव्यकर्म के उदय से संपादित |
| सुख-दुःख रूप आत्म परिणामों के | इष्ट-अनिष्ट विषयों के |
| **भोक्ता होने से सुख-दुःख रूप फल भोगते हैं।** | |

**जीव का कर्म भोगना किस प्रकार**

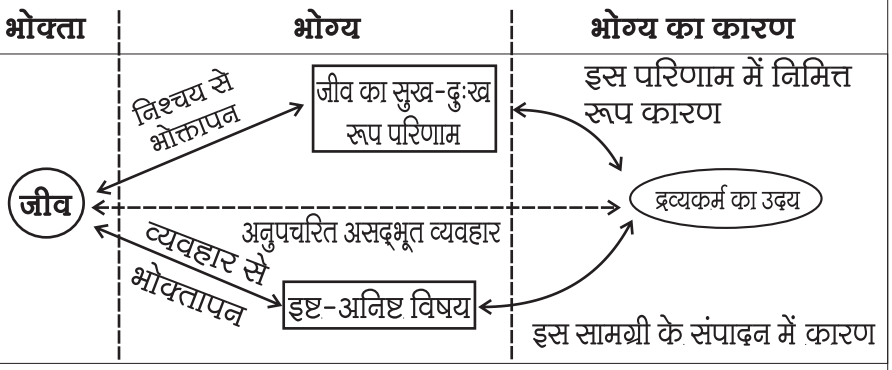


**प्रश्न** - जीव पुद्गलों का बंधन क्यों होता है?

**उत्तर** - चिकनाई से बन्ध होता है। इन दोनों की चिकनाई इस प्रकार है :
जीव की मोह-राग-द्वेष रूपी चिकनाई + पुद्गलों की स्वाभाविक चिकनाई = अन्योन्य अवगाह के ग्रहण द्वारा बंधन।

| लक्ष्य | लक्षण |
|---|---|
| **मिथ्यादर्शन** | मिथ्यात्व रागादि भावों के साथ एकत्व रुचिरूप भाव / श्रद्धा |
| **मिथ्याज्ञान** | मिथ्यात्व रागादि भावों के साथ एकत्व ज्ञानरूप भाव / ज्ञान |
| **मिथ्याचारित्र** | मिथ्यात्व रागादि भावों में ही एकत्व परिणतिरूप भाव /चारित्र |

तम्हा कम्मं कत्ता भावेण हि संजुदोध जीवस्स ।
भोत्ता दु हवदि जीवो चेदगभावेण कम्मफलं ॥६७॥

**गाथार्थ: इसलिए जीव के भाव से संयुक्त कर्म, कर्ता है तथा चेतकभाव के कारण कर्मफल का भोक्ता तो (मात्र) जीव है।**

**टीका** : यह, कर्तृत्व और भोक्तृत्व की व्याख्या का उपसंहार है ।

इसलिए ऐसा निश्चित हुआ कि कर्म निश्चय से अपना कर्ता है, व्यवहार से जीवभाव का कर्ता है; जीव भी निश्चय से अपने भाव का कर्ता है, व्यवहार से कर्म का कर्ता है ।

जिस प्रकार यहाँ दोनों नयों से कर्म कर्ता है, उसी प्रकार एक भी नय से वह भोक्ता नहीं है । किसलिए ? क्योंकि, उसे चैतन्यपूर्वक अनुभूति का सद्भाव नहीं है । इसलिए चेतनपने के कारण मात्र जीव ही, कर्मफलभूत ऐसे कथंचित् आत्मा के सुख-दुःख परिणामों का और कथंचित् इष्टानिष्ट विषयों का भोक्ता प्रसिद्ध है ।।67।।

| **कर्म** | |
|---|---|
| निश्चय से | व्यवहार से |
| स्वकीय भाव का | जीव भावों का |
| **कर्ता है।** | |

| **जीव** | |
|---|---|
| निश्चय से | व्यवहार से |
| स्वकीय रागादिभावों का | कर्मभावों का |
| **कर्ता है।** | |

| **जीव** | |
|---|---|
| निश्चय से | व्यवहार से |
| सुख-दुःख रूप आत्म परिणामों का | इष्ट-अनिष्ट विषयों का |
| **परन्तु कर्म भोक्ता नहीं है।** | |

एवं कत्ता भोत्ता होज्जं अप्पा सगेहिं कम्मेहिं ।
हिंडदि पारमपारं संसारं मोहसंछण्णो ॥६८॥

**गाथार्थ: इसप्रकार अपने कर्मों से कर्ता-भोक्ता होता हुआ, मोह से आच्छादित आत्मा पार (सान्त) और अपार (अनन्त) संसार में परिभ्रमण करता है।**

**टीका** : यह, कर्मसंयुक्तपने की मुख्यता से प्रभुत्व गुण का व्याख्यान है ।

इस प्रकार प्रगट प्रभुत्वशक्ति के कारण जिसने अपने कर्मों द्वारा कर्तृत्व और भोक्तृत्व का अधिकार ग्रहण किया है ऐसे इस आत्मा को, अनादि मोहाच्छादितपने के कारण विपरीत अभिनिवेश की उत्पत्ति होने से सम्यग्ज्ञान-ज्योति अस्त हो गई है, इसलिए वह सान्त अथवा अनन्त संसार में परिभ्रमण करता है ।।68।।

- ❖ प्रगट प्रभुत्व शक्ति के कारण
- ❖ जिसने अपने कर्मों द्वारा
- ❖ कर्तृत्व, भोक्तृत्व का अधिकार ग्रहण किया है
- ❖ अनादि मोहाच्छादितपने के कारण
- ❖ विपरीत-अभिनिवेश की उत्पत्ति होने से
- ❖ सम्यग्ज्ञान ज्योति अस्त हो गई है
- ❖ ऐसा आत्मा सान्त या अनन्त संसार में परिभ्रमण करता है।

उवसंतखीणमोहो मग्गं जिणभासिदेण समुवगदो ।
णाणाणुमग्गचारी णिव्वाणपुरं वजदि धीरो ॥६९॥

**गाथार्थ: जिनवचन द्वारा मार्ग को प्राप्तकर, उपशान्त-क्षीणमोह होता हुआ, ज्ञानानुमार्गचारी धीर (पुरुष) निर्वाणपुर को प्राप्त होता है।**

यह, कर्मवियुक्तपने की मुख्यता से प्रभुत्व गुण का व्याख्यान है ।

जब यही आत्मा जिनाज्ञा द्वारा मार्ग को प्राप्त करके, उपशांत-क्षीण-मोहपने के कारण (दर्शन-मोह के उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशम के कारण) जिसे विपरीत अभिनिवेश नष्ट हो जाने से सम्यग्ज्ञान-ज्योति प्रगट हुई है, ऐसा होता हुआ, कर्तृत्व और भोक्तृत्व के अधिकार को समाप्त करके सम्यक्रूप से प्रगट प्रभुत्व-शक्तिवान होता

उवसंतखीणमोहो मग्गं जिणभासिदेण समुवगदो ।
णाणाणुमग्गचारी णिव्वाणपुरं वजदि धीरो ॥६९॥

**गाथार्थ: जिनवचन द्वारा मार्ग को प्राप्तकर, उपशान्त-क्षीणमोह होता हुआ, ज्ञानानुमार्गचारी धीर (पुरुष) निर्वाणपुर को प्राप्त होता है।**

यह, कर्मवियुक्तपने की मुख्यता से प्रभुत्व गुण का व्याख्यान है ।

जब यही आत्मा जिनाज्ञा द्वारा मार्ग को प्राप्त करके, उपशांत-क्षीण-मोहपने के कारण (दर्शन-मोह के उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशम के कारण) जिसे विपरीत अभिनिवेश नष्ट हो जाने से सम्यग्ज्ञान-ज्योति प्रगट हुई है, ऐसा होता हुआ, कर्तृत्व और भोक्तृत्व के अधिकार को समाप्त करके सम्यक्रूप से प्रगट प्रभुत्व-शक्तिवान होता हुआ ज्ञान का ही अनुसरण करने वाले मार्ग में विचरता है, तब वह विशुद्ध आत्मतत्त्व की उपलब्धिरूप अपवर्ग-नगर को प्राप्त करता है ।।69।।

## अपवर्ग = विशुद्ध आत्म-तत्त्व की उपलब्धि।

एक्को चेव महप्पा सो दुवियप्पो तिलक्खणो हवदि ।
चदुचंकमणो भणिदो पंचग्गगुणप्पहाणो य ॥७०॥
छक्कापक्कमजुत्तो उवउत्तो सत्तभंगसब्भावो ।
अट्ठासओ णवट्ठो जीवो दसट्ठाणगो भणिदो ॥७१॥

**गाथार्थ: वह महात्मा एक ही है, दो भेदवाला है, तीनलक्षणमय है, चतुर्विध भ्रमणवाला और पाँच मुख्य गुणों से प्रधान कहा गया है। वह उपयोग स्वभावी जीव छह अपक्रम युक्त, सात भंगों से सद्भाव वाला है, आठ का आश्रयभूत, नौ पदार्थरूप और दशस्थानगत कहा गया है।**

**टीका :** अब जीव के भेद कहे जाते हैं वह जीव महात्मा (१) वास्तव में नित्य चैतन्य-उपयोगी होने से ''एक'' ही है; (२) ज्ञान और दर्शन ऐसे भेदों के कारण ''दो भेदवाला'' है; (३) कर्मफल-चेतना, कार्य-चेतना और ज्ञान-चेतना ऐसे भेदों द्वारा अथवा ध्रौव्य, उत्पाद और विनाश ऐसे भेदों द्वारा लक्षित होने से

''त्रिलक्षण'' है; (४) चार गतियों में भ्रमण करता है इसलिए ''चतुर्विध भ्रमणवाला'' है; (५) पारिणामिक, औदयिक इत्यादि पाँच मुख्य गुणों द्वारा प्रधानता होने से ''पाँच मुख्य गुणों से प्रधानतावाला'' है; (६) चार दिशाओं में, ऊपर और नीचे इस प्रकार षड्विध भवान्तर-गमनरूप अपक्रम से युक्त होने के कारण ''छह अपक्रम सहित'' है; (७) अस्ति, नास्ति आदि सात भंगों द्वारा जिसका सद्भाव है, ऐसा होने से ''सात भंगपूर्वक सद्भाववान'' है; (८) आठ कर्मों के अथवा (सम्यक्त्वादि) आठ गुणों के आश्रयभूत होने से ''आठ के आश्रयरूप'' है; (९) नव पदार्थरूप से वर्तता है इसलिए ''नव-अर्थरूप'' है; (१०) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, साधारण वनस्पति, प्रत्येक वनस्पति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियरूप दस स्थानों में प्राप्त होने से ''दशस्थानगत'' है ।।70-71।।

| जीव | |
|---|---|
| (1) नित्य चैतन्य सहित होने से | एक है। |
| (2) ज्ञान-दर्शन भेद के कारण | दो भेदवाला है। |
| (3) कर्म-फल चेतना, कार्य चेतना, ज्ञान चेतना द्वारा लक्षित होने से **अथवा** ध्रौव्य, उत्पाद, विनाश भेदों द्वारा लक्षित होने से | त्रिलक्षण है। |
| (4) चार गतियों में भ्रमण करने से | चतुर्विध भ्रमण वाला है। |
| (5) औदयिक आदि 5 मुख्य गुणों की प्रधानता होने से | 5 मुख्य गुणों से प्रधानता वाला है। |
| (6) षड्विध भवांतर गमनरूप अपक्रम से युक्त होने से | 6 अपक्रम सहित है। |
| (7) अस्ति, नास्ति आदि 7 भंगों द्वारा सद्भाव होने से | 7 भंग पूर्वक सद्भाववान है। |
| (8) 8 कर्म या 8 गुणों के आश्रयभूत होने से | 8 के आश्रयरूप है। |
| (9) नव-पदार्थ-रूप वर्तन करने से | 9 अर्थरूप है। |
| (10) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, साधारण, प्रत्येक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेंद्रिय - इन दस स्थानों में प्राप्त होने से | 10 स्थानगत है। |

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधेहिं सव्वदो मुक्को ।

उड्ढं गच्छदि सेसा विदिसावज्जं गदिं जंति ॥७२॥

**गाथार्थ: प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश बंधों से सर्वत: मुक्त जीव ऊर्ध्वगमन करते हैं ; शेष जीव (भवान्तर को जाते समय) विदिशाओं को छोड़कर गति करते हैं।**

बद्ध जीव को कर्म-निमित्तक षड्विध गमन होता है; मुक्त जीव को भी स्वाभाविक ऐसा एक ऊर्ध्वगमन होता है- ऐसा यहाँ कहा है।

इस प्रकार जीवद्रव्यास्तिकाय का व्याख्यान समाप्त हुआ ।।72।।

| भवांतर गमन के प्रकार | | |
|---|---|---|
| **प्रकार** | ऊर्ध्व गमन | 6 दिशाओं में गमन |
| **स्वामी** | 4 प्रकार के बंध से रहित जीव (मुक्त) | शेष जीव (संसारी) |

## पुद्गलास्तिकाय

### गाथा 73 से 81 की विषय-वस्तु

| क्रं. | विषय | गाथा क्रमांक | कुल गाथाएँ |
|---|---|---|---|
| 1. | पुद्गल स्कन्ध का व्याख्यान | 73-75 | 3 |
| 2. | परमाणु व्याख्यान की मुख्यता | 76-80 | 5 |
| 3. | पुद्गलास्तिकाय का उपसंहार | 81 | 1 |
| | | **कुल गाथाएँ** | **9** |

**खंधा य खंधदेसा खंधपदेसा य होंति परमाणू ।**

**इदि ते चदुव्वियप्पा पोग्गलकाया मुणेदव्वा ॥७३॥**

**गाथार्थ: स्कंध, स्कंधदेश, स्कंधप्रदेश और परमाणु - ये चार भेद वाले पुद्गलकाय हैं - ऐसा जानना चाहिए।**

**टीका :** अब पुद्गलद्रव्यास्तिकाय का व्याख्यान है।

यह पुद्गल-द्रव्य के भेदों का कथन है। पुद्गलद्रव्य कदाचित् स्कन्ध-पर्याय से, कदाचित् स्कन्ध-देशरूप पर्याय से, कदाचित् स्कन्ध-प्रदेशरूप पर्याय से और कदाचित् परमाणुरूप से यहाँ होते हैं; अन्य कोई गति नहीं है । इस प्रकार उनके चार भेद हैं ।।73।।

**खंधं सयलसमत्थं तस्स दु अद्धं भणंति देसो त्ति ।**

**अद्धद्धं च पदेसो परमाणू चेव अविभागी ॥७४॥**

**गाथार्थ: सकलसमस्त (पुद्गल पिण्ड) स्कन्ध है, उसके आधे को देश कहते हैं, आधे का आधा प्रदेश है और परमाणु ही अविभागी है।**

**टीका :** यह पुद्गल द्रव्य के भेदों का वर्णन है ।

अनन्तानन्त परमाणुओं से निर्मित होने पर भी जो एक हो वह स्कन्ध नाम की पर्याय है; उसकी आधी स्कन्धदेश नामक पर्याय है; आधी की आधी स्कन्ध-प्रदेश नाम की पर्याय है । इस प्रकार भेद के कारण (पृथक् होने के कारण) द्वि-अणुक स्कन्ध-पर्यन्त अनन्त स्कन्ध-प्रदेशरूप पर्यायें होती हैं । निर्विभाग-एक प्रदेशवाला, स्कन्ध का अंतिम अंश, वह एक परमाणु है ।

पुनश्च, दो परमाणुओं के संघात से (मिलने से) एक द्विअणुक-स्कन्धरूप पर्याय होती है । इस प्रकार संघात के कारण अनन्त स्कन्धरूप पर्यायें होती हैं ।

इस प्रकार भेद-संघात दोनों से भी अनंत (स्कन्धरूप पर्यायें) होती हैं ।।74।।

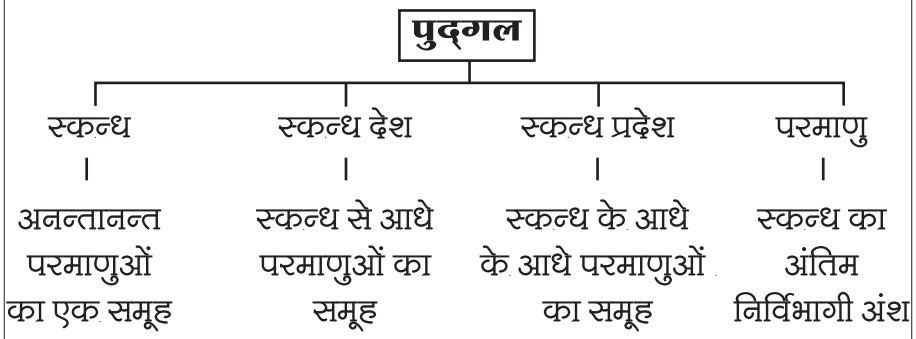


| **उदाहरण : 16 परमाणुओं का स्कंध माना।** | |
|---|---|
| **भेद द्वारा** | |
| 16 परमाणु, 15 परमाणु....9 परमाणु के समूह तक | स्कंध संज्ञा |
| 8 परमाणु, 7, 6, 5 परमाणु के समूह तक | स्कंध देश |
| 4 परमाणु, 3, 2 परमाणु के समूह तक | स्कंध प्रदेश |
| 1 परमाणु | परमाणु (अविभागी) |
| **संघात द्वारा :** | |
| 1 परमाणु | परमाणु |
| 2 परमाणु स्कंध, 3, 4, 5 आदि | स्कंध |

बादरसुहुमगदाणं खंधाणं पोग्गलो त्ति ववहारो ।
ते होंति छप्पयारा तेलोक्कं जेहिं णिप्पण्णं ॥७५॥

गाथार्थ: बादर और सूक्ष्मरूप से परिणत स्कन्धों में 'पुद्गल' ऐसा व्यवहार है। वे छह प्रकार के हैं, जिनसे तीन लोक निष्पन्न है।

पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसय कम्मपाओग्गा ।
कम्मातीदा एवं छब्भेया पोग्गला होंती ॥७५-१॥

**गाथार्थ: पृथ्वी,जल, छाया, (चक्षु इन्द्रिय को छोडकर शेष) चार इन्द्रिय के विषय, कर्म प्रायोग्य और कर्मातीत- इस प्रकार पुद्गल के छह भेद हैं।**

**टीका :** स्कन्धों में "पुद्गल" ऐसा जो व्यवहार है, उसका यह समर्थन है ।

(१) जिनमें षट्स्थान-पतित वृद्धि-हानि होती है ऐसे स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णरूप गुण-विशेषों के कारण (परमाणु) "पूरण-गलन'' धर्म-वाले होने से तथा स्कन्ध-व्यक्ति के (स्कन्ध-पर्याय के) आविर्भाव और तिरोभाव की अपेक्षा से भी "पूरण-गलन'' घटित होने से परमाणु निश्चय से "पुद्गल'' है। स्कन्ध तो अनेक पुद्गलमय एकपर्यायपने के कारण पुद्गलों से अनन्य होने से व्यवहार से "पुद्गल'' हैं; तथा (वे) बादरत्व और सूक्ष्मत्वरूप परिणामों के भेदों द्वारा छह प्रकारों को प्राप्त करके तीन लोकरूप होकर रहे हैं ।

वे छह प्रकार के स्कन्ध इस प्रकार हैंः- (१) बादर-बादर (२) बादर (३) बादर-सूक्ष्म (४) सूक्ष्म-बादर (५) सूक्ष्म (६) सूक्ष्म-सूक्ष्म । वहाँ, (१) काष्ठ-पाषाणादिक (स्कन्ध) जो कि छेदन होने पर स्वयं नहीं जुड़ सकते वे "बादर-बादर'' हैं; (२) दूध, घी, तेल, जल, रस आदि (स्कन्ध) जो कि छेदन होने पर स्वयं जुड़ जाते हैं वे "बादर'' हैं; (३) छाया, धूप, अन्धकार, चांदनी आदि (स्कन्ध) जो कि स्थूल ज्ञात होने पर भी जिनका छेदन, भेदन अथवा ग्रहण नहीं किया जा सकता, वे "बादर-सूक्ष्म'' हैं; (४) स्पर्श-रस-गन्ध-शब्द जो कि सूक्ष्म होने पर भी स्थूल ज्ञात होते हैं वे "सूक्ष्म-बादर'' हैं; (५) कर्म-वर्गणादि (स्कन्ध) कि जिन्हें सूक्ष्मपना है तथा जो इन्द्रियों से ज्ञात न हों ऐसे वे "सूक्ष्म'' हैं; (६) कर्म-वर्गणा से नीचे के द्विअणुक-स्कन्ध तक के स्कन्ध जो कि अत्यन्त सूक्ष्म हैं वे "सूक्ष्म-सूक्ष्म'' हैं ।।75।।

**निश्चय से**

**परमाणु**

षट्स्थान पतित वृद्धिहानि रूप स्पर्शादि गुण विशेषों के कारण → पूरण - गलन धर्म वाला होने से

स्कन्ध व्यक्ति के आविर्भाव व तिरोभाव के कारण → पूरण-गलन घटित होने से

→ पुद्गल है।

**व्यवहार से**

**स्कन्ध**

अनेक पुद्गलमय एक पर्यायपने के कारण पुद्गलों से अनन्य होने से

पुद्गल है।

## स्कन्ध के प्रकार

| नाम | स्वरूप | उदाहरण |
|---|---|---|
| **बादर-बादर** | छेदन होने पर स्वयं ना जुड़ सके। | काष्ठ, पाषाण आदि |
| **बादर** | छेदन होने पर स्वयं जुड़ने में समर्थ। | जल, घृत, दूध, तैलादि |
| **बादर-सूक्ष्म** | स्थूल होने पर भी जिनका छेदन, भेदन या हस्तादि से ग्रहण नहीं होता। | छाया, प्रकाश, धूपादि |
| **सूक्ष्म-बादर** | नेत्र इंद्रिय को छोड़कर शेष 4 इंद्रियों के विषय। | स्पर्श, रस, गंध, शब्द |
| **सूक्ष्म** | जो इंद्रियों से ज्ञात नहीं होते। | कार्मण वर्गणादि स्कंध |
| **सूक्ष्म-सूक्ष्म** | जो अत्यन्त सूक्ष्म हैं, कर्मवर्गणा के अयोग्य हैं। | कार्मण-वर्गणा से द्वि-अणुक आदि तक स्कंध के विषय। |

सव्वेसिं खंधाणं जो अंतो तं वियाण परमाणू ।

सो सस्सदो असद्दो एक्को अविभागी मुत्तिभवो ॥७६॥

**गाथार्थ: सभी स्कन्धों का जो अंतिम भाग है, उसे परमाणु जानो। वह शाश्वत, अशब्द, एक, अविभागी और मूर्तिभव (मूर्तरूप से उत्पन्न होने वाला) जानना चाहिए।**

**टीका** : यह परमाणु की व्याख्या है ।

पूर्वोक्त स्कन्धरूप पर्यायों का जो अंतिम भेद है, वह परमाणु है । और वह तो, विभाग के अभाव के कारण अविभागी है; निर्विभाग-एक-प्रदेशी होने से एक है । मूर्त-द्रव्यरूप से सदैव अविनाशी होने से नित्य है । अनादि-अनन्त रूपादि के परिणाम से उत्पन्न होने के कारण मूर्ति-प्रभव है । और रूपादि के परिणाम से उत्पन्न होने पर भी अशब्द है ऐसा निश्चित है, क्योंकि शब्द परमाणु का गुण नहीं है तथा उसका (शब्द का) अब (७९ वीं गाथा में) पुद्गल-स्कन्ध-पर्यायरूप से कथन है ।।76।।

## परमाणु

(स्कन्धों का अंतिम भेद)

| स्वरूप | अविभागी | एक | शाश्वत | मूर्त प्रभव |
|---|---|---|---|---|
| हेतु | विभाग का अभाव होने से | निर्विभाग एक प्रदेशी होने से | मूर्तरूप से सदा अविनश्वर होने से | रूपादि गुणों से उत्पन्न होने से |
| द्रव्यादि अपेक्षा | द्रव्य अपेक्षा | क्षेत्र अपेक्षा | काल अपेक्षा | भाव अपेक्षा |

परमाणु अशब्द है क्योंकि

(1) परमाणु में शब्द गुण का अभाव है।

(2) शब्द, पुद्गल स्कन्धों की पर्याय बताई गयी है।

**आदेसमेत्तमुत्तो धादुचदुक्कस्स कारणं जो दु ।**

**सो णेओ परमाणू परिणामगुणो सयमसद्दो ॥७७॥**

**गाथार्थ: जो आदेश मात्र से मूर्त है, चार धातुओं का कारण है, परिणाम गुण वाला और स्वयं अशब्द है, उसे परमाणु जानो।**

**टीका :** परमाणु भिन्न-भिन्न जाति के होने का यह खण्डन है ।

मूर्तत्व के कारणभूत स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण का, परमाणु से आदेशमात्र (कथनमात्र) द्वारा ही भेद किया जाता है । वस्तुतः तो जिस प्रकार परमाणु का वही प्रदेश आदि है, वही मध्य है और वही अंत है, उसी प्रकार द्रव्य और गुण के अभिन्न प्रदेश होने से, जो परमाणु का प्रदेश है, वही स्पर्श का है, वही रस का है, वही गन्ध का है, वही रूप का है । इसलिए किसी परमाणु में गन्ध गुण कम हो, किसी परमाणु में गन्ध गुण और रस गुण कम हो, किसी परमाणु में गन्ध गुण, रस गुण और रूप गुण कम हो, तो उस गुण से अभिन्न प्रदेशी परमाणु ही विनष्ट हो जाएगा । इसलिए उस गुण की न्यूनता युक्त नहीं है । इसलिए पृथ्वी, जल, अग्नि और वायुरूप चार धातुओं का, परिणाम के कारण, एक ही परमाणु कारण है क्योंकि विचित्र ऐसा परमाणु का परिणाम गुण कहीं किसी गुण की व्यक्ताव्यक्तता द्वारा विचित्र परिणति को धारण करता है ।

और जिस प्रकार परमाणु को परिणाम के कारण अव्यक्त गन्धादि गुण हैं ऐसा ज्ञात होता है उसी प्रकार शब्द भी अव्यक्त है ऐसा नहीं जाना जा सकता, क्योंकि एकप्रदेशी परमाणु को अनेक-प्रदेशात्मक शब्द के साथ एकत्व होने में विरोध है ।।77।।

1. परमाणु का स्पर्श, रस, गंध, वर्ण के साथ संज्ञा, लक्षणादि-रूप भेद ही है, सत्ता भेद नहीं।
2. अतः जो परमाणु है वही उसका स्पर्श है, वही रस, गंध, वर्ण है क्योंकि द्रव्य और गुण के प्रदेश अभिन्न होते हैं।
3. अतः सभी परमाणुओं में स्पर्शादि सभी गुण होते ही हैं। कोई गंधरहित, कोई गंध-रस रहित, कोई गंध-रस-वर्ण रहित हो, ऐसा नहीं है।

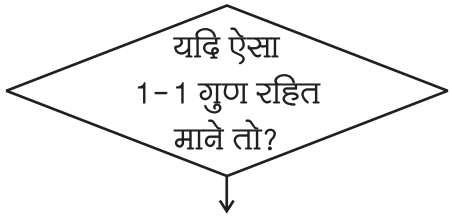


4. तो गुणों से अभिन्न वह परमाणु ही नष्ट हो जाता है। ऐसा मानना होगा।
5. अतः पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु का कारणभूत एक समान परमाणु ही है।

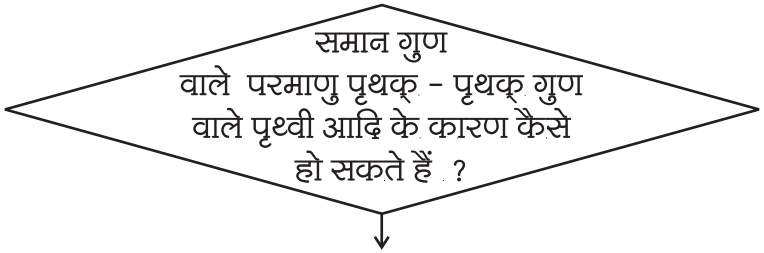


6. नहीं, क्योंकि उनका परिणाम गुण (परिणमन) विचित्र है, जो स्पर्शादि गुणों की व्यक्तता-अव्यक्तता करता है।

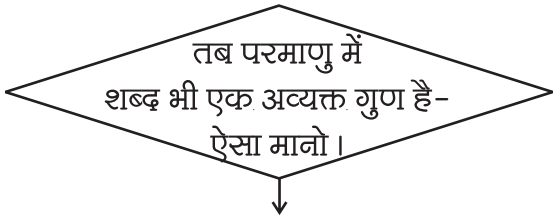


7. नहीं, क्योंकि शब्द अनेकप्रदेशात्मक पर्याय है, परमाणु एकप्रदेशी है। अतः एकप्रदेशी पर्याय को अनेकप्रदेशी पर्याय नहीं माना जा सकता।

| परमाणु संबंधी अन्य मतों की मान्यता : | |
|---|---|
| 4 धातुओं के कारणभूत परमाणु अलग-अलग 2 प्रकार के हैं। उनमें गुण भी अलग-अलग पाए जाते हैं। अन्य मत वाले इस प्रकार गुण मानते हैं - | |
| पृथ्वी में | स्पर्श, रस, गंध, वर्ण |
| जल में | स्पर्श, रस, वर्ण |
| अग्नि में | स्पर्श, वर्ण |
| वायु में | स्पर्श |
| **यहाँ इसका निराकरण किया है।** | |

सद्दो खंधप्पभवो खंधो परमाणुसंगसंघादो ।

पुट्ठेसु तेसु जायदि सद्दो उप्पादिगो णियदो ॥७८॥

**गाथार्थ: शब्द स्कन्ध-जन्य हैं। स्कन्ध, परमाणुओं के समूह के संघात / मिलाप से बनता है। उन स्कन्धों के परस्पर स्पर्शित होने / टकराने पर शब्द उत्पन्न होते हैं; इस प्रकार वे नियम से उत्पन्न होने योग्य हैं।**

**टीका :** शब्द पुद्गल-स्कन्ध-पर्याय है ऐसा यहाँ दर्शाया है ।

इस लोक में, बाह्य श्रवणेन्द्रिय द्वारा अवलंबित भावेंद्रिय द्वारा जानने-योग्य ऐसी जो ध्वनि वह शब्द है । वह (शब्द) वास्तव में स्वरूप से अनन्त परमाणुओं की एक-स्कन्धरूप पर्याय है । बहिरंग साधनभूत महास्कन्धों द्वारा तथाविध परिणामरूप उत्पन्न होने से वह स्कन्धजन्य है, क्योंकि महास्कन्ध परस्पर टकराने से शब्द उत्पन्न होता है । पुनश्च, यह बात विशेष समझाई जाती है- एक दूसरे में प्रविष्ट होकर सर्वत्र व्याप्त होकर स्थित ऐसी जो स्वभाव-निष्पन्न ही अनन्त परमाणुमयी शब्दयोग्य वर्गणाओं से समस्त लोक में भरपूर होने पर भी जहाँ-जहाँ बहिरंग कारण सामग्री उदित होती है वहाँ-वहाँ वे वर्गणाएँ शब्दरूप से स्वयं परिणमित होती हैं । इस प्रकार शब्द नियतरूप से उत्पाद्य है, इसलिए वह स्कन्धजन्य है ।।78।।

**शब्द संबंधी तथ्य -**

1. शब्द स्कंधों से उत्पन्न होता है।
2. स्कंध अनंत परमाणुओं का समुदाय है।
3. ऐसे स्कंधों के टकराने/संघट्टन से शब्द उत्पन्न होता है।
4. अतः शब्द उत्पन्न होने वाला है, ना कि नित्यरूप पाया जाता है।

**शब्द**

1. श्रवणेंद्रिय के अवलंबन द्वारा
2. भावेंद्रिय द्वारा जानने योग्य ध्वनि।

**शब्द की उत्पत्ति**

| | | |
|---|---|---|
| **कैसे स्कंध** | भाषावर्गणा योग्य पुद्गल स्कंध | अन्य स्कंध |
| **कैसे हैं ये** | सूक्ष्म | स्थूल |
| **कौनसा कारण** | अंतरंग कारण (उपादानभूत) | बहिरंग कारण (निमित्तभूत) |
| **कहां कब है** | सर्वत्र निरंतर लोक में व्याप्त | कभी-कभी ही कहीं-कहीं प्राप्त जैसे कंठ, तालु का व्यापार, घंटाभिघात आदि |

**इन दोनों कारणों के एकत्रित होने पर होती है।**

**शब्द**

प्रायोगिक — नैसर्गिक (वैश्रसिक)

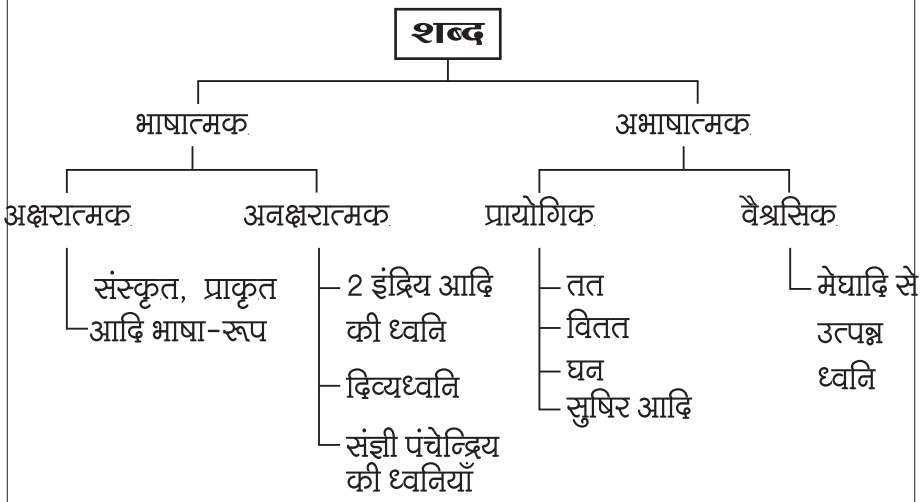


**भावार्थ → ये सभी हेय तत्व हैं, इनसे भिन्न शुद्धात्म तत्त्व उपादेय है**

### शब्द संबंधी सिद्धान्त स्थापन

1. शब्द नित्य नहीं है।
2. शब्द आकाश-रूप नहीं है।
3. शब्द आकाश का गुण नहीं है।
4. शब्द मूर्तिक है।
5. शब्द आत्मा का धर्म नहीं है।
6. शब्द परमाणु से नहीं, स्कंधों से उत्पन्न होता है। अतः स्कन्ध पर्याय है।

(प्रवचनसार - 132 टीका)

णिच्चो णाणवगासो ण सावगासो पदेसदो भेत्ता ।

खंधाणं पि य कत्ता पविहत्ता कालसंखाणं ॥७९॥

**गाथार्थ: प्रदेश की अपेक्षा परमाणु नित्य है, न वह अनवकाश है और न सावकाश है, स्कन्धों का भेत्ता (भेदन करने वाला) तथा कर्ता है, और काल तथा संख्या का प्रविभाग करनेवाला है।**

**टीका :** यह, परमाणु के एक-प्रदेशीपने का कथन है ।

जो परमाणु है, वह वास्तव में एक प्रदेश द्वारा, जो कि रूपादि-गुण-सामान्यवाला है, उसके द्वारा सदैव अविनाशी होने से नित्य है । वह वास्तव में एक प्रदेश द्वारा उससे (प्रदेश से) अभिन्न अस्तित्ववाले स्पर्शादि गुणों को अवकाश देता है इसलिए अनवकाश नहीं है । वह वास्तव में एक प्रदेश द्वारा (उसमें) द्वि-आदि प्रदेशों का अभाव होने से, स्वयं ही आदि, स्वयं ही मध्य और स्वयं ही अन्त होने के कारण सावकाश नहीं है । वह वास्तव में एक प्रदेश द्वारा स्कन्धों के भेद का निमित्त होने से स्कन्धों का भेदन करनेवाला है । वह वास्तव में एक प्रदेश द्वारा स्कन्ध के संघात का निमित्त होने से स्कन्धों का कर्ता है । वह वास्तव में एक प्रदेश द्वारा, जो कि आकाश-प्रदेश का अतिक्रमण करनेवाने अपने गति-परिणाम को प्राप्त होता है उसके द्वारा, 'समय' नामक काल का विभाग करता है इसलिए काल का विभाजक है । वह वास्तव में एक प्रदेश द्वारा संख्या का भी विभाजक है क्योंकि (१) वह एक प्रदेश द्वारा उसके रचे जानेवाले दो आदि भेदों से लेकर द्रव्य-संख्या के विभाग स्कन्धों में करता है (२) वह एक प्रदेश द्वारा उसकी जितनी मर्यादावाले एक आकाश-प्रदेश से लेकर क्षेत्र-संख्या के विभाग करता है (३) वह एक प्रदेश द्वारा, एक आकाश-प्रदेश का अतिक्रम करनेवाले उसके गति-परिणाम जितनी मर्यादावाले 'समय' से लेकर काल-संख्या के विभाग करता है, और (४) वह एक प्रदेश द्वारा उसमें विवर्तन पानेवाले जघन्य वर्णादि भाव को जाननेवाले ज्ञान से लेकर भाव-संख्या के विभाग करता है ।।79।।

## परमाणु

| विशेषण | हेतु |
|---|---|
| **नित्य** | एक प्रदेश द्वारा सदैव अविनाशी होने से। |
| **न अनवकाशी** | अभिन्न अस्तित्व वाले रूपादि गुणों को एक प्रदेश द्वारा अवकाश देने से। |
| **न सावकाशी** | एक प्रदेश द्वारा द्वि-आदि प्रदेशों का अभाव होने से। वह एक प्रदेश ही आदि, मध्य, अंत है। |
| **स्कंध-भेत्ता** | एक प्रदेश द्वारा स्नेहभाव रहित होता हुआ स्कंधों के भेद का निमित्त होने से। |
| **स्कंध-कर्ता** | एक प्रदेश द्वारा स्निग्ध भाव से परिणमित होता हुआ स्कंधों के संघात का निमित्त होने से |
| **काल-विभाजक** | एक प्रदेश द्वारा काल का विभाग करने से<br>कैसे ? एक आकाश प्रदेश का अतिक्रमण करने वाले अपने गति परिणाम की प्राप्ति द्वारा। |
| **संख्या-विभाजक-** | |
| **द्रव्य संख्या** | एक प्रदेश द्वारा उसके द्वारा रचित दो आदि भेदों से लेकर स्कंधों में **द्रव्य संख्या** का... |
| **क्षेत्र संख्या** | एक प्रदेश द्वारा उसके जितनी मर्यादा वाले एक आकाश प्रदेश से लेकर **क्षेत्र संख्या** का... |
| **काल संख्या** | एक प्रदेश द्वारा एक आकाश प्रदेश का अतिक्रम करने वाले उसके गति परिणाम जितनी मर्यादा वाले समय से लेकर **काल संख्या** का.... |
| **भाव-संख्या** | एक प्रदेश द्वारा उसमें परिणमित जघन्य वर्णादिक भाव को जानने वाले भाव से लेकर **भाव संख्या** का...<br>...विभाग करने से संख्या-विभाजक है। |

| | जघन्य भाव | उत्कृष्ट भाव |
|---|---|---|
| **परमाणु** | रस, वर्णादि की जघन्य शक्ति | रस, वर्णादि की उत्कृष्ट शक्ति |
| **जीव** | सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तक जीव का जघन्य ज्ञान | केवलज्ञान |

## जीव तथा परमाणु की सदृशता रूप तुलना

1. जैसे जीव ज्ञायक एक स्वभाव से अविनश्वर होने से नित्य है,

   वैसे परमाणु पुद्गलत्व के स्वभाव से अविनश्वर होने से नित्य है।

2. जैसे जीव लोक-प्रमाण असंख्यात एक प्रदेशी होकर सर्व प्रदेशों में ज्ञानादि अनंत गुणों को अवकाश देता है,

   वैसे पुद्गल परमाणु एक प्रदेश के द्वारा रसादि गुणों को अवकाश देता है।

3. जैसे जीव स्वयं एक होकर अन्य जीवों का अभाव लिए है,

   वैसे परमाणु स्वयं एक प्रदेश द्वारा अन्य द्वि-अणुक आदि का अभाव लिए है।

4. जैसे जीव स्वप्रदेशगत रागादि स्नेह से रहित हो कर्मस्कंधो का भेत्ता होता है, वैसे परमाणु स्वप्रदेशगत रागादि स्नेह से रहित हो स्कंधों का भेत्ता होता है।

5. जैसे जीव स्वप्रदेशगत मोहादि स्नेहभाव से परिणमित हो नवीन कर्मस्कंधों का कर्त्ता होता है,

   वैसे परमाणु स्वप्रदेशगत मोहादि स्नेहभाव से परिणमित हो नवीन स्कंधों का कर्त्ता होता है।

6. जैसे जीव एक प्रदेश में स्थित एक समयवर्ती केवलज्ञान द्वारा समयरूप व्यवहार काल और संख्या का प्रविभक्ता (ज्ञायक) है,

   वैसे परमाणु भी मंदगति से अणु से दूसरे अणु का उल्लंघन-लक्षण एक प्रदेश के द्वारा समयरूप व्यवहारकाल और संख्या का प्रविभक्ता (भेदक) होता है।

## संख्या

| | जघन्य | उत्कृष्ट |
|---|---|---|
| **द्रव्य** | 1 परमाणु | सर्व परमाणुओं का समूह |
| **क्षेत्र** | 1 प्रदेश | सर्व आकाश प्रदेश |
| **काल** | 1 समय | 3 काल के सर्व समय |
| **भाव** | परमाणु के वर्णादि की सर्व जघन्य शक्ति | परमाणु के वर्णादि की उत्कृष्ट शक्ति |

**एयरसवण्णगंधं दो फासं सद्दकारणमसद्दं ।**

**खंधंतरिदं दव्वं परमाणुं तं वियाणाहि॥८०॥**

**गाथार्थ: जो एक रस, एक वर्ण, एक गंध, दो स्पर्श वाला है, शब्द का कारण है, अशब्द है, स्कन्धों के अन्दर है, उसे परमाणु द्रव्य जानो।**

**टीका :** यह, परमाणु द्रव्य में गुण-पर्याय वर्तने का कथन है।

सर्वत्र परमाणु में रस-वर्ण-गंध-स्पर्श सहभावी गुण होते हैं; और वे गुण उसमें क्रमवर्ती निज पर्यायों सहित वर्तते हैं। वह इस प्रकारः-पाँच रस पर्यायों में से एक समय कोई एक (रस पर्याय) सहित रस वर्तता है, पाँच वर्ण पर्यायों में से एक समय किसी एक (वर्ण पर्याय) सहित वर्ण वर्तता है, दो गंध पर्यायों में से एक समय किसी एक (गंध पर्याय) सहित गंध वर्तता है, शीत-स्निग्ध, शीत-रुक्ष, उष्ण-स्निग्ध और उष्ण-रुक्ष इन चार स्पर्श पर्यायों के युगल में से एक समय किसी एक युगल सहित स्पर्श वर्तता है। इस प्रकार जिसमें गुणों का वर्तन कहा गया है ऐसा यह परमाणु शब्द स्कंधरूप से परिणमित होने की शक्तिरूप स्वभाववाला होने से शब्द का कारण है, एकप्रदेशी होने के कारण शब्द पर्यायरूप परिणति नहीं वर्तती होने से अशब्द है, और स्निग्ध-रुक्षत्व के कारण बन्ध होने से अनेक परमाणुओं की एकत्व परिणतिरूप स्कंध के भीतर रहा हो तथापि स्वभाव को नहीं छोड़ता हुआ, संख्या को प्राप्त होने से अकेला ही द्रव्य है ।। 80 ।।

## परमाणु द्रव्य

| गुण | संभावित पर्यायें | एक परमाणु में एक काल में संभवित |
|---|---|---|
| **रस** | खट्टा, मीठा, कड़ुवा, कसैला, तीखा | → इनमें से कोई 1 |
| **गंध** | सुगंध, दुर्गंध | → इनमें से कोई 1 |
| **वर्ण** | सफेद, पीला, नीला, लाल, काला | → इनमें से कोई 1 |
| **स्पर्श** | रुक्ष - शीत, रुक्ष - ऊष्ण<br>स्निग्ध - शीत, स्निग्ध - ऊष्ण | → इन चारों में से कोई 1 |

### परमाणु संबंधी सिद्धांत

- परमाणु शब्द का कारण है, क्योंकि उसके शब्द-स्कन्ध रूप से परिणमित होने की शक्ति-रूप स्वभाव है।
- परमाणु स्वयं अशब्द है, क्योंकि उसके एकप्रदेशी होने के कारण शब्दपर्याय का अभाव है।
- जैसे आत्मा शब्द का निमित्त-कारणभूत होकर भी स्वयं शब्द पर्यायरूप नहीं है, ना ही शब्द ज्ञान का विषय है, अतः अशब्द है।

  वैसे परमाणु शब्द का कारणभूत होकर भी स्वयं में शब्द की व्यक्ति का अभाव होने से अशब्द है।
- जैसे परमात्म तत्त्व द्रव्य-भाव कर्मों के बीच रहता हुआ भी शुद्ध-बुद्ध एक स्वभावी है, वैसे परमाणु स्कंधों के अंतर्गत होने पर भी स्कंध से भिन्न शुद्ध द्रव्यरूप ही है।
- स्कंधों में रहने पर भी स्वभाव को न छोड़ता हुआ, एक संख्या को प्राप्त होने से परमाणु स्वयं एक द्रव्य है।

उवभोज्जमिंदिएहिं य इन्दियकाया मणो य कम्माणि ।

जं हवदि मुत्तमण्णं तं सव्वं पोग्गलं जाणे ॥८१॥

**गाथार्थ: इन्द्रियों द्वारा उपभोग्य विषय, इन्द्रियाँ, शरीर, मन, कर्म और अन्य जो कुछ मूर्त है, वह सब पुद्गल जानो।**

**टीका :** यह, सर्व पुद्गल भेदों का उपसंहार है ।

स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और शब्दरूप इंद्रिय-विषय, स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्ररूप द्रव्येन्द्रियाँ, औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मणरूप काया, द्रव्य-मन, द्रव्य-कर्म, नोकर्म, विचित्र पर्यायों की उत्पत्ति के हेतुभूत अनन्त अनन्ताणुक वर्गणाएँ, अनन्त असंख्याताणुक वर्गणाएँ और द्वि-अणुक स्कंध तक की अनन्त संख्याताणुक वर्गणाएँ तथा परमाणु, तथा अन्य भी जो कुछ मूर्त हो वह सब पुद्गल के भेदरूप से समेटना ।

इस प्रकार पुद्गलद्रव्यास्तिकाय का व्याख्यान समाप्त हुआ ।।81।।

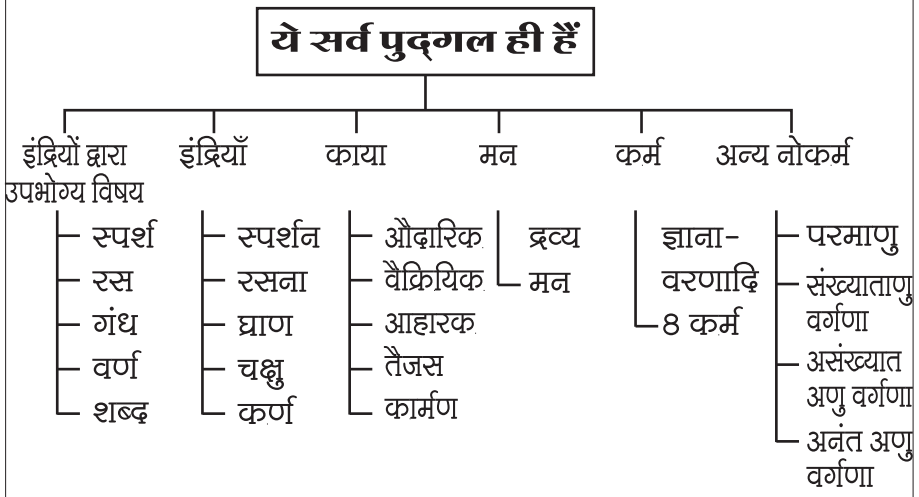

## धर्म - अधर्मास्तिकाय

### गाथा 82 से 88 की विषय-वस्तु

| क्रं. | विषय | गाथा क्रमांक | कुल गाथाएँ |
|---|---|---|---|
| 1. | धर्मास्तिकाय का स्वरूप | 82-84 | 3 |
| 2. | अधर्मास्तिकाय स्वरूप कथन | 85 | 1 |
| 3. | धर्म-अधर्म का समर्थन, अस्तित्व के अभाव में दूषण आदि | 86-88 | 3 |
| | | **कुल गाथाएँ** | **7** |

**धम्मत्थिकायमरसं अवण्णगंधं असद्दमप्फासं ।**
**लोगागाढं पुट्ठं पिहुलमसंखादियपदेसं ॥८२॥**

**गाथार्थ: धर्मास्तिकाय अरस, अवर्ण, अगन्ध, अशब्द, अस्पर्श स्वभावी है; लोकव्यापक है ; अखण्ड, विशाल और असंख्यातप्रदेशी है।**

**टीका :** यह, धर्म के (धर्मास्तिकाय के) स्वरूप का कथन है ।

स्पर्श, रस, गंध और वर्ण का अत्यंत अभाव होने से धर्म (धर्मास्तिकाय) वास्तव में अमूर्त-स्वभाववाला है, और इसीलिये अशब्द है, समस्त लोकाकाश में व्याप्त होकर रहने से लोकव्यापक है, अयुतसिद्ध प्रदेशवाला होने से अखंड है, स्वभाव से ही सर्वतः विस्तृत होने से विशाल है, निश्चय नय से एक प्रदेशी होने पर भी व्यवहार नय से असंख्यात-प्रदेशी है ।।82।।

**अगुरुगलघुगेहिं सया तेहिं अणंतेहिं परिणदं णिच्चं ।**
**गदिकिरियाजुत्ताणं कारणभूदं सयमकज्जं ॥८३॥**

**गाथार्थ: वह उन अनन्त अगुरुलघुकों द्वारा नित्य परिणमित है, गतिक्रिया-युक्तों को कारणभूत और स्वयं अकार्य है।**

**टीका :** यह, धर्म के ही शेष स्वरूप का कथन है ।

पुनश्च, धर्म (धर्मास्तिकाय) अगुरुलघु गुणों-रूप से अर्थात् अगुरुलघुत्व नाम का जो स्वरूप-प्रतिष्ठत्व के कारणभूत स्वभाव उसके अविभाग-प्रतिच्छेदोंरूप से जो कि प्रतिसमय होनेवाली षट्स्थान-पतित वृद्धि-हानिवाले अनन्त हैं उनके रूप से सदैव परिणमित होने से उत्पाद-व्ययवाला है, तथापि स्वरूप से च्युत नहीं होता इसलिये नित्य है, गतिक्रिया-परिणत को उदासीन अविनाभावी सहायमात्र होने से कारणभूत है, अपने अस्तित्वमात्र से निष्पन्न होने के कारण स्वयं अकार्य है ।।83।।

**उदयं जह मच्छाणं गमणाणुग्गहकरं हवदि लोए ।**

**तह जीवपुग्गलाणं धम्मं दव्वं वियाणीहि॥८४॥**

**गाथार्थ: जैसे लोक में जल मछलियों के गमन में अनुग्रह करता है ; उसीप्रकार धर्मद्रव्य जीव-पुद्गलों के गमन में अनुग्रह करता है ऐसा जानो।**

**टीका :** यह, धर्म के गतिहेतुत्व का दृष्टांत है।

जिस प्रकार पानी स्वयं गमन न करता हुआ और (पर को) गमन न कराता हुआ, स्वयमेव गमन करती हुई मछलियों को उदासीन अविनाभावी सहायरूप कारणमात्ररूप से गमन में अनुग्रह करता है, उसी प्रकार धर्म (धर्मास्तिकाय) भी स्वयं गमन न करता हुआ और (पर को) गमन न कराता हुआ, स्वयमेव गमन करते हुए जीव-पुद्गलों को उदासीन अविनाभावी सहायरूप कारणमात्ररूप से गमन में अनुग्रह करता है ।।84।।

## धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय

| स्वरूप | हेतु |
|---|---|
| 1. अमूर्त स्वभावी | स्पर्श, रस, गंध, वर्ण का अत्यंत अभाव होने से |
| 2. अशब्द | अमूर्त स्वभावी होने से |
| 3. लोक व्यापक | समस्त लोकाकाश में व्याप्त होकर रहने से |
| 4. अखण्ड (निरंतर अंतर से रहित) | अयुतसिद्ध प्रदेशवाला होने से |
| 5. विशाल | स्वभाव से ही सर्वतः विस्तृत होने से |
| 6. गतिक्रिया परिणत को कारणभूत (धर्मास्तिकाय) | गतिक्रिया युक्त जीव-पुद्गलों को उदासीन, अविनाभूत सहायमात्र होने से |
| 7. स्थितिक्रिया परिणत को कारणभूत (अधर्मास्तिकाय) | गमनपूर्वक स्थिति युक्त जीव-पुद्गलों को उदासीन अविनाभूत सहायमात्र होने से |
| 8. अकार्य | अपने अस्तित्व मात्र से निष्पन्न होने से |

| धर्मास्तिकाय निरंतर है | | धर्मास्तिकाय विशाल है |
|---|---|---|
| अन्वय दृष्टान्त | 1. जीव प्रदेशों में समरसी भाववत्<br>2. सिद्ध क्षेत्र में सिद्धवत्<br>3. पूर्ण घट में भरे जलवत्<br>4. तिल में तैलवत् | 1. अभव्य जीव में मिथ्यात्ववत्<br>2. लोक में स्थित आकाशवत्। |
| व्यतिरेक दृष्टांत | 1. निर्जन प्रदेश में स्थित मुनिसमूहवत्<br>2. नगर में स्थित जनसमूहवत्। | 1. केवली समुद्घात में जीव प्रदेशों की तरह।<br>2. लोक में वस्त्रादि प्रदेशों के विस्तार समान। |

## धर्म द्रव्य

↳ अगुरुलघु गुण के षट्स्थान पतित वृद्धि-हानि वाले अनंत अविभाग-प्रतिच्छेदों के द्वारा

↳ सदैव परिणमित होने से **उत्पाद व्यय** वाला है।

↳ तथापि स्वरूप से च्युत नहीं होने से **नित्य** है।

## धर्म द्रव्य का दृष्टान्त

| | |
|---|---|
| जिस प्रकार जल | वैसे ही धर्म द्रव्य |
| स्वयं गमन न करते हुए | |
| पर को गमन न कराते हुए | |
| स्वयमेव गमन करती मछलियों को | स्वयमेव गमन करते हुए जीव-पुद्गलों को |
| उदासीन अविनाभाव सहायरूप कारण मात्र रूप से | |
| गमन में अनुग्रह करता है। | |

जह हवदि धम्मदव्वं तह तं जाणेह दव्वमधमक्खं।
ठिदिकिरियाजुत्ताणं कारणभूदं तु पुढवीव ॥८५॥

**गाथार्थ: जैसे धर्म द्रव्य है, उसीप्रकार अधर्म नामक द्रव्य भी जानो; परन्तु वह स्थिति-क्रिया-युक्त को पृथ्वी के समान कारणभूत है।**

**टीका :** यह, अधर्म के स्वरूप का कथन है ।

जिस प्रकार धर्म का प्रज्ञापन किया गया, उसी प्रकार अधर्म का भी प्रज्ञापन करने योग्य है । परन्तु यह अन्तर हैः वह (धर्मास्तिकाय) गतिक्रियायुक्त को पानी की भाँति कारणभूत है और यह (अधर्मास्तिकाय) स्थितिक्रियायुक्त को पृथ्वी की भाँति कारणभूत है । जिस प्रकार पृथ्वी स्वयं पहले से ही स्थितिरूप वर्तती हुई तथा पर को स्थिति न कराती हुई, स्वयमेव स्थितिरूप से परिणमित अश्वादिक को उदासीन अविनाभावी सहायरूप कारणमात्र के रूप में स्थिति में अनुग्रह करती है, उसी प्रकार अधर्म (अधर्मास्तिकाय) भी स्वयं पहले से ही स्थितिरूप से वर्तता हुआ और पर को स्थिति नहीं कराता हुआ, स्वयमेव स्थितिरूप परिणमित होते हुए जीव-पुद्गलों को उदासीन अविनाभावी सहायरूप कारणमात्र के रूप में स्थिति में अनुग्रह करता है ।।85।।

**अधर्म द्रव्य का दृष्टान्त**

<table>
<tr><td>जिस प्रकार धरातल</td><td>वैसे ही अधर्म द्रव्य</td></tr>
<tr><td colspan="2">स्वयं पहले से ही स्थितिरूप वर्तता हुआ</td></tr>
<tr><td colspan="2">पर.को स्थिति न कराता हुआ</td></tr>
<tr><td colspan="2">स्वयमेव स्थितिरूप से परिणमित</td></tr>
<tr><td>अश्वादि को</td><td>जीव- पुद्गलों को</td></tr>
<tr><td colspan="2">उदासीन अविनाभाव सहायरूप कारण मात्र रूप से</td></tr>
<tr><td colspan="2">स्थिति में अनुग्रह करता है।</td></tr>
</table>

जादो अलोगलोगो जेसिं सब्भावदो य गमणठिदी ।

दो वि य मया विभत्ता अविभत्ता लोयमेत्ता य ॥८६॥

**गाथार्थ: जिनके सद्भाव से लोक-अलोक का विभाग है, (जीव-पुद्गलों की) गति-स्थिति हैं, वे दोनों विभक्त और अविभक्तस्वरूप तथा लोकप्रमाण माने गए हैं।**

**टीका** : यह, धर्म और अधर्म के सद्भाव की सिद्धि के लिये हेतु दर्शाया गया है ।

धर्म और अधर्म विद्यमान हैं, क्योंकि लोक और अलोक का विभाग अन्यथा नहीं बन सकता । जीवादि सर्व पदार्थों के एकत्र-अस्तित्वरूप लोक है, शुद्ध एक आकाश के अस्तित्वरूप अलोक है । वहाँ जीव और पुद्गल स्व-रस से ही गति-परिणाम को तथा गतिपूर्वक स्थिति-परिणाम को प्राप्त होते हैं । यदि गति-परिणाम अथवा गतिपूर्वक स्थिति-परिणाम का स्वयं अनुभव करने वाले उन जीव-पुद्गल को बहिरंग हेतु धर्म और अधर्म न हों, तो जीव-पुद्गल के निरर्गल गति-परिणाम और स्थिति-परिणाम होने से अलोक में भी उनका (जीव-पुद्गल का) होना किससे निवारा जा सकता है ? इसलिये लोक और अलोक का विभाग सिद्ध नहीं होता । किन्तु यदि जीव-पुद्गल की गति के और गतिपूर्वक स्थिति के बहिरंग हेतुओं के रूप में धर्म और अधर्म का सद्भाव स्वीकार किया जाये तो लोक और अलोक का विभाग (सिद्ध) होता है । और धर्म और अधर्म दोनों परस्पर पृथग्भूत अस्तित्व से निष्पन्न होने से विभक्त हैं, एक-क्षेत्रावगाही होने से अविभक्त हैं, समस्त लोक में विद्यमान जीव-पुद्गलों को गति-स्थिति में निष्क्रियरूप से अनुग्रह करते हैं इसलिये लोक-प्रमाण हैं ।।86।।

## धर्म-अधर्म द्रव्य की सिद्धि हेतु अनुमान

धर्म-अधर्म द्रव्य विद्यमान हैं, क्योंकि लोक-अलोक का विभाग अन्यथा बन नहीं सकता है।

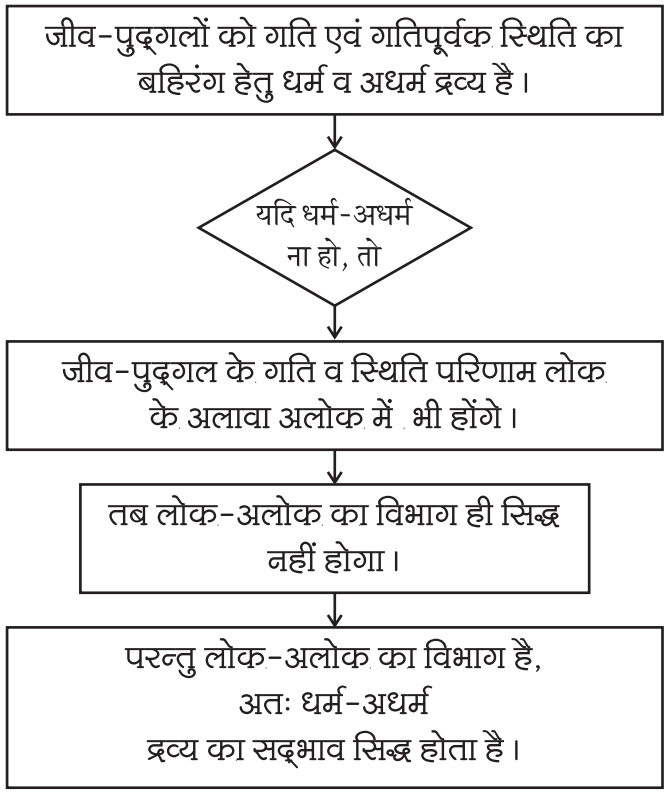


**लोक = जीवादि सर्व पदार्थों का एकत्र अस्तित्व।**
**अलोक = शुद्ध आकाश के अस्तित्व मात्र।**

## धर्म - अधर्म द्रव्य

| स्वरूप | हेतु |
|---|---|
| विभक्त | पृथग्भूत अस्तित्व से निष्पन्न होने से |
| अविभक्त | एक क्षेत्रावगाही होने से |
| लोकमात्र | समस्त लोकवर्ति जीव-पुद्गलों को निष्क्रिय रूप से गमन एवं स्थिति में अनुग्रह करने से |

**ण य गच्छदि धम्मत्थी गमणं ण करेदि अण्णदवियस्स ।**

**हवदि गदि स्स प्पसरो जीवाणं पोग्गलाणं च ॥८७॥**

**गाथार्थ: धर्मास्तिकाय गमन नहीं करता है, अन्य द्रव्य को गमन नहीं कराता है; वह जीव और पुद्गलों की गति का प्रसर (उदासीन निमित्त) होता है।**

**टीका :** धर्म और अधर्म गति और स्थिति के हेतु होने पर भी वे अत्यंत उदासीन हैं ऐसा यहाँ कथन है ।

जिस प्रकार गतिपरिणत पवन ध्वजाओं के गति-परिणाम का हेतुकर्ता दिखाई देता है, उसी प्रकार धर्म (जीव-पुद्गलों के गति-परिणाम का हेतुकर्ता) नहीं है । वह (धर्म) वास्तव में निष्क्रिय होने से कभी गति-परिणाम को ही प्राप्त नहीं होता, तो फिर उसे (पर के) सहकारी के भाँति पर के गति-परिणाम का हेतुकर्तृत्व कहाँ से होगा ? किन्तु जिस प्रकार पानी मछलियों को (गति-परिणाम में) मात्र आश्रयरूप कारण के रूप में गति का उदासीन ही प्रसारक है, उसी प्रकार धर्म जीव-पुद्गलों को (गति-परिणाम में) मात्र आश्रयरूप कारण के रूप में गति का उदासीन ही प्रसारक है।

और (अधर्मास्तिकाय के सम्बन्ध में भी ऐसा है कि) जिस प्रकार गतिपूर्वक स्थिति-परिणत अश्व सवार के (गतिपूर्वक) स्थिति-परिणाम का हेतुकर्ता दिखाई देता है, उसी प्रकार अधर्म (जीव-पुद्गलों के गतिपूर्वक स्थिति-परिणाम का हेतुकर्ता) नहीं है । वह (अधर्म) वास्तव में निष्क्रिय होने से कभी गतिपूर्वक स्थिति-परिणाम को ही प्राप्त नहीं होता, तो फिर उसे (पर के) सहस्थायी के रूप में गतिपूर्वक स्थिति-परिणाम का

हेतुकर्तृत्व कहाँ से होगा ? किन्तु जिस प्रकार पृथ्वी अश्व को मात्र आश्रयरूप कारण के रूप में गतिपूर्वक स्थिति की उदासीन ही प्रसारक है, उसी प्रकार अधर्म जीव-पुद्गलों को मात्र आश्रयरूप कारण के रूप में गतिपूर्वक स्थिति का उदासीन ही प्रसारक है ।।87।।

- धर्म द्रव्य स्वयं गमन नहीं करता, अन्य को गमन बलपूर्वक नहीं कराता, अतः उदासीन निमित्त है।
- अधर्म द्रव्य स्वयं गतिपूर्वक स्थित नहीं है, अन्य को गतिपूर्वक स्थिति बलपूर्वक नहीं कराता, अतः उदासीन निमित्त है।

**विज्जदि जेसिं गमणं ठाणं पुण तेसिमेव संभवदि ।**
**ते सगपरिणामेहिं दु गमणं ठाणं च कुव्वंति ॥८८॥**

**गाथार्थ: जिनके गमन होता है, उनके ही स्थिति सम्भव है; वे (गति-स्थितिमान पदार्थ) अपने परिणामों से ही गति और स्थिति करते हैं।**

**टीका :** यह, धर्म और अधर्म की उदासीनता के सम्बन्ध में हेतु कहा गया है ।

वास्तव में धर्म जीव-पुद्गलों को कभी गतिहेतु नहीं होता, अधर्म कभी स्थितिहेतु नहीं होता; क्योंकि वे पर को गति-स्थिति के यदि मुख्य हेतु हों, तो जिन्हें गति हो उन्हें गति ही रहना चाहिए, स्थिति नहीं होना चाहिए, और जिन्हें स्थिति हो उन्हें स्थिति ही रहना चाहिए, गति नहीं होना चाहिए । किन्तु एक को ही गति और स्थिति देखने में आती है, इसलिए अनुमान हो सकता है कि वे (धर्म-अधर्म) गति-स्थिति के मुख्य हेतु नहीं हैं, किन्तु व्यवहार नय स्थापित उदासीन हेतु हैं ।

प्रश्न- ऐसा हो तो गति-स्थितिमान पदार्थों को गति-स्थिति किस प्रकार होती है ?

उत्तर- वास्तव में समस्त गति-स्थितिमान पदार्थ अपने परिणामों से ही निश्चय से गति-स्थिति करते हैं।

इस प्रकार धर्मद्रव्यास्तिकाय और अधर्मद्रव्यास्तिकाय का व्याख्यान समाप्त हुआ ।।88।।

- धर्म-अधर्म द्रव्य गति-स्थिति के मुख्य हेतु नहीं हैं। अन्यथा गतिमान पदार्थों की गति ही रहती व स्थित पदार्थ स्थित ही रहते। परन्तु ऐसा नहीं दिखता। एक ही पदार्थ गति के बाद स्थित भी होता है। अतः ये मुख्य हेतु नहीं, परन्तु उदासीन हेतु हैं।
- सब पदार्थों की गति-स्थिति अपने स्वयं के परिणामों से ही वास्तव में होती है।

**भावार्थ -** उपादेयभूत निर्विकार चिदानन्द एक स्वभावी शुद्धात्म तत्त्व से भिन्न होने के कारण ये धर्म-अधर्म हेय तत्त्व हैं।

## आकाश अस्तिकाय

### गाथा 89 से 95 की विषय-वस्तु

| क्रं. | विषय | गाथा क्रमांक | कुल गाथाएँ |
|---|---|---|---|
| 1. | लोकाकाश-अलोकाकाश स्वरूप कथन | 89-90 | 2 |
| 2. | आकाश के गति-स्थिति हेतुत्व मानने पर दोष एवं निराकरण | 91-94 | 4 |
| 3. | धर्म-अधर्म-लोकाकाश का कथंचित् एकत्व-पृथक्त्व | 95 | 1 |
| | | **कुल गाथाएँ** | **7** |

सव्वेसिं जीवाणं सेसाणं तह य पोग्गलाणं च ।
जं देदि विवरमखिलं तं लोए हवदि आगासं ॥८९॥

**गाथार्थ: लोक में जीवों, पुद्गलों और उसीप्रकार शेष सभी द्रव्यों को जो सम्पूर्ण अवकाश देता है, वह आकाश है।**

**टीका :** अब आकाशद्रव्यास्तिकाय का व्याख्यान है ।

यह, आकाश के स्वरूप का कथन है ।

षट्द्रव्यात्मक लोक में शेष सभी द्रव्यों को जो परिपूर्ण अवकाश का निमित्त है, वह आकाश है, जो कि विशुद्ध-क्षेत्ररूप है ।।89।।

**आकाश द्रव्य**

जो सर्व जीव-पुद्गलादि द्रव्यों को अवकाश दे

| **भेद** | लोकाकाश | अलोकाकाश |
|---|---|---|
| **स्वरूप** | जहाँ जीवादि द्रव्य पाए जाते हैं | शुद्ध आकाश – मात्र क्षेत्र |
| **विशेषता** | अन्त सहित | अन्त रहित |

जीवा पुग्गलकाया धम्माधम्मा य लोगदोण्णा ।
तत्तो अणण्णमण्णं आयासं अंतवदिरित्तं ॥९०॥

**जीव, पुद्गलकाय, धर्म और अधर्म लोक से अनन्य है; उस (लोक) से अनन्य और अन्य, अन्तरहित आकाश है।**

**टीका :** यह, लोक के बाहर आकाश होने की सूचना है ।

जीवादि शेष द्रव्य (आकाश के अतिरिक्त द्रव्य) मर्यादित परिमाण वाले होने के कारण लोक से अनन्य ही हैं, आकाश तो अनन्त होने के कारण लोक से अनन्य तथा अन्य है ।।90।।

**अलोक, लोक से है**

| अनन्य | अन्य |
|---|---|
| क्योंकि लोक व अलोक सर्व एक ही अखण्ड आकाश है। | क्योंकि स्वरूप, क्षेत्र की अपेक्षा कंथचित् भिन्नता है। |

**जीवादि द्रव्य लोक से अनन्य हैं, क्योंकि ये मर्यादित प्रमाण वाले हैं।**

**प्रश्न** असंख्यात-प्रदेशी लोक में अनन्त जीव, अनन्तानन्त पुद्गल, असंख्यात कालाणु, धर्म-अधर्म - ये सभी कैसे अवकाश प्राप्त करते हैं ?

**उत्तर** 1) एक कमरे में अनेक प्रदीपों के प्रकाश के समान
2) एक गूढ़ नागरस गद्याणक में बहुत स्वर्ण के समान
3) ऊंटनी के दूध से भरे एक घट में मधुघट के समान
4) एक भूमिगृह में जय, घण्टा आदि शब्दों के समान
विशिष्ट अवगाहन गुण के कारण असंख्य प्रदेशी लोक में अनन्त संख्या वाले जीवादि द्रव्य अवकाश प्राप्त करते हैं।

**आगासं अवगासं गमणट्ठिदिकारणेहिं देदि जदि ।**
**उड्ढं गदिप्पधाणा सिद्धा चिट्ठन्ति किध तत्थ ॥९१॥**
**जम्हा उवरिट्ठाणं सिद्धाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं ।**
**तम्हा गमणट्ठाणं आयासे जाण णत्थि त्ति ॥९२॥**

**गाथार्थ:** यदि आकाश, गति-स्थिति के कारणसहित अवकाश (स्थान) देता है तो ऊर्ध्वगति में प्रधान सिद्ध वहाँ (लोकाकाश में) ही कैसे (क्यों) ठहरते हैं? (उनका गमन उससे आगे क्यों नहीं होता है?)। जिस कारण जिनवरों ने सिद्धों की लोक के ऊपर स्थिति कही है, उस कारण आकाश में गति-स्थिति (हेतुता) नहीं है ऐसा जानो।

**टीका :** जो मात्र अवकाश का ही हेतु है ऐसा जो आकाश उसमें गति-स्थितिहेतुत्व (भी) होने की शंका की जाय तो दोष आता है उसका यह कथन है ।

यदि आकाश, जिस प्रकार अवगाह-वालों को अवगाहहेतु है उसी प्रकार, गति-स्थितिवालों को गति-स्थितिहेतु भी हो, तो सर्वोत्कृष्ट स्वाभाविक ऊर्ध्व-गति से परिणत सिद्ध-भगवन्त, बहिरंग-अंतरंग साधनरूप सामग्री होने पर भी क्यों उस आकाश में स्थिर हों ? ।।91।।

(गतिपक्ष सम्बन्धी कथन करने के पश्चात्) यह, स्थितिपक्ष सम्बन्धी कथन है ।

जिससे सिद्ध-भगवन्त गमन करके लोक के ऊपर स्थिर होते हैं, उससे गति-स्थितिहेतुत्व आकाश में नहीं है ऐसा निश्चय करना; लोक और अलोक का विभाग करने वाले धर्म तथा अधर्म को ही गति तथा स्थिति के हेतु मानना ।।92।।

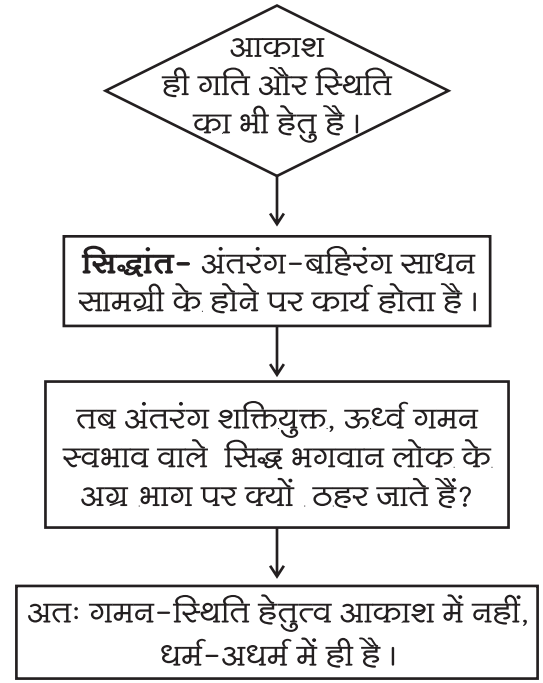


**शंका -** लोक के अग्र भागस्थ आकाश में गमन हेतुत्व नहीं है, स्थिति हेतुत्व ही है ?

**समाधान -** ऐसा भी संभव नहीं, क्योंकि (1) परिणति पूरी एक सर्वत्र होती है; कहीं हो, कहीं ना हो, ऐसा नहीं होता। अतः कहीं गमन-हेतुत्व, कहीं स्थिति-हेतुत्व नहीं हो सकता।

(2) यदि वहाँ स्थिति हेतुत्व ही हो, तो वहाँ विद्यमान अन्य संसारी सूक्ष्म जीव वहीं अटक जाएंगे, परन्तु ऐसा भी नहीं होता। अतः निश्चय होता है कि आकाश में गमन-हेतुत्व और स्थिति-हेतुत्व नहीं है।

**जदि हवदि गमणहेदू आगासं ठाणकारणं तेसिं ।**
**पसजदि अलोगहाणी लोगस्स य अंतपरिवड्ढी ॥९३॥**

**गाथार्थ: यदि आकाश जीव-पुद्गलों के गमन और स्थिति का हेतु हो तो अलोक की हानि और लोक के अन्त की परिवृद्धि (सब ओर से वृद्धि) का प्रसंग आएगा।**

**टीका :** यहाँ, आकाश को गति-स्थितिहेतुत्व का अभाव होने सम्बन्धी हेतु उपस्थित किया गया है ।

आकाश गति-स्थिति का हेतु नहीं है, क्योंकि लोक और अलोक की सीमा की व्यवस्था इसी प्रकार बन सकती है । यदि आकाश को ही गति-स्थिति का निमित्त माना जाय, तो आकाश का सद्भाव सर्वत्र होने के कारण जीव-पुद्गलों की गति-स्थिति की कोई सीमा नहीं रहने से प्रतिक्षण अलोक की हानि होगी और पहले-पहले व्यवस्थापित हुआ लोक का अन्त उत्तरोत्तर वृद्धि पाने से टूट जायेगा । इसलिये आकाश में गति-स्थिति का हेतुत्व नहीं है । ।।93।।

**तम्हा धम्माधम्मा गमणट्ठिदिकारणाणि णागासं ।**
**इदि जिणवरेहिं भणिदं लोगसहावं सुणंताणं ॥९४॥**

**गाथार्थ: इसलिए गति-स्थिति के कारण धर्म-अधर्म हैं, आकाश नहीं है; ऐसा लोकस्वभाव के श्रोताओं से जिनवरों ने कहा है।**

**टीका :** यह, आकाश को गति-स्थितिहेतुत्व होने के खंडन सम्बन्धी कथन का उपसंहार है ।

धर्म और अधर्म ही गति और स्थिति के कारण हैं, आकाश नहीं ।।94।।

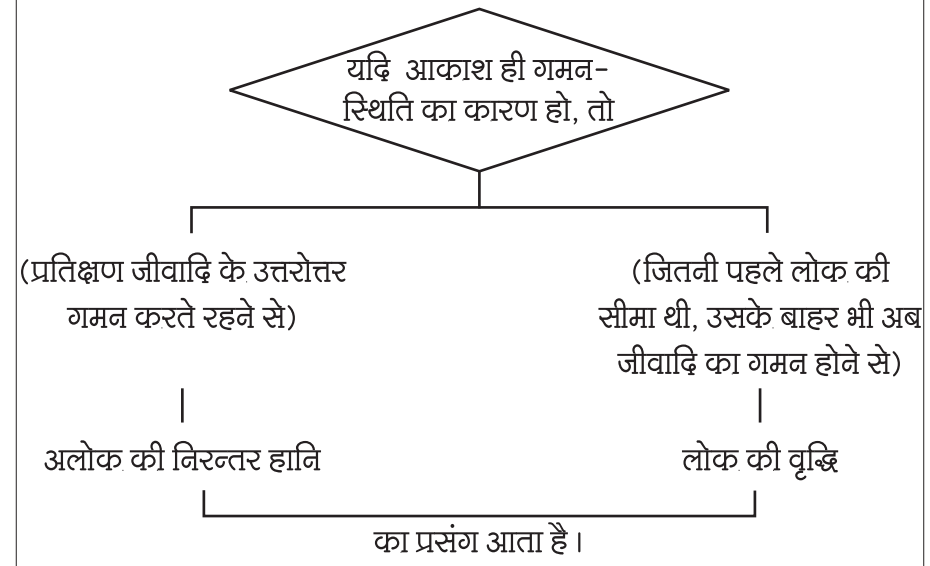


**अतः धर्म-अधर्म ही गमन-स्थिति के बहिरंग हेतु हैं ।**

धम्माधम्मागासा अपुधब्भूदा समाणपरिमाणा ।

पुधगुवलद्धविसेसा करेंति एगत्तमण्णत्तं ॥९५॥

**गाथार्थः धर्म, अधर्म, आकाश (लोकाकाश) अपृथग्भूत, समान परिमाणवाले और पृथक् उपलब्धि विशेषवान हैं ; इसलिए एकत्व और अन्यत्व को करते हैं।**

**टीका** : यहाँ धर्म, अधर्म और लोकाकाश का अवगाह की अपेक्षा से एकत्व होने पर भी वस्तुरूप से अन्यत्व कहा गया है ।

धर्म, अधर्म और लोकाकाश समान परिमाणवाले होने के कारण साथ रहनेमात्र से ही एकत्ववाले हैं, वस्तुतः तो (१) व्यवहार से गति-हेतुत्व, स्थिति-हेतुत्व और अवगाह-हेतुत्वरूप (पृथक् उपलब्ध विशेष द्वारा) तथा (२) निश्चय से विभक्त-प्रदेशत्वरूप पृथक् उपलब्ध विशेष द्वारा, वे अन्यत्ववाले ही हैं ।

इस प्रकार आकाशद्रव्यास्तिकाय का व्याख्यान समाप्त हुआ।।95।।

**धर्म, अधर्म, लोकाकाश का परस्पर**

| एकत्व है | अन्यत्व है |
|---|---|
| ↓ क्योंकि | ↓ |
| (1) वे समान प्रमाण वाले हैं<br>(2) वे एक साथ एक-क्षेत्रावगाही हैं<br>(असद्भूत व्यवहार नय) | व्यवहार से - लक्षण भेद होने से<br>निश्चय से - पृथक्-पृथक् प्रदेश होने से |

## चूलिका

### गाथा 96 से 103 की विषय-वस्तु

| क्रं. | विषय | गाथा क्रमांक | कुल गाथाएँ |
|---|---|---|---|
| 1. | चेतनत्व-अचेतनत्वादि प्रतिपादन | 96-98 | 3 |
| 2. | व्यवहार-निश्चय काल प्रतिपादन | 99-100 | 2 |
| 3. | काल का द्रव्यत्व-अकायत्व प्रतिपादन | 101 | 1 |
| 4. | स्वरूपलीनता का फल | 102-103 | 2 |
| | | **कुल गाथाएँ** | **8** |

आगासकालजीवा धम्माधम्मा य मुत्तिपरिहीणा ।
मुत्तं पुग्गलदव्वं जीवो खलु चेदणो तेसु ॥९६॥

गाथार्थ: आकाश, काल, जीव, धर्म और अधर्म मूर्तरहित (अमूर्त) हैं; पुद्गलद्रव्य मूर्त है; उनमें जीव वास्तव में चेतन है।

**टीका :** अब चूलिका है ।

यहाँ द्रव्यों का मूर्त-अमूर्तपना और चेतन-अचेतनपना कहा गया है ।

स्पर्श-रस-गंध-वर्ण का सद्भाव जिसका स्वभाव है वह मूर्त है; स्पर्श-रस-गंध-वर्ण का अभाव जिसका स्वभाव है वह अमूर्त है । चैतन्य का सद्भाव जिसका स्वभाव है वह चेतन है, चैतन्य का अभाव जिसका स्वभाव है वह अचेतन है । वहाँ आकाश अमूर्त है, काल अमूर्त है, जीव स्वरूप से अमूर्त है, पररूप में प्रवेश द्वारा मूर्त भी है, धर्म अमूर्त है, अधर्म अमूर्त है, पुद्गल ही एक मूर्त है। आकाश अचेतन है, काल अचेतन है, धर्म अचेतन है, अधर्म अचेतन है, पुद्गल अचेतन है, जीव ही एक चेतन है ।।96।।

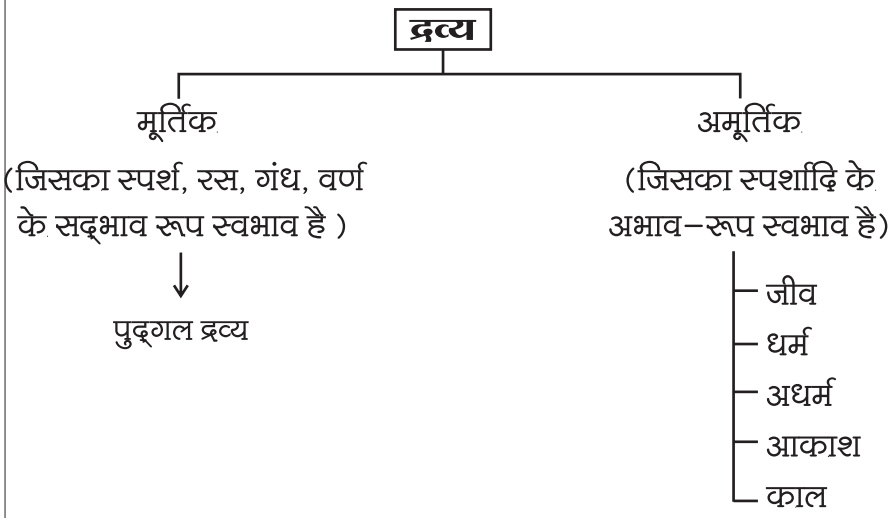


**जीव द्रव्य पररूप में प्रवेश के कारण मूर्त भी है।**

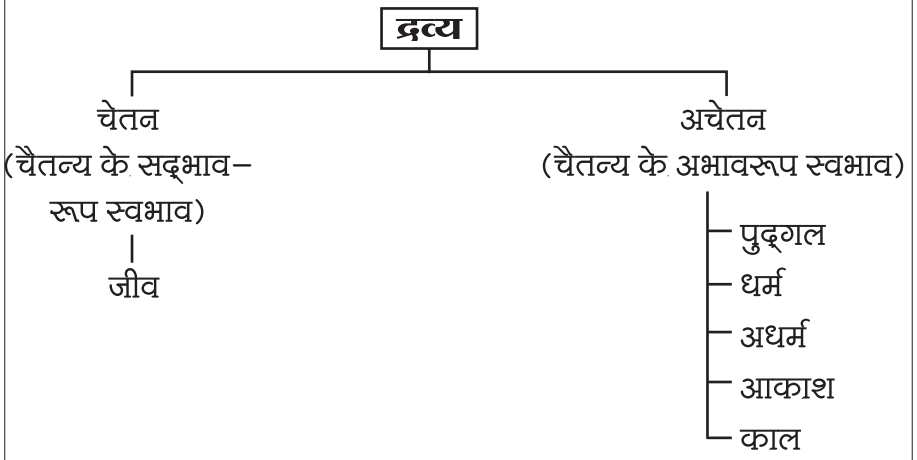


**जीवा पुग्गलकाया सह सक्किरिया हवंति ण य सेसा ।**

**पुग्गलकरणा जीवा खंधा खलु कालकरणा दु ॥९७॥**

**गाथार्थ: बाह्य करण सहित जीव और पुद्गल सक्रिय हैं ; शेष द्रव्य सक्रिय नहीं हैं। जीव पुद्गल-करणवाले हैं और वास्तव में स्कन्ध काल-करणवाले हैं।**

**टीका :** यहाँ (द्रव्यों का) सक्रिय-निष्क्रियपना कहा गया है ।

प्रदेशान्तर प्राप्ति का हेतु ऐसी जो परिस्पंदरूप पर्याय, वह क्रिया है। वहाँ, बहिरंग साधन के साथ रहने वाले जीव सक्रिय हैं, बहिरंग साधन के साथ रहने वाले पुद्गल सक्रिय हैं । आकाश निष्क्रिय है, धर्म निष्क्रिय है, अधर्म निष्क्रिय है, काल निष्क्रिय है ।

जीवों को सक्रियपने का बहिरंग साधन कर्म-नोकर्म के संचयरूप पुद्गल हैं, इसलिये जीव पुद्गल-करणवाले हैं । उसके अभाव के कारण सिद्धों को निष्क्रियपना है। पुद्गलों को सक्रियपने का बहिरंग साधन परिणाम-निष्पादक काल है, इसलिये पुद्गल काल-करणवाले हैं ।

कर्मादिक की भाँति काल का अभाव नहीं होता, इसलिये सिद्धों की भाँति पुद्गलों को निष्क्रियपना नहीं होता ।।97।।

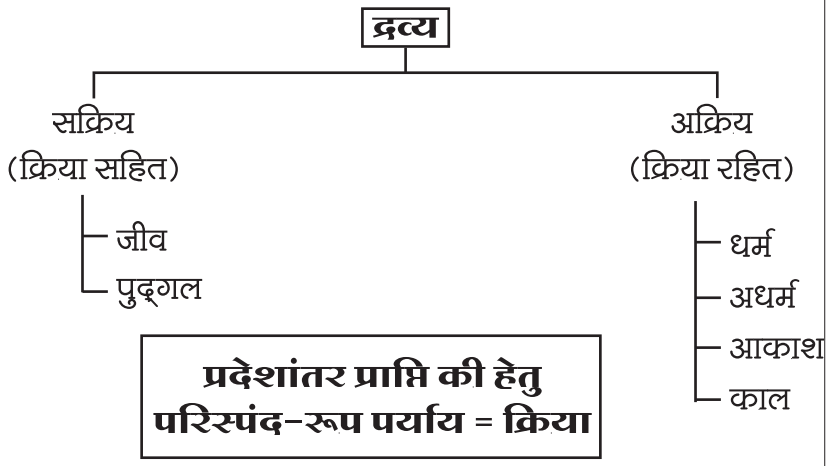


**प्रदेशांतर प्राप्ति की हेतु**
**परिस्पंद-रूप पर्याय = क्रिया**

| सक्रियता का बहिरंग साधन | |
|---|---|
| 1. जीव के लिए → | कर्म-नोकर्म के संचयरूप पुद्गल |
| 2. पुद्गल के लिए → | परिणाम निष्पादक काल द्रव्य |

**सिद्धों को बहिरंग कारण का अभाव है। अतः वे निष्क्रिय हैं।**

जे खलु इन्दियगेज्झा विसया जीवेहिं होन्ति ते मुत्ता ।
सेसं हवदि अमुत्तं चित्तं उभयं समादियदि ॥९८॥

**गाथार्थ: जीवों द्वारा जो इन्द्रियों से ग्रहण करने योग्य विषय हैं, वे वास्तव में मूर्त हैं, शेष अमूर्त हैं ; चित्त इन दोनों को ग्रहण करता है (जानता है) ।**

**टीका :** यह, मूर्त और अमूर्त के लक्षण का कथन है ।

इस लोक में जीवों द्वारा स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय और चक्षुरिन्द्रिय द्वारा उनके विषयभूत, स्पर्श-रस-गंध-वर्ण स्वभाववाले पदार्थ ऐसे ग्रहण होते हैं (ज्ञात होते हैं), और श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा वही पदार्थ उसके विषयहेतुभूत शब्दाकार परिणमित होते हुए ग्रहण होते हैं । वे कदाचित् स्थूल स्कंधपने को प्राप्त होते हुए, कदाचित् सूक्ष्मत्व को प्राप्त होते हुए और कदाचित् परमाणुपने को प्राप्त होते हुए इन्द्रियों द्वारा ग्रहण होते हों या न होते हों, इन्द्रियों द्वारा ग्रहण होने की योग्यता का (सदैव) सद्भाव होने से 'मूर्त' कहलाते हैं ।

स्पर्श-रस-गंध-वर्ण का अभाव जिसका स्वभाव है ऐसा शेष अन्य समस्त पदार्थ—समूह इन्द्रियों द्वारा ग्रहण होने की योग्यता के अभाव के कारण 'अमूर्त' कहलाता है ।

वे दोनों मूर्त-अमूर्त चित्त द्वारा ग्रहण होने की योग्यता के सद्भाव वाले हैं; चित्त —जो कि अनियत विषयवाला, अप्राप्यकारी और मति-श्रुतज्ञान के साधनभूत है, वह मूर्त तथा अमूर्त को ग्रहण करता है।

इस प्रकार चूलिका समाप्त हुई ।।९४।।

**मूर्त** → जिनके इंद्रियों के द्वारा ग्रहण होने की योग्यता का सद्भाव है

**अमूर्त** → 1. जिनके इंद्रिय ग्राह्यपना ना है, ना ही कभी होगा या ना था, वे अमूर्त कहलाते हैं।

2. जिनके इंद्रियों द्वारा ग्रहण करने की योग्यता का अभाव है।

**चित्त (भाव मन)**

| | | | |
|---|---|---|---|
| स्वरूप | अनियत विषयवाला | अप्राप्यकारी | मति-श्रुतज्ञान का साधनभूत |
| विषय | मूर्त-अमूर्त पदार्थों का ग्राहक | | |

**कालो परिणामभवो परिणामो दव्वकालसंभूदो ।**
**दोण्हं एस सहावो कालो खणभंगुरो णियदो ।।९९।।**

**गाथार्थ: काल, परिणाम से उत्पन्न होता है; परिणाम, द्रव्य-काल से उत्पन्न होता है, यह दोनों का स्वभाव है; काल क्षणभंगुर तथा नित्य है।**

**टीका** : अब कालद्रव्य का व्याख्यान है ।

यह, व्यवहार-काल तथा निश्चय-काल के स्वरूप का कथन है ।

वहाँ, 'समय' नाम की जो क्रमिक पर्याय सो व्यवहार काल है; उसके आधारभूत द्रव्य वह निश्चय काल है ।

वहाँ, व्यवहार काल निश्चय काल की पर्यायरूप होने पर भी जीव-पुद्गलों के परिणाम से नपता है - ज्ञात होता है इसलिये ''जीव-पुद्गलों के परिणाम से उत्पन्न

होनेवाला'' कहलाता है, और जीव-पुद्गलों के परिणाम बहिरंग-निमित्तभूत द्रव्यकाल के सद्भाव में उत्पन्न होने के कारण ''द्रव्य काल से उत्पन्न होनेवाले'' कहलाते हैं । वहाँ तात्पर्य यह है कि व्यवहार काल जीव-पुद्गलों के परिणाम द्वारा निश्चित होता है और निश्चय काल जीव-पुद्गलों के परिणाम की अन्यथा अनुपपत्ति द्वारा निश्चित होता है ।

वहाँ व्यवहार काल क्षणभंगी है, क्योंकि वह मात्र सूक्ष्म पर्याय जितना ही है; निश्चय काल नित्य है, क्योंकि वह अपने गुण-पर्यायों के आधारभूत द्रव्यरूप से सदैव अविनाशी है ।।99।।

**तथ्य:**

(1) व्यवहार काल जीवादि द्रव्यों के परिणाम से उत्पन्न होता है।

(2) जीवादि द्रव्यों के परिणाम द्रव्य काल से उत्पन्न होते हैं।

(3) व्यवहार काल क्षणभंगुर (अनित्य) है एवं निश्चय काल नित्य है।

| काल का निश्चय | | |
|---|---|---|
| (1) व्यवहार काल | जीव पुद्गलों के परिणाम | द्वारा निश्चित होता है। |
| (2) निश्चय काल | | की अन्यथा-अनुपपत्ति द्वारा निश्चित होता है। |

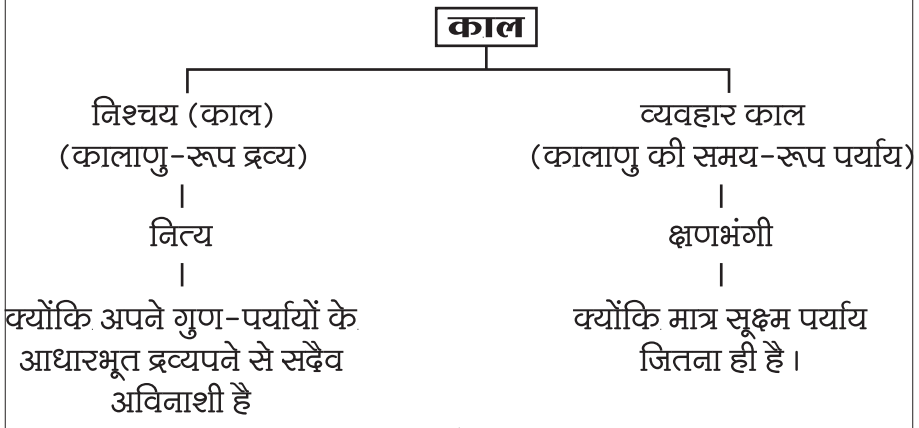

कालो त्ति य ववदेसो सब्भावपरूवगो हवदि णिच्चो ।

उप्पण्णप्पद्धंसी अवरो दीहंतरट्ठाई ॥१००॥

**गाथार्थ: 'काल' ऐसा नाम सद्भाव का प्ररूपक है, अत: नित्य है। दूसरा काल उत्पन्नध्वंसी है ; तथापि (परम्परा-अपेक्षा) दीर्घान्तरस्थायी (दीर्घकाल तक रहनेवाला) भी कहा जाता है।**

**टीका :** काल के 'नित्य' और 'क्षणिक' ऐसे दो विभागों का यह कथन है ।

''यह काल है, यह काल है'' ऐसा करके जिस द्रव्यविशेष का सदैव व्यपदेश (निर्देश, कथन) किया जाता है, वह द्रव्यविशेष सचमुच अपने सद्भाव को प्रगट करता हुआ नित्य है; और जो उत्पन्न होते ही नष्ट होता है, वह (व्यवहार काल) सचमुच उसी द्रव्यविशेष की 'समय' नामक पर्याय है। वह क्षणभंगुर होने पर भी अपनी संतति को दर्शाता है इसलिये उसे नय के बल से ''दीर्घकाल तक स्थित रहने वाला'' कहने में दोष नहीं है, इसलिये आवलिका, पल्योपम, सागरोपम इत्यादि व्यवहार का निषेध नहीं किया जाता ।

इस प्रकार यहाँ ऐसा कहा है कि निश्चय काल द्रव्यरूप होने से नित्य है, व्यवहार काल पर्यायरूप होने से क्षणिक है ।।100।।

(1) 'काल' - यह व्यपदेश (कथन) सद्भाव का प्ररूपक है। अतः काल नित्य है।

(2) इसी काल की 'समय' नामक क्षणभंगुर पर्याय है।

तथापि अपनी संतति को दिखाने से दीर्घ स्थिति का भी कहा जाता है।

**काल है -** { नित्य, क्षणभंगुर, दीर्घ स्थायी }

→ निश्चय काल

→ व्यवहार काल → सूक्ष्म ऋजुसूत्र से

→ व्यवहार काल → स्थूल ऋजुसूत्र से

एदे कालागासा धम्माधम्मा य पोग्गला जीवा ।
लब्भंति दव्वसण्णं कालस्स दु णत्थि कायत्तं ॥१०१॥

**गाथार्थ: ये काल, आकाश, धर्म, अधर्म, पुद्गल और जीव 'द्रव्य' संज्ञा को प्राप्त करते हैं ; परन्तु काल के कायत्व नहीं है।**

**टीका :** यह, काल को द्रव्यपने के विधान का और अस्तिकायपने के निषेध का कथन है ।

जिस प्रकार वास्तव में जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश को द्रव्य के समस्त लक्षणों का सद्भाव होने से वे 'द्रव्य' संज्ञा को प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार काल भी 'द्रव्य' संज्ञा को प्राप्त करता है । इस प्रकार छह द्रव्य हैं । किन्तु जिस प्रकार जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश को द्वि-आदि प्रदेश जिसका लक्षण है ऐसा अस्तिकायपना है, उस प्रकार कालाणुओं को, यद्यपि उनकी संख्या लोकाकाश के प्रदेशों जितनी (असंख्य) है तथापि, एकप्रदेशीपने के कारण अस्तिकायपना नहीं है । और ऐसा होने से ही यहाँ पंचास्तिकाय के प्रकरण में मुख्यतः काल का कथन नहीं किया गया है; (परन्तु) जीव-पुद्गलों के परिणाम द्वारा जो ज्ञात होता है-मपता है ऐसी उसकी पर्यायें होने से तथा जीव-पुद्गलों के परिणाम की अन्यथा अनुपपत्ति द्वारा जिसका अनुमान होता है, ऐसा वह द्रव्य होने से उसे यहाँ अन्तर्भूत किया गया है ।

इस प्रकार काल द्रव्य का व्याख्यान समाप्त हुआ ।।101।।

- जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये 6 द्रव्य हैं।
  क्योंकि इनमें द्रव्यत्व का लक्षण पाया जाता है।
- जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश अस्तिकाय हैं
  क्योंकि वे बहुप्रदेशी हैं।
- परन्तु काल को कायपना नहीं है।
  क्योंकि वह एकप्रदेशी है।

**प्रश्न** - तब इस पंचास्तिकाय ग्रन्थ में काल का कथन क्यों किया गया है?

**उत्तर** - कालः 1. जीव - पुद्गल के परिणामों द्वारा ज्ञात होता है, ऐसी **पर्यायें** होने के कारण

2. जीव - पुद्गल के परिणामों की अन्यथा-अनुपपत्ति से जिसका अनुमान होता है ऐसा **द्रव्य** होने के कारण

- उसका यहाँ अंतर्भाव किया है।

**एवं पवयणसारं पंचत्थियसंगहं वियाणित्ता ।**
**जो मुयदि रागदोसे सो गाहदि दुक्खपरिमोक्खं ॥१०२॥**

**गाथार्थ: इस प्रकार प्रवचन के सारभूत 'पंचास्तिकाय संग्रह' को विशेषरूप से जानकर जो राग-द्वेष को छोड़ता है, वह दुःखों से परिमुक्त होता है ।**

**टीका** : यहाँ पंचास्तिकाय के अवबोध का फल कहकर पंचास्तिकाय के व्याख्यान का उपसंहार किया गया है ।

वास्तव में सम्पूर्ण (द्वादशांगरूप से विस्तीर्ण) प्रवचन, कालसहित पंचास्तिकाय से अन्य कुछ भी प्रतिपादित नहीं करता, इसलिये प्रवचन का सार ही यह 'पंचास्तिकाय संग्रह' है। जो पुरुष समस्त वस्तु-तत्त्व का कथन करने वाले इस 'पंचास्तिकाय संग्रह' को अर्थतः अर्थीरूप से जानकर, इसी में कहे हुये जीवास्तिकाय में अन्तर्गत स्थित अपने को (निज आत्मा को) स्वरूप से अत्यंत विशुद्ध चैतन्यस्वभाववाला निश्चित करके परस्पर कार्य-कारणभूत ऐसे अनादि राग-द्वेष परिणाम और कर्म-बंध की परम्परा से जिसमें स्वरूप-विकार आरोपित है ऐसा अपने को उस काल अनुभव में आता देखकर, उस काल विवेक-ज्योति प्रगट होने से कर्म-बन्ध की परम्परा का प्रवर्तन करने वाली राग-द्वेष परिणति को छोड़ता है, वह पुरुष, वास्तव में जिसका स्नेह जीर्ण होता जाता है ऐसा, जघन्य स्नेहगुण के सम्मुख वर्तते हुए परमाणु की भाँति भावी बन्ध से पराङ्मुख वर्तता हुआ, पूर्व बंध से छूटता हुआ, अग्नितप्त जल की दुःस्थिति समान जो दुःख उससे परिमुक्त होता है ।।102।।

**प्रवचन के सारभूत**
**पंचास्तिकाय संग्रह को जानकर**
**जो राग-द्वेष को छोड़ता है,**
**वह दुःखों से परिमुक्त होता है।**

यह **'पंचास्तिकाय संग्रह'** प्रवचन का सार ही है।
क्योंकि सम्पूर्ण प्रवचन कालसहित पंचास्तिकाय का ही प्रतिपादन करता है।
उसी का प्रतिपादन यहाँ किया है।

मुणिऊण एतदट्ठं तदणुगमणुज्जदो णिहदमोहो ।
पसमियरागद्दोसो हवदि हदपरापरो जीवो ॥१०३॥

**गाथार्थ: जीव इसके अर्थ को जानकर, उसके अनुसरण का उद्यम करता हुआ, मोह से रहित हो, राग-द्वेष को प्रशमित करके पूर्वापर बंध से रहित होता है ।**

**टीका :** यह, दुःख से विमुक्त होने के परिणामों के क्रम का कथन है।

प्रथम, कोई जीव इस शास्त्र के अर्थभूत शुद्धचैतन्यस्वभाव वाले आत्मा को जानता है; इसलिए (फिर) उसी के अनुसरण का उद्यम करता है; अतः उसे दृष्टिमोह का क्षय होता है; इसलिए स्वरूप के परिचय के कारण ज्ञानज्योति प्रगट होती है; इसलिए रागद्वेष प्रशमित होते हैं, निवृत्त होते हैं; इसलिए उत्तर और पूर्व बन्ध विनष्ट होता है; इसलिए पुनः बन्ध होने के हेतुत्व का अभाव होने से स्वरूपस्थरूप से सदैव तपता है, प्रतापवन्त वर्तता है।

इस प्रकार समय-व्याख्या नामक टीका में षड्द्रव्य-पंचास्तिकाय वर्णन नाम का प्रथम श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ ।103।।

जो इस शास्त्र के अर्थभूत शुद्ध चैतन्य स्वभावी आत्मा को जानता है,
फिर उसी के अनुसरण का उद्यम करता है,
तब दर्शन-मोह का क्षय होता है,
ज्ञानज्योति प्रगट होती है।
जिससे राग-द्वेष समाप्त होते हैं,
तब पूर्व व उत्तर बंध विनष्ट होते हैं
तब जीव स्वरूपस्थ रहकर नित्य प्रतापवन्त रहता है।

## गाथा 104 से 151 की विषय-वस्तु

| क्रं. | विषय | गाथा क्रमांक | कुल गाथाएँ |
|---|---|---|---|
| 1. | प्रतिज्ञा, व्यवहार मोक्षमार्ग | 104-107 | 4 |
| 2. | जीवाधिकार | 108-121 | 14 |
| 3. | अजीवाधिकार | 122-125 | 4 |
| 4. | जीव-पुद्गल के संयोग से नवपदार्थ | 126-128 | 3 |
| 5. | पुण्य-पापाधिकार | 129-132 | 4 |
| 6. | शुभाशुभ आस्रव अधिकार | 133-138 | 6 |
| 7. | संवर अधिकार | 139-141 | 3 |
| 8. | निर्जरा अधिकार | 142-144 | 3 |
| 9. | बंध अधिकार | 145-147 | 3 |
| 10. | मोक्ष अधिकार | 148-151 | 4 |
| | | **कुल गाथाएँ** | **48** |

# द्वितीय अधिकार

## नव-पदार्थ-पूर्वक मोक्षमार्ग प्रपंच वर्णनरूप द्वितीय श्रुतस्कंध

**(उपजाति)**

द्रव्यस्वरूपप्रतिपादनेन, शुद्धं बुधानामिह तत्त्वमुक्तम्।
पदार्थभंगेन कृतावतारं, प्रकीर्त्यते संप्रति वर्त्म तस्य ॥ ७ ॥

**अर्थ: यहाँ द्रव्य-स्वरूप के प्रतिपादन द्वारा बुध पुरुषों को शुद्धतत्त्व का उपदेश दिया गया। अब पदार्थ भेद द्वारा प्रारंभ करके उसके मार्ग का (मोक्षमार्ग का) वर्णन किया जाता है ।**

अभिवंदिऊण सिरसा अपुणब्भवकारणं महावीरं ।
तेसिं पयत्थभंगं मग्गं मोक्खस्स वोच्छामि ॥१०४॥

**गाथार्थ: अपुनर्भव (मोक्ष) के कारणभूत श्री महावीर भगवान को शिर झुकाकर नमस्कार करके, उनके (छह द्रव्यों के) पदार्थ भंग को और मोक्ष के मार्ग को कहूँगा ।**

**टीका :** यह, आप्त की स्तुतिपूर्वक प्रतिज्ञा है।

प्रवर्तमान महाधर्मतीर्थ के मूलकर्ता जो अपुनर्भव के कारण हैं ऐसे भगवान, परम भट्टारक, महादेवाधिदेव श्री वर्धमानस्वामी की, सिद्धत्व के निमित्तभूत भावस्तुति करके, कालसहित पंचास्तिकाय का पदार्थभेद तथा मोक्ष का मार्ग कहने की इस गाथा सूत्र में प्रतिज्ञा की गई है ।।104।।

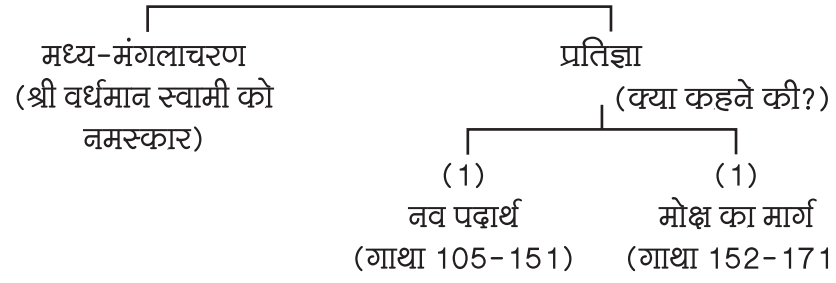

सम्मत्तणाणजुत्तं चारित्तं रागदोसपरिहीणं ।
मोक्खस्स हवदि मग्गो भव्वाणं लद्धबुद्धीणं ॥१०५॥

**गाथार्थ: सम्यग्दर्शन-ज्ञान से सहित, रागद्वेष से परिहीन चारित्र लब्धबुद्धि भव्यों को मोक्ष का मार्ग है ।**

**टीका :** प्रथम, मोक्षमार्ग की ही यह सूचना है ।

सम्यक्त्व और ज्ञान से युक्त-न कि असम्यक्त्व और अज्ञान से युक्त, चारित्र ही-न कि अचारित्र, राग-द्वेष-रहित हो ऐसा ही (चारित्र)-न कि रागद्वेष सहित हो ऐसा, मोक्ष का ही-भावतः न कि बन्ध का, मार्ग ही-न कि अमार्ग, भव्यों को ही-न कि अभव्यों को, लब्धबुद्धियों को ही-न कि अलब्धबुद्धियों को, क्षीणकषायपने में ही होता है-न कि कषाय-सहितपने में होता है । इस प्रकार आठ प्रकार से नियम यहाँ देखना ।।105।।

| |
|---|
| सम्यक्त्व और ज्ञान से युक्त<br>राग-द्वेष से रहित<br>**चारित्र** होता है। |
| **ऐसा चारित्र भव्य लब्धबुद्धि जीवों को मोक्षमार्ग होता है।** |

एवं जिणपण्णत्ते सद्दहमाणस्स भावदो भावे
पुरिसस्साभिणिबोधे दंसणसद्दो हवदि जुत्तो ॥१०५-१॥

**गाथार्थ: इस प्रकार जिनेन्द्रप्रणीत पदार्थ का भाव से / रुचि-रूप परिणाम से श्रद्धान करने वाले पुरुष / आत्मा के ज्ञान में दर्शन शब्द उचित है ।**

सम्मत्तं सद्दहणं भावाणं तेसिमधिगमो णाणं ।
चारित्तं समभावो विसयेसु विरूढमग्गाणं ॥१०६॥

**गाथार्थ: भावों का (नव पदार्थों का) श्रद्धान सम्यग्दर्शन है; उनका अधिगम ज्ञान है; विरुद्ध-मार्गियों का विषयों में समभाव चारित्र है ।**

**टीका :** यह, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की सूचना है ।

काल-सहित पंचास्तिकाय के भेदरूप नव पदार्थ वे वास्तव में 'भाव' हैं । उन 'भावों' का मिथ्यादर्शन के उदय से प्राप्त होनेवाला जो अश्रद्धान उसके अभाव-स्वभाववाला जो भावान्तर - श्रद्धान वह सम्यग्दर्शन है जो कि (सम्यग्दर्शन) शुद्ध चैतन्यरूप आत्मतत्त्व के विनिश्चय का बीज है। नौका-गमन के संस्कार की भाँति मिथ्यादर्शन के उदय के कारण जो स्वरूप-विपर्यय-पूर्वक अध्यवसित होते हैं ऐसे उन 'भावों' का ही मिथ्यादर्शन के उदय की निवृत्ति होने पर, जो सम्यक् अध्यवसाय (यथार्थ अवभास, सच्चा अवबोध) होना, वह सम्यग्ज्ञान है जो कि (सम्यग्ज्ञान) कुछ अंश में ज्ञान-चेतना प्रधान आत्म-तत्त्व की उपलब्धि का बीज है । सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के सद्भाव के कारण समस्त अमार्गों से छूटकर जो स्व-तत्त्व में विशेषरूप से रूढ़मार्गवाले हुए हैं उन्हें इंद्रिय और मन के विषयभूत पदार्थों के प्रति राग-द्वेषपूर्वक विकार के अभाव के कारण जो निर्विकार-ज्ञानस्वभाववाला समभाव होता है, वह चारित्र है जो कि (चारित्र) उस काल में और आगामी काल में रमणीय है और अपुनर्भव के महासौख्य का एक बीज है ।

ऐसे इस त्रिलक्षण (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रात्मक) मोक्षमार्ग का आगे निश्चय और व्यवहार से व्याख्यान किया जायेगा । यहाँ तो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के विषयभूत नवपदार्थों के उपोद्घात के हेतुरूप से उसकी सूचना दी गई है ।।106।।

| लक्ष्य | लक्षण |
|---|---|
| सम्यक्त्व | 1. जीवादि भावों का श्रद्धान<br>2. शुद्ध चैतन्य-रूप आत्म-तत्त्व के विनिश्चय का बीज |
| सम्यग्ज्ञान | 1. जीवादि भावों का अवबोध<br>2. कुछ अंशों में ज्ञान-चेतना प्रधान आत्म-तत्त्व की उपलब्धि<br>3. आत्मविषयक स्व-संवेदन ज्ञान का परंपरा से बीज |
| सम्यग्चारित्र | 1. पाँच इंद्रिय व मन के विषयों में समभाव<br>2. तत्काल एवं आगामी काल में रमणीय और अपुनर्भव के महा-सौख्य का बीज। |

**जीवाजीवा भावा पुण्णं पावं च आसवं तेसिं ।**
**संवरणिज्जरबंधो मोक्खो य हवन्ति ते अट्ठा ॥१०७॥**

**गाथार्थ: जीव और अजीव (मूल) भाव हैं; उन दोनों के पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष - ये (नव) पदार्थ होते हैं ।**

**टीका :** यह, पदार्थों के नाम और स्वरूप का कथन है।

जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष– इस प्रकार नव पदार्थों के नाम हैं ।

उनमें चैतन्य जिसका लक्षण है ऐसा जीवास्तिक ही यहाँ जीव है। चैतन्य का अभाव जिसका लक्षण है वह अजीव है; वह (अजीव) पाँच प्रकार से पहले कहा ही है–पुद्गलास्तिक, धर्मास्तिक, अधर्मास्तिक, आकाशास्तिक और काल द्रव्य । यह जीव और अजीव (दोनों) पृथक् अस्तित्व द्वारा निष्पन्न होने से भिन्न जिनके स्वभाव हैं ऐसे मूल पदार्थ हैं ।

जीव और पुद्गल के संयोग परिणाम से उत्पन्न सात अन्य पदार्थ हैं । जीव के शुभ परिणाम तथा वे जिसका निमित्त हैं ऐसे पुद्गलों के कर्मपरिणाम वह पुण्य है । जीव के अशुभ परिणाम तथा वे जिनका निमित्त हैं ऐसे पुद्गलों के कर्मपरिणाम वह पाप है । जीव के मोह-राग-द्वेषरूप परिणाम तथा वे जिनका निमित्त हैं ऐसे जो योग-द्वार से प्रविष्ट होने वाले पुद्गलों के कर्म-परिणाम वह आस्रव है । जीव के

मोह-राग-द्वेषरूप परिणाम का निरोध तथा वे जिसका निमित्त है ऐसा जो योग-द्वार से प्रविष्ट होने वाले पुद्गलों के कर्म-परिणाम का निरोध वह संवर है । कर्म के वीर्य का शातन (विनाश) करने में समर्थ ऐसा जो बहिरंग और अंतरंग तपों द्वारा वृद्धि को प्राप्त जीव का शुद्धोपयोग तथा उनके प्रभाव से नीरस हुए ऐसे उपार्जित कर्म-पुद्गलों का एकदेश संक्षय वह निर्जरा है । जीव के मोह-राग-द्वेष द्वारा स्निग्ध परिणाम तथा उसके निमित्त से कर्मरूप परिणत पुद्गलों का जीव के साथ अन्योन्य अवगाहन वह बन्ध है । जीव की अत्यंत शुद्ध आत्मोपलब्धि तथा कर्म-पुद्गलों का जीव से अत्यन्त विश्लेष (वियोग) वह मोक्ष है ।।107।।

## नव-पदार्थ

| | | |
|---|---|---|
| **जीव** | चैतन्य-लक्षण जीवास्तिकाय | |
| **अजीव** | चैतन्य के अभाव लक्षणरूप अजीव (पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल) | |
| | **जीव भाव** | **अजीव भाव** |
| **पुण्य** | जीव के शुभ परिणाम | उसके निमित्त से पुद्गलों के कर्म परिणाम |
| **पाप** | जीव के अशुभ परिणाम | उसके निमित्त से पुद्गलों के कर्म परिणाम |
| **आस्रव** | जीव के मोह-राग-द्वेष रूप परिणाम | उसके निमित्त से योगद्वार से प्रविष्ट होने वाले पुद्गलों के कर्म परिणाम |
| **संवर** | जीव के मोह-राग-द्वेष रूप परिणामों का निरोध | उसके निमित्त से योगद्वार से प्रविष्ट होने वाले पुद्गलों के कर्म परिणाम का निरोध |
| **निर्जरा** | जीव का शुद्धोपयोग | उसके प्रभाव से नीरस हुए उपार्जित कर्मपुद्गलों का एकदेश संक्षय |
| **बंध** | जीव के मोह-राग-द्वेष द्वारा स्निग्ध परिणाम | उसके निमित्त से कर्मरूप परिणत पुद्गलों का जीव के साथ अन्योन्य अवगाहन |
| **मोक्ष** | जीव की अत्यंत शुद्ध आत्मोपलब्धि | कर्म पुद्गलों का जीव से अत्यंत विश्लेष |

**तप कैसा है ?**

- (1) कर्म की शक्ति को नष्ट करने में समर्थ
- (2) जीव के शुद्धोपयोग की वृद्धि करने वाला

## जीव पदार्थ

जीवा संसारत्था णिव्वादा चेदणप्पगा दुविहा ।

उवओगलक्खणा वि य देहादेहप्पवीचारा ॥१०८॥

**गाथार्थ: चेतनात्मक और उपयोग लक्षणवाले जीव दो प्रकार के हैं - संसारस्थ और सिद्ध। देह में प्रवीचार सहित संसारस्थ हैं तथा देह में प्रवीचार रहित सिद्ध हैं ।**

**टीका :** अब जीवपदार्थ का व्याख्यान विस्तारपूर्वक किया जाता है ।

यह, जीव के स्वरूप का कथन है ।

जीव दो प्रकार के हैं:-(१) संसारी अर्थात अशुद्ध, और (२) सिद्ध अर्थात शुद्ध । वे दोनों वास्तव में चेतना-स्वभाववाले हैं और चेतना-परिणामस्वरूप उपयोग द्वारा लक्षित होने योग्य हैं। उनमें, संसारी जीव देह में वर्तनेवाले अर्थात् देहसहित हैं और सिद्ध जीव देह में नहीं वर्तनेवाले अर्थात् देहरहित हैं ।।108।।

**जीव**

**(चेतनात्मक और उपयोग लक्षण वाले)**

| संसारी (अशुद्ध) | सिद्ध (शुद्ध) |
|---|---|
| (देह में वर्तने वाले) | (देह में न वर्तने वाले) |
| कर्मचेतना, कर्मफल चेतना वाले | शुद्ध चेतना वाले |
| क्षायोपशमिक अशुद्धोपयोग वाले | केवलज्ञान दर्शन उपयोग वाले |

पुढवी य उदगमगणी वाउवणप्फदिजीवसंसिदा काया ।

देंति खलु मोहबहुलं फासं बहुगा वि ते तेसिं ॥१०९॥

तित्थावरतणुजोगा अणिलाणलकाइया य तेसुत सा।
मणपरिणामविरहिदा जीवा एइंदिया णेया॥१०९-१॥

एदे जीवणिकाया पंचविहा पुढविकाइयादीया ।
मणपरिणामविरहिदा जीवा एगेंदिया भणिया ॥११०॥

अंडेसु पवड्ढंता गब्भत्था माणुसा य मुच्छगया ।
जारिसया तारिसया जीवा एगेंदिया णेया ॥१११॥

**गाथार्थ: पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति जीव से संश्रित अनेक प्रकार के वे शरीर, वास्तव में उन्हें (उन जीवों को) मोह से बहुल स्पर्श देते हैं । उनमें से तीन स्थावर शरीर के संयोग-वाले हैं । वायुकायिक और अग्निकायिक त्रस हैं । वे सभी मन परिणाम से विरहित एकेन्द्रिय जीव जानना चाहिए । इन पृथ्वीकायिक आदि पाँच प्रकार के जीवनिकायों को मन परिणाम से विरहित एकेन्द्रिय जीव कहा है । अण्डे में प्रवर्धमान (बढ़ते हुए),गर्भस्थ और मूर्छा को प्राप्त मनुष्य जैसे हैं; उसी प्रकार एकेन्द्रिय जीव जानना चाहिए ।**

**टीका :** यह, (संसारी जीवों के भेदों में से) पृथ्वीकायिक आदि पाँच भेदों का कथन है।

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजःकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय - ऐसे यह पुद्गल परिणाम बन्धवशात् जीवसहित हैं । अवान्तर जातिरूप भेद करने पर वे अनेक होने पर भी वे सभी (पुद्गल-परिणाम), स्पर्शनेन्द्रियावरण के क्षयोपशमवाले जीवों को बहिरंग स्पर्शनेन्द्रिय की रचनाभूत वर्तते हुए, कर्मफल-चेतना-प्रधानपने के कारण अत्यन्त मोहसहित ही स्पर्शोपलब्धि संप्राप्त कराते हैं ।।109।।

यह, पृथ्वीकायिक आदि पाँच (पंचविध) जीवों के एकेन्द्रियपने का नियम है ।

पृथ्वीकायिक आदि जीव, स्पर्शनेन्द्रिय के आवरण के क्षयोपशम के कारण तथा शेष इंद्रियों के आवरण का उदय तथा मन के आवरण का उदय होने से, मनरहित एकेन्द्रिय हैं ।।110।।

यह, एकेन्द्रियों को चैतन्य का अस्तित्व होने सम्बन्धी दृष्टांत का कथन है ।

अंडे में रहे हुए, गर्भ में रहे हुए और मूर्च्छा पाये हुए (प्राणियों) के जीवत्व का, उन्हें बुद्धिपूर्वक व्यापार नहीं देखा जाता तथापि, जिस प्रकार निश्चय किया जाता है, उसी प्रकार एकेन्द्रियों के जीवत्व का भी निश्चय किया जाता है, क्योंकि दोनों में बुद्धिपूर्वक व्यापार का अदर्शन समान है ।।111।।

**एकेन्द्रिय में चेतना / जीवत्व नहीं है।**

↳ नहीं, जीवत्व है।

↳ कैसे ?

↳ (1) जैसे अंडे में रहे हुए...

(2) गर्भ में रहे हुए...

(3) मूर्छित मनुष्य ...

के जीवत्व पाया जाता है, उसी प्रकार एकेन्द्रिय के जीवन है।

**हेतु -** जैसे उपर्युक्त के बुद्धिपूर्वक व्यापार नहीं दिखने पर भी जीवन माना जाता है, वैसे ही एकेन्द्रिय में भी है।

**एकेन्द्रिय के प्रकार**

- पृथ्वीकायिक
- जलकायिक
- अग्नि-कायिक
- वायुकायिक
- वनस्पति-कायिक

संबुक्कमादुवाहा संखा सिप्पी अपादगा य किमी ।
जाणंति रसं फासं जे ते बेइंदिया जीवा ॥११२॥

जूगागुंभीमक्कणपिपीलिया विच्छियादिया कीडा ।
जाणंति रसं फासं गंधं तेइंदिया जीवा ॥११३॥

उद्दंमसयमक्खियमधुकरभमरा पतंगमादीया ।
रूवं रसं च गंधं फासं पुण ते विजाणंति ॥११४॥

सुरणरणारयतिरिया वण्णरसप्फासगंधसद्दण्हू ।
जलचरथलचरखचरा बलिया पंचेंदिया जीवा ॥११५॥

**गाथार्थ: जो रस और स्पर्श को जाननेवाले शंबूक, मातृवाह, शंख, सीप और पैर रहित कृमी आदि हैं, वे द्वीन्द्रिय जीव हैं । यूका (जूँ), कुंभी, मत्कुण (खटमल), पिपीलिका (चींटी), बिच्छू आदि कीट (जन्तु) त्रीन्द्रिय जीव स्पर्श, रस और गंध को जानते हैं । डाँस, मच्छर, मक्खी, मधुमक्खी, भँवरा, पतंगे आदि वे (चतुरिन्द्रिय जीव) रूप, रस, गंध, स्पर्श को जानते हैं । स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द को जाननेवाले देव, मनुष्य, नारकी तथा जलचर, थलचर, नभचर रूप तिर्यंच बलवान पंचेन्द्रिय जीव हैं।**

**टीका :** यह, द्वीन्द्रिय जीवों के प्रकार की सूचना है।

स्पर्शनेन्द्रिय और रसनेन्द्रिय के आवरण के क्षयोपशम के कारण तथा शेष इंद्रियों के आवरण का उदय तथा मन के आवरण का उदय होने से स्पर्श और रस को जानने वाले यह (शंबूक आदि) जीव मनरहित द्वीन्द्रिय जीव हैं ।।112।।

यह, त्रीन्द्रिय जीवों के प्रकार की सूचना है।

स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय के आवरण के क्षयोपशम के कारण तथा शेष इंद्रियों के आवरण का उदय तथा मन के आवरण का उदय होने से स्पर्श, रस और गंध को जानने वाले यह (जूँ आदि) जीव मन-रहित त्रीन्द्रिय जीव हैं ।।113।।

यह, चतुरिंद्रिय जीवों के प्रकार की सूचना है ।

स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय और चक्षुरिन्द्रिय के आवरण के क्षयोपशम के कारण तथा श्रोत्रेन्द्रिय के आवरण का उदय तथा मन के आवरण का उदय होने से स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण को जानने वाले यह (डाँस आदि) जीव मनरहित चतुरिंद्रिय जीव हैं ।।114।।

यह, पंचेन्द्रिय जीवों के प्रकार की सूचना है ।

स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय और श्रोत्रेन्द्रिय के आवरण के क्षयोपशम के कारण, मन के आवरण का उदय होने से स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और शब्द को जानने वाले जीव मनरहित पंचेन्द्रियजीव हैं, कतिपय (पंचेन्द्रिय जीव) तो, उन्हें मन के आवरण का भी क्षयोपशम होने से, मनसहित होते हैं । उनमें देव, मनुष्य और नारकी मनसहित ही होते हैं, तिर्यंच दोनों जाति के होते हैं ।।115।।

## जीवों के भेद

| प्रकार → | एकेन्द्रिय | द्वींद्रिय | त्रींद्रिय | चतुरिंद्रिय | पंचेंद्रिय |
|---|---|---|---|---|---|
| **किनका क्षयोपशम** | स्पर्शनेन्द्रिय आवरण का | स्पर्शन-रसनेन्द्रिय आवरण का | स्पर्शन, रसना, घ्राण इंद्रिय आवरण का | स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु इंद्रियावरण का | स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण इंद्रियावरण का |
| **किसका उदय** | रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण इंद्रियावरण+ नोइंद्रियावरण का | घ्राण, चक्षु, कर्ण आवरण+ नो इंद्रियावरण का | चक्षु, कर्ण इंद्रियावरण + नोइंद्रियावरण का | कर्ण इंद्रियावरण + नोइंद्रियावरण का | असंज्ञी को नोइंद्रियावरण का |
| **किसका ज्ञान** | स्पर्श का | स्पर्श, रस का | स्पर्श, रस, गंध का | स्पर्श, रस, गंध, वर्ण का | स्पर्श, रस, गंध वर्ण, शब्द का |
| **उदाहरण** | पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति | शंबूक, मातृवाह, शंख, सीप, रेंगने वाले कीड़े आदि | जूँ, कुंभी, खटमल, चींटी, बिच्छु आदि | दंश, मक्खी, मच्छर, भ्रमर, पंतगादि | देव, मनुष्य, तिर्यंच, नारकी |

देवा चउण्णिकाया मणुया पुण कम्मभोगभूमीया ।
तिरिया बहुप्पयारा णेरइया पुढविभेयगदा ॥११६॥

**गाथार्थ: देव, चार निकायवाले हैं; मनुष्य कर्मभूमिज और भोगभूमिज हैं; तिर्यंच, अनेक प्रकार के हैं और नारकी पृथ्वी-भेद-गत हैं ।**

**टीका :** यह, इंद्रियों के भेद की अपेक्षा से कहे गये जीवों का चतुर्गति सम्बन्ध दर्शाते हुए उपसंहार है ।

देवगति नामकर्म और देवायु के उदय से देव होते हैं; वे भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक ऐसे निकायभेदों के कारण चार प्रकार के हैं । मनुष्यगति नामकर्म और मनुष्यायु के उदय से मनुष्य होते हैं; वे कर्मभूमिज और भोगभूमिज ऐसे भेदों के कारण दो प्रकार के हैं । तिर्यंचगति नामकर्म और तिर्यंचायु के उदय से तिर्यंच होते हैं; वे पृथ्वी, शंबूक, जूँ, डाँस, उरग,पक्षी, परिसर्प, चतुष्पाद (चौपाये) इत्यादि भेदों के कारण अनेक प्रकार के हैं । नरकगति नामकर्म और नरकायु के उदय से नारक होते हैं; वे रत्नप्रभा-भूमिज, शर्कराप्रभा-भूमिज, बालुकाप्रभा-भूमिज, पंकप्रभा-भूमिज, धूमप्रभा-भूमिज, तमःप्रभा-भूमिज और महातमः-प्रभा-भूमिज ऐसे भेदों के कारण सात प्रकार के हैं ।

उनमें देव, मनुष्य और नारकी पंचेन्द्रिय ही होते हैं । तिर्यंच तो कुछ पंचेन्द्रिय होते हैं और कुछ एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय भी होते हैं ।।116।।

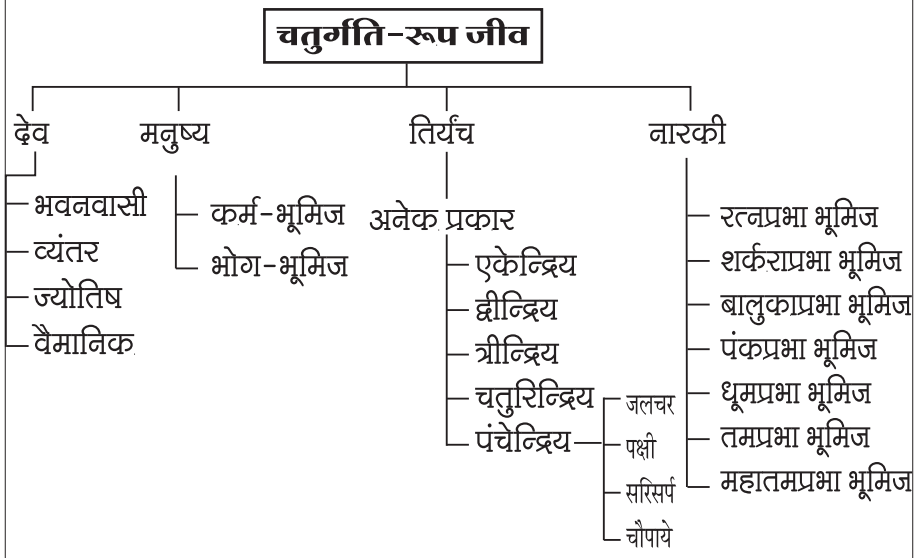


**खीणे पुव्वणिबद्धे गदिणामे आउसे च ते वि खलु ।**
**पापुण्णंति य अण्णं गदिमाउस्सं सलेस्सवसा ॥११७॥**

**गाथार्थः पूर्वबद्ध गति नामकर्म और आयुकर्म क्षीण होने पर वे ही जीव अपनी लेश्या के वश से वास्तव में अन्य गति और अन्य आयु को प्राप्त होते हैं ।**

**टीका :** यहाँ, देवत्वादि गति नामकर्म और आयुष कर्म के उदय से निष्पन्न होते हैं इसलिये देवत्वादि अनात्म-स्वभावभूत हैं ऐसा दर्शाया गया है ।

जीवों को, जिसका फल प्रारम्भ हो जाता है ऐसा अमुक गति नामकर्म और अमुक आयुषकर्म क्रमशः क्षय को प्राप्त होता है । ऐसा होने पर भी उन्हें कषाय-अनुरंजित योग-प्रवृत्तिरूप लेश्या अन्य गति और अन्य आयुष का बीज होती है, इसलिये उसके उचित ही अन्य गति तथा अन्य आयुष वे प्राप्त करते हैं । इस प्रकार क्षीण-अक्षीणपने को प्राप्त होने पर भी पुनः-पुनः नवीन उत्पन्न होने वाले गतिनामकर्म और आयुषकर्म, यद्यपि वे अनात्म-स्वभावभूत हैं तथापि, चिरकाल (जीवों के) साथ-साथ रहते हैं इसलिये, आत्मा को नहीं चेतने वाले जीव संसरण करते हैं ।।117।।

**जीव**

पूर्वबद्ध गति और आयु कर्म क्षीण होने पर
अपनी लेश्या के अनुसार
अन्य गति और आयु प्राप्त करते हैं।

**भावार्थ : आत्मा को न चेतने वाले संसार में भ्रमण करते हैं।**

एदे जीवणिकाया देहप्पविचारमस्सिदा भणिदा ।
देहविहूणा सिद्धा भव्वा संसारिणो अभव्वा य ॥११८॥

**गाथार्थ: ये जीवनिकाय देह प्रवीचार के आश्रित (देह का भोग-उपयोग करनेवाले) कहे गए हैं। देह से रहित सिद्ध हैं। संसारी भव्य और अभव्य दो भेदवाले हैं ।**

**टीका** : यह उक्त (पहले कहे गये) जीवविस्तार का उपसंहार है ।

जिनके प्रकार कहे गये ऐसे यह समस्त संसारी देह में वर्तनेवाले हैं, देह में नहीं वर्तने वाले ऐसे सिद्धभगवन्त हैं जो कि शुद्ध जीव हैं। वहाँ, देह में वर्तने की अपेक्षा से संसारी जीवों का एक प्रकार होने पर भी वे भव्य और अभव्य ऐसे दो प्रकार के हैं। 'पाच्य' और 'अपाच्य' मूँग की भाँति, जिनमें शुद्धस्वरूप की उपलब्धि की शक्ति का सद्भाव है उन्हें 'भव्य' और जिनमें शुद्धस्वरूप की शक्ति का असद्भाव है उन्हें 'अभव्य' कहा जाता है ।।118।।

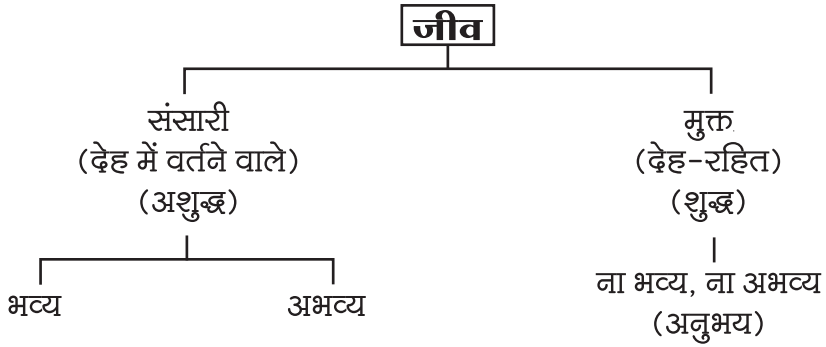

**भव्य** - जिसके शुद्ध स्वरूप की उपलब्धि की शक्ति का सद्भाव है।

**अभव्य** - जिसके शुद्ध स्वरूप की उपलब्धि की शक्ति का असद्भाव है।

**ण हि इंदियाणि जीवा काया पुण छप्पयार पण्णत्ता ।**

**जं हवदि तेसु णाणं जीवो त्ति य तं परूवेंति ॥११९॥**

**गाथार्थ: इन्द्रियाँ जीव नहीं हैं, कहे गए छह प्रकार के काय भी जीव नहीं हैं । उनमें जो ज्ञान है वह जीव है, ऐसा (सर्वज्ञ भगवान) प्ररूपित करते हैं ।**

**टीका :** यह, व्यवहार-जीवत्व के एकांत की प्रतिपत्ति का खंडन है ।

यह जो एकेन्द्रियादि तथा पृथ्वीकायिकादि, 'जीव' कहे जाते हैं, अनादि जीव-पुद्गल का परस्पर अवगाह देखकर व्यवहार नय से जीव के प्राधान्य द्वारा 'जीव' कहे जाते हैं । निश्चय नय से उनमें स्पर्शनादि इन्द्रियाँ तथा पृथ्वी आदि कायें, जीव के लक्षणभूत चैतन्य-स्वभाव के अभाव के कारण, जीव नहीं हैं, उन्हीं में जो स्व-पर की ज्ञप्तिरूप से प्रकाशमान ज्ञान है वही, गुण-गुणी के कथंचित् अभेद के कारण, जीवरूप से प्ररूपित किया जाता है ।।119।।

| एकेन्द्रियादि तथा पृथ्वीकायादि | | |
|---|---|---|
| | जीव हैं | जीव नहीं है। |
| **नय** | व्यवहार | निश्चय |
| **क्यों** | जीव-पुद्गल के परस्पर अवगाह में जीव की प्रधानता से | स्पर्शनादि इन्द्रिय तथा पृथ्वी आदि काय में चैतन्यस्वभाव का अभाव होने से |

**तो यथार्थ में जीव कौन है?**

उन्हीं एकेन्द्रियादि में स्व-पर की ज्ञप्तिरूप से प्रकाशित ज्ञान जीव है।

जाणदि पस्सदि सव्वं इच्छदि सुक्खं विभेदि दुक्खादो ।
कुव्वदि हिदमहिदं वा भुंजदि जीवो फलं तेसिं ॥१२०॥

**गाथार्थ: जीव सब जानता और देखता है, सुख को चाहता है, दुःख से डरता है, हित-अहित को करता है और उनके फल को भोगता है ।**

**टीका :** यह, अन्य से असाधारण ऐसे जीवकार्यों का कथन है ।

चैतन्यस्वभावपने के कारण, कर्तृस्थित (कर्ता में रहने वाली) क्रिया का– ज्ञप्ति तथा दृशि का– जीव ही कर्ता है; उसके सम्बन्ध में रहा हुआ पुद्गल उसका कर्ता नहीं है, जिस प्रकार आकाशादि (कर्ता) नहीं है उसी प्रकार । चैतन्य के विवर्तरूप (परिवर्तनरूप) संकल्प की उत्पत्ति (जीव में) होने के कारण, सुख की अभिलाषारूप क्रिया का, दुःख के उद्वेगरूप क्रिया का तथा स्व-संवेदित हित-अहित की निष्पत्तिरूप क्रिया का जीव ही कर्ता है; अन्य नहीं है । शुभाशुभ कर्म के फलभूत इष्टानिष्ट-विषयोपभोग क्रिया का, सुख-दुःख-स्वरूप स्व-परिणाम क्रिया की भाँति, जीव ही कर्ता है; अन्य नहीं ।

इससे ऐसा समझाया कि (उपर्युक्त) असाधारण कार्यों द्वारा पुद्गल से भिन्न ऐसा आत्मा अनुमेय है ।।120।।

## जीव के असाधारण कार्य

| कार्य | क्रिया | इससे निराकरण हुआ |
|---|---|---|
| सब जानता - देखता है। | ज्ञप्ति-दृशि क्रिया | ज्ञान-रहित आत्मा मानने वालों का, सर्वज्ञ नहीं मानने वालों का |
| सुख की इच्छा करता है। | इच्छा क्रिया | सुख स्वभाव नहीं मानने वालों का |
| दुःख से डरता है। | भीति क्रिया | |
| हित-अहित भाव करता है। | कर्तृ क्रिया | कर्ता नहीं मानने वालों का |
| भावों का फल भोगता है। | भोक्तृ क्रिया | भोक्ता, परिणामी नहीं मानने वालों का |

| जीव कर्ता-भोक्ता है | | |
|---|---|---|
| व्यवहार नय से | - | पुद्गल कर्म आदि का |
| अशुद्ध निश्चय नय से | - | रागादि विकल्प-रूप भावकर्म या चेतन कर्म का |
| शुद्ध निश्चय नय से | - | केवलज्ञानादि शुद्ध भावों का |

## अजीव पदार्थ

**एवमभिगम्म जीवं अण्णेहिं वि पज्जएहिं बहुगेहिं ।**

**अभिगच्छदु अज्जीवं णाणंतरिदेहिं लिंगेहिं ॥१२१॥**

**गाथार्थ: इस प्रकार अन्य भी अनेक पर्यायों द्वारा जीव को जानकर, ज्ञान से भिन्न लिंगों द्वारा अजीव को जानो ।**

**टीका :** यह, जीव-व्याख्यान के उपसंहार की और अजीव-व्याख्यान के प्रारम्भ की सूचना है ।

इस प्रकार निर्देश के अनुसार (१) व्यवहार नय से कर्मग्रंथ प्रतिपादित जीवस्थान-गुणस्थान-मार्गणास्थान इत्यादि द्वारा प्रपंचित विचित्र भेदरूप बहु पर्यायों द्वारा, तथा (२) निश्चय नय से मोह-राग-द्वेष परिणति संप्राप्त विश्वरूपता के कारण कदाचित् अशुद्ध (ऐसी) और कदाचित् उसके (मोह-राग-द्वेष-परिणति के) अभाव के कारण शुद्ध ऐसी चैतन्य-विवर्त-ग्रन्थिरूप बहु पर्यायों द्वारा, जीव को जानो। इस प्रकार जीव को जानकर, अचैतन्य-स्वभाव के कारण, ज्ञान से अर्थांतरभूत ऐसे, यहाँ से कहे जाने वाले लिंगों द्वारा, जीव-सम्बद्ध या जीव-असम्बद्ध अजीव को, अपने से भेद-बुद्धि की प्रसिद्धि के लिये जानो।

इस प्रकार जीव पदार्थ का व्याख्यान समाप्त हुआ ।।121।।

**जीव को जानो**

| व्यवहार नय से | अशुद्ध निश्चय नय से | शुद्ध निश्चय नय से |
|---|---|---|
| जीवस्थान, गुणस्थान आदि से वर्णित अनेक भेदरूप पर्यायों द्वारा | मोह, राग, द्वेष परिणति से संपादित अनेक रूपत्व के कारण अशुद्ध पर्यायों द्वारा | शुद्ध चैतन्य परिणमन की ग्रन्थि रूप अनेक पर्यायों द्वारा |

| **जानो** | |
|---|---|
| किसे | अजीव को |
| कैसा अजीव | ज्ञान से अर्थांतरभूत |
| ऐसा क्यों हैं | अचैतन्य स्वभाव के कारण |
| कितने प्रकार का | (1) जीव-सम्बद्ध (2) जीव-असम्बद्ध |
| **क्यों** | **अपने से भेदबुद्धि की प्रसिद्धि के लिए** |

आगासकालपुग्गलधम्माधम्मेसु णत्थि जीवगुणा ।
तेसिं अचेदणत्तं भणिदं जीवस्स चेदणदा ॥१२२॥

**गाथार्थ: आकाश, काल, पुद्गल, धर्म और अधर्म में जीव के गुण नहीं हैं । उनके अचेतनता कही गई है तथा जीव के चेतनता है ।**

**टीका :** अब अजीव पदार्थ का व्याख्यान है । यह, आकाशादि का ही अजीवपना दर्शाने के लिये हेतु का कथन है ।

आकाश, काल, पुद्गल, धर्म और अधर्म में चैतन्य-विशेषोंरूप जीव-गुण विद्यमान नहीं है, क्योंकि उन आकाशादि को अचेतनत्व-सामान्य है । और अचेतनत्व-सामान्य आकाशादि को ही है, क्योंकि जीव को ही चेतनत्व- सामान्य है ।।122।।

आकाश, काल, पुद्गल, धर्म और अधर्म में सदा चैतन्य विशेष नहीं है, क्योंकि आकाशादि में चैतन्य सामान्य नहीं है। अतः आकाशादि अजीव हैं।

सुहदुक्खजाणणा वा हिदपरियम्मं च अहिदभीरुत्तं ।
जस्स ण विज्जदि णिच्चं तं समणा विंति अज्जीवं ॥१२३॥

**गाथार्थ: जिसके सदैव सुख-दुःख का ज्ञान, हित के लिए उद्यम / प्रयास, अहित से भय नहीं है, श्रमण उसे अजीव कहते हैं ।**

**टीका :** यह पुनश्च, आकाशादि का अचेतनत्व-सामान्य निश्चित करने के लिये अनुमान है ।

आकाशादि को सुख-दुःख का ज्ञान, हित का उद्यम और अहित का भय—इन चैतन्य-विशेषों की सदा अनुपलब्धि है, इसलिये आकाशादि अजीवों को चैतन्य-सामान्य विद्यमान नहीं है ।।123।।

**चैतन्य विशेष**

सुख-दुःख का ज्ञान | हित का उद्यम | अहित का भय

## अज्ञानी - ज्ञानी किसे हित-अहित मानते हैं ?

| | अज्ञानी | ज्ञानी |
|---|---|---|
| **हित** | 1. फूल-माला, स्त्री, चंदनादि विषयों को<br>2. इन विषयों के कारणभूत दानपूजादि को | 1. अक्षय अनंत सुख को<br>2. सुख के उत्पादक निश्चय रत्नत्रय-परिणत परमात्म द्रव्य को |
| **अहित** | सर्प, विष, कंटकादि को | 1. आकुलता के उत्पादक दुःख को<br>2. आकुलता के कारणभूत मिथ्यात्व रागादि परिणत आत्मद्रव्य को |

संठाणा संघादा वण्णरसप्फासगंधसद्दा य ।
पोग्गलदव्वप्पभवा होंति गुणा पज्जया य बहू ॥१२४॥

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं ।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥१२५॥

**गाथार्थ: संस्थान, संघात, वर्ण, रस, स्पर्श, गंध, शब्द इत्यादि अनेक गुण और पर्यायें पुद्गल द्रव्य से उत्पन्न होती हैं । जीव को अरस, अरूप, अगंध, अव्यक्त, चेतना गुणसहित, अशब्द, अलिंगग्रहण और अनिर्दिष्ट संस्थानवाला जानो ।**

**टीका :** जीव-पुद्गल के संयोग में भी, उनके भेद के कारणभूत स्वरूप का यह कथन है ।

शरीर और शरीरी के संयोग में, (१) जो वास्तव में स्पर्श-रस-गंध-वर्ण गुणवाला होने के कारण, सशब्द होने के कारण तथा संस्थान-संघातादि पर्यायोंरूप से परिणत होने के कारण इन्द्रिय-ग्रहणयोग्य है, वह पुद्गल द्रव्य है, और (२) जो स्पर्श-रस-गंध-वर्ण गुणरहित होने के कारण, अशब्द होने के कारण, अनिर्दिष्ट-संस्थान होने के कारण तथा अव्यक्तत्वादि पर्यायोंरूप से परिणत होने के कारण इन्द्रिय-ग्रहणयोग्य नहीं है, वह, चेतना-गुणत्व के कारण रूपी तथा अरूपी अजीवों से विशिष्ट (भिन्न) ऐसा जीव द्रव्य है ।

इस प्रकार यहाँ जीव और अजीव का वास्तविक भेद सम्यग्ज्ञानियों के मार्ग की प्रसिद्धि के हेतु प्रतिपादित किया गया।

इस प्रकार अजीव पदार्थ का व्याख्यान समाप्त हुआ। ।।124-125।।

| पक्ष | साध्य | हेतु |
|---|---|---|
| शरीर-शरीरी के संयोग में | जो इंद्रिय ग्रहण के योग्य है, वह पुद्गल द्रव्य है। | क्योंकि वह<br>1) स्पर्श-रस-गंध-वर्ण गुणवाला है<br>2) सशब्द है,<br>3) संस्थान-संघात आदि पर्यायों रूप से परिणत है। |

| पक्ष | साध्य | हेतु |
|---|---|---|
| जीव | इंद्रिय ग्रहण के योग्य नहीं है। | क्योंकि वह<br>(1) स्पर्श-रस-गंध वर्ण गुण रहित है।<br>(2) अशब्द है।<br>(3) अनिर्दिष्ट संस्थान वाला है।<br>(4) अव्यक्तत्व आदि पर्यायरूप परिणत है। |
| जीव | रूपी-अरूपी अजीवों से विशिष्ट है। | क्योंकि वह चेतनागुणमयी है। |

**इस व्याख्यान का प्रयोजन - सम्यग्ज्ञानियों के मार्ग की प्रसिद्धि के लिए**

**जीव अरस है, क्योंकि**

(1) रसगुण सहित पुद्गल द्रव्य-रूप नहीं होता।

(2) रसगुण मात्र नहीं है।

(3) रस को ग्रहण करने वाली पौद्गलिक जिह्वा इंद्रिय-रूप नहीं होता।

(4) उस करणभूत जिह्वा इंद्रिय के द्वारा रस की तरह अन्य को या स्वयं को नहीं जानता।

(5) निश्चय से स्वयं द्रव्येन्द्रिय द्वारा रस को नहीं जानता।

(6) निश्चय से जो ग्राहक नहीं है।

(7) रस के आस्वाद को जानने वाली क्षायोपशमिक भाव-इन्द्रिय-रूप नहीं होता।

(8) करणभूत भावेन्द्रिय के द्वारा रस की तरह अन्य को या स्वयं को नहीं जानता।

(9) उसी भावेन्द्रिय के द्वारा रस का परिच्छेदक नहीं है।

(10) भावेन्द्रिय रूप कारण से उत्पन्न रस की परिच्छित्ति-मात्र खण्ड-ज्ञान-रूप नहीं होता। (क्योंकि जीव अखण्ड एक प्रतिभासमय केवलज्ञान-रूप है।)

(11) रस को जानने पर भी रस-रूप से तन्मय नहीं होता।

***इसी प्रकार अस्पर्श, अगंध, अवर्ण, अशब्द में भी जानना चाहिए।***

जो खलु संसारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो ।
परिणामादो कम्मं कम्मादो होदि गदिसु गदी ॥१२६॥

गदिमधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणि जायंते ।
तेहिं दु विसयग्गहणं तत्तो रागो व दोसो वा ॥१२७॥

जायदि जीवस्सेवं भावो संसारचक्कवालम्मि ।
इदि जिणवरेहिं भणिदो अणादिणिधणो सणिधणो वा ॥१२८॥

**गाथार्थ: वास्तव में जो संसारस्थ जीव है, उससे परिणाम होता है; परिणाम से कर्म और कर्म के कारण गतियों में गमन होता है। गतिप्राप्त को देह होती है, देह से इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं, उनसे विषयों का ग्रहण होता है, विषयग्रहण से राग या द्वेष होता है। ऐसे भाव, संसार-चक्र में जीव के अनादि-अनन्त या अनादि-सान्त होते रहते हैं - ऐसा जिनवरों ने कहा है।**

**टीका :** दो मूल पदार्थ कहे गए। अब संयोग परिणाम से निष्पन्न होने वाले अन्य सात पदार्थों के उपोद्घात के हेतु जीवकर्म और पुद्गल कर्म के चक्र का वर्णन किया जाता है।

इस लोक में संसारी जीव से अनादि बन्धनरूप उपाधि के वश स्निग्ध परिणाम होता है; परिणाम से पुद्गल-परिणामात्मक कर्म, कर्म से नरकादि गतियों में गमन, गति की प्राप्ति से देह, देह से इन्द्रियाँ, इन्द्रियों से विषयग्रहण, विषयग्रहण से राग-द्वेष, राग-द्वेष से फिर स्निग्ध परिणाम, परिणाम से फिर पुद्गल-परिणामात्मक कर्म, कर्म से फिर नरकादि गतियों में गमन, गति की प्राप्ति से फिर देह, देह से फिर इन्द्रियाँ, इन्द्रियों से फिर विषयग्रहण, विषयग्रहण से फिर राग-द्वेष, राग-द्वेष से फिर स्निग्ध परिणाम। इस प्रकार यह अन्योन्य कार्य-कारणभूत जीव-परिणामात्मक और पुद्गल-परिणामात्मक कर्म-जाल संसार-चक्र में जीव को अनादि-अनन्तरूप से अथवा अनादि-सान्तरूप से चक्र की भाँति पुनः-पुनः होते रहते हैं ।

इस प्रकार यहाँ (ऐसा कहा कि), पुद्गल-परिणाम जिनका निमित्त है ऐसे जीव-परिणाम और जीव-परिणाम जिनका निमित्त है ऐसे पुद्गल-परिणाम अब कहे जाने वाले (पुण्यादि सात) पदार्थों के बीजरूप अवधारना ।।126-127-128।।

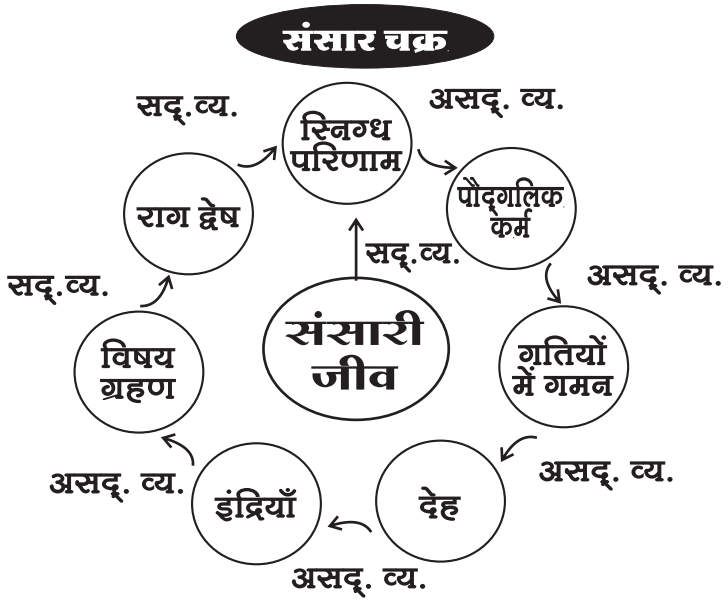


असद्. व्य. = असद्भूत व्यवहार नय
सद्. व्य. = सद्भूत व्यवहार नय

**संसार चक्र**
- अनादि-अनिधन → अभव्य / दूरान्दूर भव्य की अपेक्षा
- अनादि-सनिधन → भव्य जीव की अपेक्षा

## पुण्य - पाप पदार्थ

**मोहो रागो दोसो चित्तपसादो य जस्स भावम्मि ।**
**विज्जदि तस्स सुहो वा असुहो वा होदि परिणामो ॥१२९॥**

**गाथार्थ: जिसके भाव में मोह, राग, द्वेष या चित्त की प्रसन्नता विद्यमान है; उसके शुभ या अशुभ परिणाम होते हैं ।**

**टीका :** अब पुण्य-पाप पदार्थ का व्याख्यान है ।

यह, पुण्य-पाप के योग्य भाव के स्वभाव का कथन है।

यहाँ, दर्शन-मोहनीय के विपाक से जो कलुषित परिणाम वह मोह है, विचित्र (अनेक-प्रकार के) चारित्र-मोहनीय का विपाक जिसका आश्रय है ऐसी प्रीति-अप्रीति वह राग-द्वेष है, उसी के (चारित्र मोहनीय के ही) मंद उदय से होनेवाले जो विशुद्ध परिणाम वह चित्त-प्रसाद-परिणाम है । इस प्रकार यह जिसके भाव में है, उसे अवश्य शुभ अथवा अशुभ परिणाम है । उसमें, जहाँ प्रशस्त राग तथा चित्त-प्रसाद है वहाँ शुभ परिणाम है और जहाँ मोह, द्वेष तथा अप्रशस्त राग है वहाँ अशुभ परिणाम है ।।129।।

**जीव के परिणाम**

| शुभ | अशुभ |
|---|---|
| ↓ | ↓ |
| (1) प्रशस्त राग | (1) मोह |
| (2) चित्त प्रसाद | (2) द्वेष |
| | (3) अप्रशस्त राग |

| लक्ष्य | लक्षण |
|---|---|
| **मोह** | दर्शन मोहनीय के विपाक से उत्पन्न जीव का कलुष परिणाम |
| **राग** | चारित्र मोहनीय के विपाक से उत्पन्न जीव का प्रीति परिणाम |
| **द्वेष** | चारित्र मोहनीय के विपाक से उत्पन्न जीव का अप्रीति परिणाम |
| **चित्त प्रसाद** | चारित्र मोहनीय के मंद उदय से उत्पन्न जीव का विशुद्ध परिणाम |

| कर्ता | अज्ञानी जीव | ज्ञानी जीव |
|---|---|---|
| **(मुख्य)** | आस्रव, बंध, पाप पदार्थ का | संवर, निर्जरा, मोक्ष का |
| **(गौण)** | पापानुबंधी पुण्य का | पुण्यानुबंधी विशिष्ट पुण्य का |

**ज्ञानी का पुण्य पदार्थ कार्य कैसा/किस रूप है?**

- पंच परमेष्ठी की निर्भर असाधारण भक्ति-रूप
- संसार विनाश के कारणभूत
- परंपरा से मुक्ति का कारणभूत
- निःकांक्षित भाव-रूप
- निदान-रहित परिणाम-रूप

सुहपरिणामो पुण्णं असुहो पावं ति हवदि जीवस्स ।
दोण्हं पोग्गलमेत्तो भावो कम्मत्तणं पत्तो ॥१३०॥

गाथार्थ: जीव के शुभ परिणाम पुण्य और अशुभ परिणाम पाप हैं । उन दोनों के द्वारा पुद्गलमात्र भाव, कर्मत्व को प्राप्त होते हैं।

**टीका :** यह, पुण्य-पाप के स्वरूप का कथन है ।

जीवरूप कर्ता के निश्चय-कर्मभूत शुभ परिणाम द्रव्य-पुण्य को निमित्तमात्ररूप से कारणभूत हैं इसलिये 'द्रव्य-पुण्यास्रव' के प्रसंग का अनुसरण करके वे शुभ-परिणाम 'भाव-पुण्य' हैं। इस प्रकार जीवरूप कर्ता के निश्चय-कर्मभूत अशुभ परिणाम द्रव्य-पाप को निमित्त-मात्ररूप से कारणभूत हैं इसलिये 'द्रव्य-पापास्रव' के प्रसंग का अनुसरण करके वे अशुभ परिणाम 'भाव-पाप' हैं । पुद्गलरूप कर्ता के निश्चय-कर्मभूत विशिष्ट-प्रकृतिरूप परिणाम कि जिनमें जीव के शुभ-परिणाम निमित्त हैं, वे द्रव्यपुण्य हैं । पुद्गलरूप कर्ता के निश्चय-कर्मभूत विशिष्ट प्रकृतिरूप परिणाम कि जिनमें जीव के अशुभ परिणाम निमित्त हैं वे द्रव्य-पाप हैं। इस प्रकार व्यवहार तथा निश्चय द्वारा आत्मा को मूर्त तथा अमूर्त कर्म दर्शाया गया ।।130।।

- जीव के शुभ परिणाम **भाव-पुण्य** हैं , क्योंकि वे द्रव्य-पुण्यास्रव को निमित्तमात्र-रूप से कारणभूत हैं।
- जीव के अशुभ परिणाम **भाव-पाप** हैं क्योंकि वे द्रव्य-पापास्रव को निमित्तमात्र-रूप से कारणभूत हैं।
- पुद्गल के साता वेदनीय आदि विशिष्ट प्रकृतिरूप परिणाम **द्रव्य-पुण्य** हैं, जिनमें जीव के शुभ परिणाम निमित्त हैं ।
- पुद्गल के असाता वेदनीय आदि विशिष्ट प्रकृतिरूप परिणाम **द्रव्य-पाप** हैं, जिनमें जीव के अशुभ परिणाम निमित्त हैं।
- निश्चय नय → जीव के अमूर्त कर्म (परिणाम) → शुभ-अशुभ परिणाम
- व्यवहार नय → जीव के मूर्त कर्म → पुण्य-पाप कर्म

| कर्ता | निश्चय कर्म |
|---|---|
| जीव | शुभ-अशुभ परिणाम |
| पुद्गल | विशिष्ट प्रकृतिरूप परिणाम |

जम्हा कम्मस्स फलं विसयं फासेहिं भुंजदे णियदं ।
जीवेण सुहं दुक्खं तम्हा कम्माणि मुत्ताणि ॥१३१॥

**गाथार्थ: क्योंकि कर्म का फल जो विषय हैं वे नियम से स्पर्शनादि इन्द्रियों द्वारा सुख-दु:ख-रूप में जीव भोगता है, इसलिए कर्म मूर्त हैं ।**

**टीका :** यह, मूर्त कर्म का समर्थन है ।

कर्म का फल जो सुख-दुःख के हेतुभूत मूर्त विषय वे नियम से मूर्त इन्द्रियों द्वारा जीव से भोगे जाते हैं, इसलिये कर्म के मूर्तपने का अनुमान हो सकता है । वह इस प्रकार – जिस प्रकार मूषक-विष मूर्त है उसी प्रकार कर्म मूर्त है, क्योंकि मूर्त के सम्बन्ध द्वारा अनुभव में आने वाला ऐसा मूर्त उसका फल है ।।131।।

**सिद्धान्त** → कर्म मूर्त हैं , क्योंकि कर्म का फल मूर्त है।
कर्म का फल मूर्त है, क्योंकि वे स्पर्शादि मूर्तिक इंद्रियों के संबंध से अनुभव में आते हैं। जैसे मूषक विष।

**अन्वय दृष्टांत** → मूषक विष मूर्त है, क्योंकि उसका फल मूर्त है।
उसका फल मूर्त है, क्योंकि मूर्त शरीर के संबंध से उसका अनुभव होता है।

**कर्म का फल** → सुख-दुःख के हेतुभूत मूर्त विषय **(असद्भूत व्यवहार नय)**

मुत्तो फासदि मुत्तं मुत्तो मुत्तेण बन्धमणुहवदि ।
जीवो मुत्तिविरहिदो गाहदि ते तेहिं उग्गहदि ॥१३२॥

**गाथार्थ: मूर्त, मूर्त को स्पर्श करता है; मूर्त, मूर्त के साथ बंध का अनुभव करता है (बँधता है); मूर्ति-विरहित जीव उन्हें अवगाहन देता है और उनके द्वारा अवगाहित होता है ।**

**टीका :** यह, मूर्तकर्म का मूर्तकर्म के साथ जो बन्ध प्रकार तथा अमूर्त जीव का मूर्तकर्म के साथ जो बन्ध प्रकार उसकी सूचना है ।

यहाँ संसारी जीव में अनादि संतति से प्रवर्तता हुआ मूर्तकर्म विद्यमान है । वह, स्पर्शादिवाला होने के कारण, आगामी मूर्तकर्म को स्पर्श करता है; इसलिये मूर्त ऐसा वह उसके साथ, स्निग्धत्व-गुण के वश बन्ध को प्राप्त होता है । यह, मूर्तकर्म का मूर्तकर्म के साथ बन्ध प्रकार है ।

पुनश्च निश्चय नय से जो अमूर्त है ऐसा जीव, अनादि मूर्तकर्म जिसका निमित्त है ऐसे रागादि-परिणाम द्वारा स्निग्ध वर्तता हुआ, मूर्तकर्मो को विशिष्टरूप से अवगाहता है और उस रागादि-परिणाम के निमित्त से जो अपने (ज्ञानावरणादि) परिणाम को प्राप्त होते हैं ऐसे मूर्तकर्म भी जीव को विशिष्टरूप से अवगाहते हैं । यह, जीव और मूर्तकर्म का अन्योन्य-अवगाहस्वरूप बन्ध प्रकार है । इस प्रकार अमूर्त ऐसे जीव का भी मूर्त पुण्य-पाप कर्म के साथ कथंचित् बन्ध विरोध को प्राप्त नहीं होता।

इस प्रकार पुण्य-पाप पदार्थ का व्याख्यान समाप्त हुआ ।।132।।

**बंध के प्रकार**

- मूर्त कर्म का मूर्त कर्म के साथ
- अमूर्त जीव और मूर्त कर्म का अन्योन्य-अवगाह स्वरूप बंध

**अन्योन्य - अवगाह स्वरूप बन्ध -**

(1) अमूर्त जीव रागादि परिणामों से स्निग्ध वर्तता हुआ मूर्तकर्मों को विशिष्ट रूप से अवगाहता है।

(2) मूर्त कर्म भी जीव को विशिष्ट रूप से अवगाहते हैं।

**अन्यत्र (प्रवचनसार 177) कथित 3 प्रकार का बन्ध -**

1. पुद्गल बन्ध - पुद्गल का पुद्गल के साथ
2. जीव बन्ध - जीव का रागादि भावों के साथ
3. उभय बन्ध - जीव और पुद्गल का विशिष्टतर अन्योन्य-अवगाह स्वरूप

## आस्रव पदार्थ

**रागो जस्स पसत्थो अणुकंपासंसिदो य परिणामो ।**

**चित्तम्हि णत्थि कलुसं पुण्णं जीवस्स आसवदि ॥१३३॥**

**गाथार्थ: जिस जीव के प्रशस्त राग है, अनुकम्पा से युक्त परिणाम है, चित्त में कलुषता नहीं है, उसे पुण्य का आस्रव होता है ।**

**टीका :** अब आस्रव पदार्थ का व्याख्यान है । यह, पुण्यास्रव के स्वरूप का कथन है ।

प्रशस्त राग, अनुकम्पा-परिणति और चित्त की अकलुषता– यह तीन शुभ भाव द्रव्य-पुण्यास्रव को निमित्तमात्ररूप से कारणभूत हैं, इसलिये 'द्रव्य-पुण्यास्रव' के प्रसंग का अनुसरण करके वे शुभ-भाव भाव-पुण्यास्रव हैं और वे (शुभ-भाव) जिसका निमित्त हैं ऐसे जो योग-द्वार से प्रविष्ट होने वाले पुद्गलों के शुभ-कर्म-परिणाम, वे द्रव्य-पुण्यास्रव हैं ।।133।।

| भाव पुण्यास्रव | द्रव्य पुण्यास्रव |
|---|---|
| शुभ-भाव द्रव्य पुण्यास्रव को निमित्तमात्र रूप से कारणभूत हैं, अतः शुभ-भाव भावपुण्यास्रव हैं। | योगद्वार से प्रविष्ट होने वाले पुद्गलों के शुभ-कर्म परिणाम द्रव्य पुण्यास्रव हैं। |

**शुभ-भाव के प्रकार**

प्रशस्त राग | अनुकम्पा का परिणाम | चित्त की अकलुषता

**अरहंतसिद्धसाहुसु भत्ती धम्मम्मि जा य खलु चेट्ठा ।**
**अणुगमणं पि गुरूणं पसत्थरागो त्ति वुच्चंति ॥१३४॥**

**गाथार्थ: अरहन्त, सिद्ध, साधुओं के प्रति भक्ति, धर्म में यथार्थतया चेष्टा और गुरुओं का भी अनुगमन प्रशस्त राग है - ऐसा (सर्वज्ञ भगवान्) कहते हैं ।**

**टीका** :यह, प्रशस्त राग के स्वरूप का कथन है ।

अर्हन्त-सिद्ध-साधुओं के प्रति भक्ति; धर्म में, व्यवहार-चारित्र के अनुष्ठान में भावना-प्रधान चेष्टा और गुरुओं का आचार्यादि का रसिकरूप से अनुगमन, वह 'प्रशस्त राग' है क्योंकि उसका विषय प्रशस्त है ।

यह (प्रशस्त राग) वास्तव में, जो स्थूल-लक्ष्य वाला होने से केवल भक्तिप्रधान है– ऐसे अज्ञानी को होता है; उच्च भूमिका में स्थिति प्राप्त न की हो तब, अस्थान का राग रोकने के हेतु अथवा तीव्र राग-ज्वर हटाने के हेतु कदाचित् ज्ञानी को भी होता है ।।134।।

| लक्ष्य | लक्षण |
|---|---|
| अरिहंत | क्षुधादि 18 दोषों से रहित<br>केवलज्ञान आदि अनन्त चतुष्टय से सहित |
| सिद्ध | सम्यक्त्व आदि 8 गुणमय; लोकाग्र-निवासी |
| आचार्य | निश्चय-व्यवहार पंचाचारों का जो स्वयं आचरण करते हैं, दूसरों से कराते हैं। |
| उपाध्याय | भेदाभेद रत्नत्रय-लक्षण मोक्षमार्ग का प्रतिपादन करते हैं, स्वयं भावना करते हैं। |
| साधु | चार निश्चय आराधना से शुद्धात्स्वरूप को साधते हैं। |

**प्रशस्त राग**

(1) अर्हंत, सिद्ध, साधु में बाह्य-अभ्यंतर भक्ति
(2) व्यवहार चारित्र के अनुष्ठान में भावना प्रधान चेष्टा
(3) आचार्यादि गुरुओं का रसिकरूप से अनुगमन।

**यह राग प्रशस्त है, क्योंकि इसका विषय प्रशस्त है।**

तिसिदं बुभुक्खिदं वा दुहिदं दट्ठूण जो दु दुहिदमणो ।
पडिवज्जदि तं किवया तस्सेसा होदि अणुकंपा ॥१३५॥

**गाथार्थ: तृषातुर, क्षुधातुर या दुःखी को देखकर जो दुखित मनवाला उनके प्रति कृपापूर्वक प्रवर्तन करता है, उसके यह अनुकम्पा है ।**

**टीका** : यह, अनुकम्पा के स्वरूप का कथन है ।

किसी तृषादि दुःख से पीड़ित प्राणी को देखकर करुणा के कारण उसका प्रतिकार (उपाय) करने की इच्छा से चित्त में आकुलता होना वह अज्ञानी की अनुकम्पा है । ज्ञानी की अनुकम्पा तो, निचली भूमिका में विहरते हुए जन्मार्णव में निमग्न जगत के अवलोकन से मन में किंचित् खेद होना, वह है ।।135।।

भूख-प्यास आदि से व्याकुल अथवा दुःखी जीव को देखकर
जो जीव मन में दुःख पाता हुआ
उसके प्रति करुणा से वर्तता है

कोधो व जदा माणो माया लोहो व चित्तमासेज्ज ।
जीवस्स कुणदि खोहं कलुसो त्ति य तं बुधा वेंति ।।१३६।।

**गाथार्थ: जब चित्त का आश्रय पाकर क्रोध, मान, माया, लोभ जीव को क्षुब्ध करते हैं, तब उसे ज्ञानी कलुषता कहते हैं।**

**टीका** : यह, चित्त की कलुषता के स्वरूप का कथन है ।

क्रोध, मान, माया और लोभ के तीव्र उदय से चित्त का क्षोभ सो कलुषता है।

उन्हीं के (क्रोधादि के ही) मंद उदय से चित्त की प्रसन्नता सो अकलुषता है । वह अकलुषता, कदाचित् कषाय का विशिष्ट क्षयोपशम होने पर, अज्ञानी को होती है, कषाय के उदय का अनुसरण करने वाली परिणति में से उपयोग को असमग्ररूप से विमुख किया हो तब मध्यम भूमिकाओं में), कदाचित् ज्ञानी को भी होती है ।।136।।

क्रोध, मान, माया और लोभ के उदय से चित्त का क्षोभ **कलुषता** है।
इन्हीं के मन्द उदय से चित्त की प्रसन्नता **अकलुषता** है।

## अज्ञानी - ज्ञानी को शुभास्रव किस प्रकार होता है?

| शुभ राग | अज्ञानी को | ज्ञानी को |
|---|---|---|
| **प्रशस्त राग** | -स्थूल लक्ष्यवाला होने से मात्र भक्ति प्रधान<br>-भोगाकांक्षा रूप निदान बन्धपूर्वक | अस्थान का राग रोकने के हेतु से या तीव्र रागज्वर मिटाने के लिए<br>(उच्च भूमिका में स्थिति प्राप्त न की हो तब) |
| **अनुकम्पा** | पीड़ित प्राणी को देखकर 'किसी भी उपाय से प्रतिकार करूँ' ऐसे व्याकुल होकर | 1. (स्वयं निचली भूमिका में रहते हुए) जन्मार्णव में निमग्न जगत के अवलोकन से मन में किंचित् खेद-रूप<br>2. (दुःखी जीव को देखकर) संक्लेश के त्यागपूर्वक यथासंभव प्रतिकार करके विशेष संवेग-वैराग्य की भावना करके |
| **चित्त की अकलुषता** | कदाचित् कषाय का विशिष्ट क्षयोपशम (अनंतानुबंधी का मन्द उदय) होने पर | (कषाय के उदय का अनुसरण करने वाली परिणति में से उपयोग को पूर्ण विमुख नहीं किया हो तब)<br>कदाचित् दुर्ध्यान को नष्ट करने के लिए |

चरिया पमादबहुला कालुस्सं लोलदा य विसयेसु ।

परपरितावपवादो पावस्स य आसवं कुणदि ॥१३७॥

**गाथार्थ: प्रमाद की बहुलतायुक्त चर्या, कलुषता और विषयों में लोलुपता तथा पर को परिताप देना और पर का अपवाद करना पाप का आस्रव करता है ।**

**टीका :** यह, पापास्रव के स्वरूप का कथन है ।

बहु प्रमादवाली चर्या परिणति, कलुषतारूप परिणति, विषय-लोलुपतारूप परिणति, पर-परितापरूप परिणति (पर को दुःख देने रूप परिणति) और पर के अपवादरूप परिणति – ये पाँच अशुभ भाव द्रव्य-पापास्रव को निमित्तमात्ररूप से कारणभूत हैं इसलिये 'द्रव्य-पापास्रव' के प्रसंग का अनुसरण करके वे अशुभ-भाव भाव-पापास्रव हैं और वे (अशुभ भाव) जिनका निमित्त हैं ऐसे जो योग-द्वारा प्रविष्ट होने वाले पुद्गलों के अशुभ-कर्म-परिणाम वे द्रव्य-पापास्रव हैं ।।137।।

| भाव पापास्रव | द्रव्य पापास्रव |
|---|---|
| अशुभ-भाव द्रव्य पापास्रव को निमित्त-मात्र रूप से कारणभूत हैं, अतः अशुभ-भाव भाव-पापास्रव हैं। | योगद्वार से प्रविष्ट होने वाले पुद्गलों के अशुभकर्म परिणाम द्रव्य पापास्रव हैं। |

| अशुभ भाव |
|---|
| (1) बहु-प्रमाद वाली चर्या |
| (2) कलुषता |
| (3) विषय लोलुपता |
| (4) पर-परिताप (अन्य को दुःख देने रूप) |
| (5) पर का अपवाद |

सण्णाओ य तिलेस्सा इंदियवसदा य अत्तरुद्दाणि ।
णाणं च दुप्पउत्तं मोहो पावप्पदा होंति ॥१३८॥

**गाथार्थ: (चार) संज्ञायें, तीन लेश्यायें, इन्द्रियों की अधीनता, आर्त और रौद्र ध्यान, दुष्प्रयुक्त ज्ञान और मोह - ये पापप्रद हैं ।**

**टीका :** यह, पापास्रवभूत भावों के विस्तार का कथन है ।

तीव्र मोह के विपाक से उत्पन्न होने वाली आहार-भय-मैथुन-परिग्रह संज्ञाएँ; तीव्र कषाय के उदय से अनुरंजित योग-प्रवृत्तिरूप कृष्ण-नील-कापोत नाम की तीन लेश्याएँ; राग-द्वेष के उदय के प्रकर्ष के कारण वर्तता हुआ इन्द्रियाधीनपना; राग-द्वेष के उद्रेक के कारण प्रिय के संयोग की, अप्रिय के वियोग की, वेदना से छुटकारे की तथा निदान की इच्छारूप आर्तध्यान; कषाय द्वारा क्रूर ऐसे परिणाम के कारण होने वाला हिंसानंद, असत्यानन्द, स्तेयानन्द एवं विषय-संरक्षणानन्दरूप रौद्रध्यान; निष्प्रयोजन शुभ कर्म से अन्यत्र (अशुभ कार्य में ) दुष्टरूप से लगा हुआ ज्ञान; और सामान्यरूप से दर्शन-चारित्र मोहनीय के उदय से उत्पन्न अविवेकरूप मोह; यह भाव-पापास्रव का विस्तार द्रव्य-पापास्रव के विस्तार को प्रदान करने वाला है।

इस प्रकार आस्रव पदार्थ का व्याख्यान समाप्त हुआ ।।138।।

| पापास्रवभूत भाव | |
|---|---|
| (1) तीव्र मोह के विपाक से उत्पन्न होने वाली आहार-भय-मैथुन-परिग्रह | संज्ञा |
| (2) तीव्र कषाय के उदय से अनुरंजित योग प्रवृत्ति-रूप कृष्ण-नील-कापोत | लेश्या |
| (3) राग-द्वेष के उदय के प्रकर्ष के कारण वर्तता हुआ | इंद्रियाधीनपना |
| (4) राग-द्वेष के उद्रेक के कारण - प्रिय के संयोग की - अप्रिय के वियोग की - वेदना से छुटकारे की - निदान की **इच्छा-रूप** | आर्तध्यान |
| (5) कषाय द्वारा क्रूर परिणाम के द्वारा होने वाला - हिंसानन्द, मृषानन्द, स्तेयानन्द, विषय-संरक्षण रूप | रौद्रध्यान |
| (6) निष्प्रयोजन एवं शुभकर्म से अन्यत्र दुष्ट-रूप से लगा हुआ | ज्ञान |
| (7) दर्शन-चारित्र मोह के उदय से उत्पन्न अविवेक-रूप | मोह |

## संवर पदार्थ

इंदियकसायसण्णा णिग्गहिदा जेहिं सुट्ठुमग्गम्मि ।
जावत्तावत्तेहिं पिहियं पावासवच्छिद्दं ॥१३९॥

**गाथार्थ: सम्यक्तया मार्ग में रहकर जिसके द्वारा जितना इन्द्रिय, कषाय और संज्ञाओं का निग्रह किया जाता है, उसके उतना पापास्रवों का छिद्र बन्द होता है ।**

**टीका** : अब संवर पदार्थ का व्याख्यान है ।

पाप के अनंतर होने से, पाप के ही संवर का यह कथन है ।

मार्ग वास्तव में संवर है; उसके निमित्त से इन्द्रियों, कषायों तथा संज्ञाओं का

जितने अंश में अथवा जितने काल निग्रह किया जाता है, उतने अंश में अथवा उतने काल पापास्रव द्वार बंद होता है ।

इन्द्रियों, कषायों और संज्ञाओंरूप भाव-पापास्रव को द्रव्य-पापास्रव का हेतु पहले कहा था । यहाँ उनका निरोध (इन्द्रियों, कषायों और संज्ञाओं का निरोध) भाव-पाप-संवर है, जो कि द्रव्य-पाप-संवर का हेतु अवधारना (समझना) ।।139।।

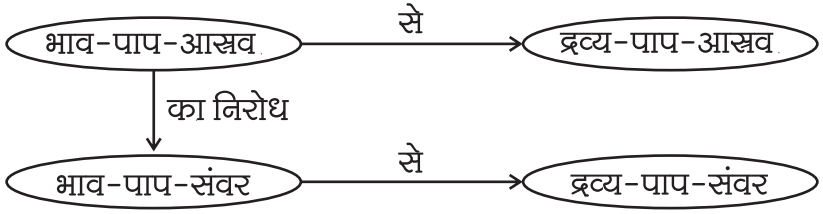


**तथ्य -**

- भलीभांति मार्ग में रहकर
- इंद्रिय, कषाय, संज्ञा आदि पापास्रव परिणामों का
- जितने अंश में / जितने काल तक
- निग्रह किया जाता है,
- उतने अंश में / उतने काल तक
- पापास्रव द्वार बन्द होता है।

**जस्स ण विज्जदि रागो दोसो मोहो व सव्वदव्वेसु ।**
**णासवदि सुहं असुहं समसुहदुक्खस्स भिक्खुस्स ॥१४०॥**

**गाथार्थ: सुख-दुःख में समभावी जिन भिक्षु / मुनि के सभी द्रव्यों में राग, द्वेष, मोह नहीं है ; उन्हें शुभ-अशुभ का आस्रव नहीं होता है ।**

**टीका** : यह, सामान्यरूप से संवर के स्वरूप का कथन है ।

जिसे समग्र पर-द्रव्यों के प्रति रागरूप, द्वेषरूप या मोहरूप भाव नहीं है, उस भिक्षु को- जो कि निर्विकार चैतन्यपने के कारण सम-सुख-दुःख है उसे, शुभ और अशुभ कर्म का आस्रव नहीं होता, परन्तु संवर ही होता है । इसलिये यहाँ मोह-राग-द्वेष परिणाम का निरोध सो भाव-संवर है, और उस भाव-संवर के निमित्त से योग-द्वार से प्रविष्ट होने वाले पुद्गलों के शुभाशुभ-कर्म-परिणाम का निरोध सो द्रव्य-संवर है ।।140।।

| भाव संवर | द्रव्य संवर |
|---|---|
| मोह-राग-द्वेष रूप भावों का अभाव | शुभ-अशुभ कर्म का आस्रव नहीं होना |
| **इस संवर के स्वामी - मोहरहित मुनिराज (11, 12, 13 गुणस्थानवर्ती)** | |

**जस्स जदा खलु पुण्णं जोगे पावं च णत्थि विरदस्स ।**

**संवरणं तस्स तदा सुहासुहकदस्स कम्मस्स ॥१४१॥**

**गाथार्थ: वास्तव में जब जिस विरत के योग में पुण्य-पाप नहीं हैं, तब उनके शुभाशुभकृत कर्म का संवर होता है ।**

**टीका** : यह, विशेषरूप से संवर के स्वरूप का कथन है ।

जिस योगी को, विरत अर्थात् सर्वथा निवृत्त वर्तते हुए, योग में– वचन, मन और काय सम्बन्धी क्रिया में, शुभ परिणामरूप पुण्य और अशुभ परिणामरूप पाप जब नहीं होते, तब उसे शुभाशुभ-भावकृत द्रव्य-कर्म का स्व-कारण के अभाव के कारण संवर होता है ।

इसलिये यहाँ शुभाशुभ परिणाम का निरोध भाव-पुण्य-पाप-संवर, द्रव्य-पुण्य-पाप-संवर का प्रधान हेतु अवधारना (समझना)।

इस प्रकार संवर पदार्थ का व्याख्यान समाप्त हुआ ।।141।।

**संपूर्ण संवर**

जिस योगी को
विरत वर्तते हुए
योग में (वचन, मन, काय संबंधी क्रिया में)
पुण्य और पाप नहीं होते,
तब शुभाशुभ भावकृत कर्म का
संवर होता है।

| संवर का व्याख्यान | |
|---|---|
| 1. चतुर्थ गुणस्थान से 10वें गुणस्थान तक होने वाले क्रमशः संवर का कथन | गाथा 139 |
| 2. 11-13 गुणस्थानवर्ती पूर्ण वीतरागी मुनि का संवर | गाथा 140 |
| 3. 14वें गुणस्थान में योग के अभाव में पूर्ण संवर | गाथा 141 |

## निर्जरा पदार्थ

**संवरजोगेहिं जुदो तवेहिं जो चिट्ठदे बहुविहेहिं ।**
**कम्माणं णिज्जरणं बहुगाणं कुणदि सो णियदं ॥१४२॥**

**गाथार्थ: संवर और योग से युक्त जो जीव अनेक प्रकार के तपों में प्रवृत्ति करता है, वह नियम से अनेक कर्मों की निर्जरा करता है ।**

**टीका :** अब निर्जरा पदार्थ का व्याख्यान है ।

यह, निर्जरा के स्वरूप का कथन है ।

संवर अर्थात् शुभाशुभ परिणाम का निरोध, और योग अर्थात् शुद्धोपयोग; उनसे (संवर और योग से) युक्त ऐसा जो (पुरुष) अनशन, अवमौदर्य, वृत्ति-परिसंख्यान, रस-परित्याग, विविक्त-शय्यासन तथा कायक्लेशादि भेदोंवाले बहिरंग तपों सहित और

प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान ऐसे भेदोंवाले अंतरंग तपों सहित–इस प्रकार बहुविध तपों सहित प्रवर्तता है, वह (पुरुष) वास्तव में बहुत कर्मों की निर्जरा करता है। इसलिये यहाँ कर्म के वीर्य का शातन (क्षीण) करने में समर्थ ऐसा जो बहिरंग और अंतरंग तपों द्वारा वृद्धि को प्राप्त शुद्धोपयोग सो भाव–निर्जरा है और उसके प्रभाव से नीरस हुए ऐसे उपार्जित कर्म–पुद्गलों का एकदेश संक्षय सो द्रव्य–निर्जरा है ।।142।।

संवर + योग
(शुभाशुभ भावों का निरोध) (शुद्धोपयोग)
से युक्त जो पुरुष
बहुविध तपों सहित वर्तता है,
वह अनेक कर्मों की निर्जरा करता है।

| भाव निर्जरा | द्रव्य निर्जरा |
|---|---|
| शुद्धोपयोग | कर्म पुद्गलों का एकदेश संक्षय |

**शुद्धोपयोग कैसा है?**

- (1) कर्म के वीर्य को क्षीण करने में समर्थ
- (2) बहिरंग-अंतरंग तपों से वृद्धि को प्राप्त
- (3) जिसके प्रभाव से उपार्जित कर्म-पुद्गल नीरस होते हैं।

**जो संवरेण जुत्तो अप्पट्ठपसाधगो हि अप्पाणं ।**
**मुणिउण झादि णियदं णाणं सो संधुणोदि कम्मरयं ॥१४३॥**

**गाथार्थ: आत्मार्थ का प्रसाधक, संवर से युक्त जो (जीव) वास्तव में आत्मा को जानकर ज्ञान को निश्चलरूप से ध्याता है, वह कर्मरज की निर्जरा करता है ।**

टीका : यह निर्जरा के मुख्य कारण का कथन है ।

संवर से अर्थात् शुभाशुभ परिणाम के परम निरोध से युक्त ऐसा जो जीव, वस्तुस्वरूप को बराबर जानता हुआ पर-प्रयोजन से जिसकी बुद्धि व्यावृत्त हुई है और केवल स्व-प्रयोजन साधने में जिसका मन उद्यत हुआ है, ऐसा वर्तता हुआ, आत्मा को स्वोपलब्धि से उपलब्ध करके गुण-गुणी का वस्तुरूप से अभेद होने के कारण उसी ज्ञान को, स्व को स्व द्वारा अविचल परिणतिवाला होकर संचेतता है, वह जीव वास्तव में अत्यंत निःस्नेह वर्तता हुआ, जिसको स्नेह के लेप का संग प्रक्षीण हुआ है ऐसे शुद्ध स्फटिक के स्तंभ की भाँति, पूर्वोपार्जित कर्म-रज को खिरा देता है ।

इससे ऐसा दर्शाया कि निर्जरा का मुख्य हेतु ध्यान है ।।143।।

**आत्मार्थ का प्रसाधक कौन?**

- (1) वस्तु-स्वरूप को बराबर जानता हुआ
- (2) पर-प्रयोजन से व्यावृत्त बुद्धि वाला
- (3) मात्र स्व-प्रयोजन साधने में उद्यत मन वाला

संवर से सहित जीव

आत्मार्थ का प्रसाधक वर्तता हुआ आत्मा को जानकर (उपलब्ध कर / अनुभव कर)

ज्ञान को निश्चल रूप से ध्याता है, (संचेतता है)

वह कर्मरज को खिरा देता है।

**अतः निर्जरा का मुख्य हेतु ध्यान है।**

| विषय | साधन | फल |
|---|---|---|
| जो ज्ञान को (आत्मा को) | ध्याता है, | वहकर्मरज को खिराता है (असद्भूत व्यवहार) |
| णाणं | झादि | कम्मरयं संधुणोदि |

जस्स ण विज्जदि रागो दोसो मोहो व जोगपरिकम्मो ।
तस्स सुहासुहडहणो झाणमओ जायदे अगणी ॥१४४॥

**गाथार्थ: जिसके राग, द्वेष, मोह तथा योग परिणमन नहीं है, उसके शुभाशुभ को जलाने वाली ध्यानमय अग्नि उत्पन्न होती है ।**

**टीका :** यह, ध्यान के स्वरूप का कथन है ।

शुद्ध स्वरूप में अविचलित चैतन्य-परिणति सो वास्तव में ध्यान है । वह ध्यान प्रगट होने की विधि अब कही जाती है- जब वास्तव में योगी, दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय का विपाक पुद्गल-कर्म होने से उस विपाक को कर्मों में समेटकर, तदनुसार परिणति से उपयोग को व्यावृत्त करके मोही, रागी और द्वेषी न होनेवाले ऐसे उस उपयोग को अत्यंत शुद्ध आत्मा में ही निष्कम्परूप से लीन करता है, तब उस योगी को, जो कि अपने निष्क्रिय चैतन्यरूप स्वरूप में विश्रान्त है, वचन-मन-काया को नहीं भाता और स्वकर्मों में व्यापार नहीं करता उसे सकल शुभाशुभ कर्मरूप ईंधन को जलाने में समर्थ होने से अग्नि समान ऐसा, परम-पुरुषार्थ-सिद्धि के उपायभूत ध्यान प्रगट होता है ।

फिर कहा है कि-

"अज्ज वि तिरयणसुद्धा अप्पा झाएवि लहइ इन्दत्तं ।
लोयंतियदेवत्तं तत्थ चुआ णिव्वुदिं जंति ।।"
"अंतो णत्थि सुईणं कालो थोओ वयं च दुम्मेहा ।
तण्णवरि सिक्खियव्वं जं जरमरणं खयं कुणइ ।।"

अर्थ : इस काल भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप तीन रत्नों से शुद्ध ऐसे मुनि, आत्मा का ध्यान करके इन्द्रपना तथा लौकान्तिक देवपना प्राप्त करते हैं और वहाँ से चयकर, मनुष्यभव प्राप्त करके, निर्वाण को प्राप्त करते हैं ।

श्रुतियों का अन्त नहीं है, काल अल्प है और हम दुर्मेध मंदबुद्धि हैं; इसलिये वही केवल सीखने योग्य है कि जो जरा-मरण का क्षय करे।

इस प्रकार निर्जरा पदार्थ का व्याख्यान समाप्त हुआ ।।144।।

**ध्यान प्रगट होने की विधि**

जब योगी दर्शन - चारित्र मोहनीय का विपाक कर्मों में समेटकर
राग-द्वेष-मोह परिणति से उपयोग को व्यावृत्त करके
उपयोग को अत्यंत शुद्ध आत्मा में ही लीन करता है
तब उस योगी को
परम-पुरुषार्थसिद्धि का उपायभूत ध्यान प्रगट होता है।

**कैसा है ध्यान ?**

- शुद्ध स्वरूप में अविचलित चैतन्य परिणति
- सकल शुभाशुभ कर्मरूप ईंधन को जलाने में समर्थ अग्नि समान

## बंध पदार्थ

**जं सुहमसुहमुदिण्णं भावं रत्तो करेदि जदि अप्पा ।**

**सो तेण हवदि बद्धो पोग्गलकम्मेण विविहेण ॥१४५॥**

**गाथार्थ: यदि रागी आत्मा उन शुभ-अशुभ से प्रगट होने वाला भाव करता है तो वह उसके द्वारा अनेक प्रकार के पुद्गल कर्म से बँधता है ।**

**टीका :** अब बन्ध पदार्थ का व्याख्यान है ।

यह, बन्ध के स्वरूप का कथन है ।

यदि वास्तव में यह आत्मा अन्य के आश्रय द्वारा अनादिकाल से रक्त रहकर कर्मोदय के प्रभावयुक्तरूप वर्तने से उदित (प्रगट होने वाले) शुभ या अशुभ भाव को करता है, तो वह आत्मा उस निमित्तभूत भाव द्वारा विविध पुद्गल-कर्मों से बद्ध होता है । इसलिये यहाँ (ऐसा कहा है कि), मोह-राग-द्वेष द्वारा स्निग्ध ऐसे जो जीव के शुभ या अशुभ परिणाम वह भाव-बन्ध है और उसके (शुभाशुभ परिणाम के) निमित्त से शुभाशुभ कर्मरूप परिणत पुद्गलों का जीव के साथ अन्योन्य अवगाहन वह द्रव्य-बन्ध है ।।145।।

| भाव बंध | द्रव्य बंध |
|---|---|
| मोह-राग-द्वेष द्वारा स्निग्ध जीव के शुभ और अशुभ परिणाम | भावबन्ध के निमित्त से शुभाशुभ कर्मरूप परिणत पुद्गलों का जीव के साथ अन्योन्य अवगाहन |

**जोगणिमित्तं गहणं जोगो मणवयणकायसंभूदो ।**
**भावणिमित्तो बंधो भावो रदिरागदोसमोहजुदो ॥१४६॥**

**गाथार्थ: ग्रहण योग-निमित्तक है ; योग मन, वचन, काय से उत्पन्न होता है ; बंध भाव-निमित्तक है ; भाव रति, राग, द्वेष, मोह-युक्त है ।**

**टीका :** यह, बन्ध के बहिरंग कारण और अन्तरंग कारण का कथन है ।

ग्रहण अर्थात् कर्म-पुद्गलों का जीव-प्रदेशवर्ती कर्म-स्कंधों में प्रवेश; उसका निमित्त योग है । योग अर्थात् वचन-वर्गणा, मनो-वर्गणा, काय-वर्गणा और कर्म-वर्गणा का जिसमें आलम्बन होता है ऐसा आत्मप्रदेशों का परिस्पन्द (अर्थात् जीव के प्रदेशों का कम्पन) ।

बंध अर्थात् कर्म-पुद्गलों का विशिष्ट शक्तिरूप परिणाम सहित स्थित रहना, उसका निमित्त जीवभाव है । जीवभाव रति-राग-द्वेष-मोहयुक्त (परिणाम) है अर्थात् मोहनीय के विपाक से उत्पन्न होने वाला विकार है ।

इसलिए यहाँ (बंध में), बहिरंग कारण योग है क्योंकि वह पुद्गलों के ग्रहण का हेतु है और अन्तरंग कारण जीवभाव ही है क्योंकि वह (कर्म-पुद्गलों की) विशिष्ट शक्ति तथा स्थिति का हेतु है ।।146।।

| शब्द | इससे ग्राह्य भाव |
|---|---|
| रति | हास्य, रति, 3 वेद |
| राग | माया-लोभ रूप परिणाम |
| द्वेष | क्रोध, मान, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा |
| मोह | दर्शन मोह |

## बन्ध के कारण

| बहिरंग = ग्रहण | अन्तरंग = बन्ध |
|---|---|
| (कर्म-पुद्गलों का जीव प्रदेशवर्ती कर्म स्कन्धों में प्रवेश) | (कर्मपुद्गलों का विशिष्ट शक्तिरूप परिणाम सहित स्थित रहना) |
| ↓ | ↓ |
| ग्रहण का निमित्त | बंध का निमित्त |
| ↓ | ↓ |
| **योग** (आत्म प्रदेशों का परिस्पंदन जिसमें मन-वचन-काय-कर्म वर्गणा का आलंबन हो) | **जीव भाव** (मोहनीय के विपाक से होने वाला रति-राग-द्वेष-मोहरूप विकार) |

## योग

| | |
|---|---|
| योग का लक्षण | आत्म-प्रदेशों का परिस्पंदन |
| योग का निमित्त | मन, वचन, काय और कर्म वर्गणा का आलंबन |
| योग का फल | कर्म का ग्रहण |

**हेदू चदुव्वियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारणं भणिदं ।**

**तेसिं पि य रागादी तेसिमभावे ण बज्झंति ॥१४७॥**

**गाथार्थ: चार प्रकार के हेतु आठ प्रकार के (कर्मों के) कारण कहे गए हैं, उनके भी कारण रागादि हैं, उन (रागादि) के अभाव में (कर्म) नहीं बँधते हैं ।**

**टीका** : यह, मिथ्यात्वादि द्रव्य-पर्यायों को (द्रव्य-मिथ्यात्वादि पुद्गल-पर्यायों को) भी (बंध के) बहिरंग-कारणपने का प्रकाशन है ।

ग्रंथांतर में मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग इन चार प्रकार के द्रव्य-हेतुओं को (द्रव्य-प्रत्ययों को) आठ प्रकार के कर्मों के कारणरूप से बन्ध-हेतु कहा है। उन्हें भी बन्ध-हेतुपने के हेतु जीव-भावभूत रागादिक हैं, क्योंकि रागादि भावों का अभाव होने से

द्रव्य-मिथ्यात्व, द्रव्य-असंयम, द्रव्य-कषाय और द्रव्य-योग के सद्भाव में भी जीव बंधते नहीं हैं । इसलिये रागादि भावों को अंतरंग बन्ध-हेतुपना होने के कारण निश्चय से बन्ध-हेतुपना है, ऐसा निर्णय करना।

इस प्रकार बन्ध पदार्थ का व्याख्यान समाप्त हुआ ।।147।।

(1) मिथ्यात्व आदि 4 प्रकार के द्रव्य हेतु, 8 प्रकार के कर्मों के बंध के हेतु हैं।

(2) इसके हेतु होने का भी हेतु - जीवभूत रागादिक भाव क्योंकि रागादि भावों का अभाव होने पर द्रव्य मिथ्यात्वादी का सद्भाव होने पर भी बन्ध नहीं होता।

**निष्कर्ष :**

**व्यवहार नय -** पूर्व कर्म का उदय बन्ध का कारण है।

**निश्चय नय -** जीव के रागादि परिणाम बन्ध के कारण हैं।

## मोक्ष पदार्थ

**हेदुमभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोधो ।**
**आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स दु णिरोधो ॥१४८॥**
**कम्मस्साभावेण य सव्वण्हू सव्वलोगदरिसी य ।**
**पावदि इंदियरहिदं अव्वाबाहं सुहमणंतं ॥१४९॥ (जुम्मं)**

**गाथार्थ: हेतु के अभाव में ज्ञानी के नियम से आस्रव का निरोध होता है तथा आस्रवभाव के नहीं होने से कर्म का निरोध हो जाता है। कर्म का अभाव होने पर सर्वज्ञ और सर्वलोकदर्शी होते हुए इन्द्रियरहित, अव्याबाध, अनन्त सुख को प्राप्त करते हैं।**

**टीका :** अब मोक्ष पदार्थ का व्याख्यान है ।

यह, द्रव्य-कर्म-मोक्ष के हेतुभूत परम-संवररूप से भाव-मोक्ष के स्वरूप का कथन है । आस्रव का हेतु वास्तव में जीव का मोह-राग-द्वेषरूप भाव है । ज्ञानी को उसका अभाव होता है । उसका अभाव होने पर आस्रव-भाव का अभाव होता है ।

आस्रव-भाव का अभाव होने पर कर्म का अभाव होता है । कर्म का अभाव होने पर सर्वज्ञता, सर्वदर्शिता और अव्याबाध, इन्द्रिय-व्यापारातीत, अनन्त सुख होता है । सो यह जीवन्मुक्ति नाम का भावमोक्ष है । 'किस प्रकार?' ऐसा प्रश्न किया जाय तो निम्नानुसार प्रकार स्पष्टीकरण है:-

यहाँ जो 'भाव' विवक्षित है वह कर्मावृत चैतन्य की क्रमानुसार प्रवर्तती ज्ञप्ति-क्रियारूप है । वह वास्तव में संसारी को अनादिकाल से मोहनीय-कर्म के उदय का अनुसरण करती हुई परिणति के कारण अशुद्ध है, द्रव्य-कर्मास्रव का हेतु है । परन्तु वह ज्ञानी को मोह-राग-द्वेषवाली परिणतिरूप से हानि को प्राप्त होता है इसलिये उसे आस्रव-भाव का निरोध होता है। इसलिये जिसे आस्रव-भाव का निरोध हुआ है ऐसे उस ज्ञानी को मोह के क्षय द्वारा अत्यंत निर्विकारपना होने से, जिसे अनादि काल से अनन्त चैतन्य और (अनन्त) वीर्य मुँद गया है, ऐसा वह ज्ञानी शुद्ध ज्ञप्ति-क्रियारूप से अंतर्मुहूर्त व्यतीत करके युगपद् ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय का क्षय होने से कथंचित् कूटस्थ ज्ञान को प्राप्त करता है और इस प्रकार उसे ज्ञप्ति-क्रिया के रूप में क्रम-प्रवृत्ति का अभाव होने से भाव-कर्म का विनाश होता है । इसलिये कर्म का अभाव होने पर वह वास्तव में भगवान सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा इन्द्रिय-व्यापारातीत, अव्याबाध अनंत सुख वाला सदैव रहता है ।

इस प्रकार यह भावकर्म मोक्ष का प्रकार तथा द्रव्य-कर्म मोक्ष का हेतुभूत परम संवर का प्रकार है ।।148-149।।

रागादि भावरूप हेतु का अभाव → से आस्रव का निरोध → से कर्म का निरोध → से सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनंत सुखी

**कर्म का अभाव होने पर**

(1) सर्वज्ञता (2) सर्वदर्शिता (3) अव्याबाध, अतींद्रिय अनंत सुख

प्राप्त होता है।
यह ही जीवन्मुक्ति नाम का **भावमोक्ष** है।

| ज्ञप्ति क्रिया-रूप भाव | |
|---|---|
| निर्देश | चैतन्य की क्रमानुसार प्रवर्तती क्रिया |
| स्वामी | संसारी जीव |
| कब से? | अनादि काल से |
| कैसी है यहाँ? | अशुद्ध |
| इसका कारण | मोहनीय के उदय का अनुसरण करने से |
| किसका हेतु | द्रव्य-कर्मास्रव का |

**ज्ञप्ति क्रिया**

| **प्रकार** | अशुद्ध | शुद्ध | कथंचित् कूटस्थ |
|---|---|---|---|
| **गुणस्थान** | 1-10 | 11-12 | 13-14, सिद्ध |

**भावकर्म के विनाश का क्रम**

(1) अशुद्ध ज्ञप्ति क्रिया रूप भाव सहित संसारी जीव

(2) मोहादि की हानि याने आस्रव-निरोध करे

(3) मोहक्षय (दर्शन एवं चारित्र मोह क्षय) करे

(4) अंतमुहूर्त के लिए शुद्ध ज्ञप्ति क्रिया होवे

(5) 3 घातिया कर्म का अभाव होवे

(6) तब केवलज्ञान होने पर अर्थात् क्रमप्रवृत्ति का अभाव होने से भावकर्म (ज्ञप्ति क्रिया) का अभाव होता है।

दंसणणाणसमग्गं झाणं णो अण्णदव्वसंजुत्तं ।
जायदि णिज्जरहेदू सहावसहिदस्स साहुस्स ॥१५०॥

**गाथार्थ: स्वभाव सहित साधु के दर्शन-ज्ञान से परिपूर्ण और अन्य द्रव्यों से संयुक्त नहीं होने वाला ध्यान, निर्जरा का हेतु होता है ।**

**टीका :** यह, द्रव्यकर्म-मोक्ष के हेतुभूत ऐसी परम निर्जरा के कारणभूत ध्यान का कथन है ।

इस प्रकार वास्तव में इस भाव-मुक्त भगवान केवली को, कि जिन्हें स्वरूप-तृप्तपने के कारण कर्म-विपाककृत सुख-दुःखरूप विक्रिया अटक गयी है उन्हें, आवरण के प्रक्षीणपने के कारण, अनन्त ज्ञान-दर्शन से सम्पूर्ण शुद्ध-ज्ञानचेतनामयपने के कारण तथा अतीन्द्रियपने के कारण जो अन्यद्रव्य के संयोग रहित है और शुद्ध स्वरूप में अविचलित चैतन्य वृत्तिरूप होने के कारण जो कथंचित् 'ध्यान' नाम के योग्य है ऐसा आत्मा का स्वरूप पूर्वसंचित कर्मो की शक्ति का शातन अथवा उनका पतन देखकर निर्जरा के हेतुरूप से वर्णन किया जाता है ।।150।।

| परम निर्जरा का कारणभूत ध्यान | |
|---|---|
| निर्देश | शुद्ध स्वरूप में अविचलित चैतन्य वृत्ति |
| किसका हेतु | निर्जरा का |
| कैसी विशेषता वाला | (1) दर्शन-ज्ञान से सम्पूर्ण<br>(2) अन्य द्रव्य से असंयुक्त |
| किसको | स्वभाव सहित साधु को (अर्हन्त भगवान को) |

जो संवरेण जुत्तो णिज्जरमाणोध सव्वकम्माणि ।
ववगदवेदाउस्सो मुयदि भवं तेण सो मोक्खो ॥१५१॥

**गाथार्थ: जो संवर से सहित, सभी कर्मों की निर्जरा करता हुआ, वेदनीय और आयुष्क से रहित होकर भव को छोड़ता है ; इसलिए वह मोक्ष है ।**

**टीका :** यह द्रव्य-मोक्ष के स्वरूप का कथन है ।

वास्तव में भगवान केवली को, भाव-मोक्ष होने पर, परम संवर सिद्ध होने के कारण उत्तर कर्म-संतति निरोध को प्राप्त होकर और परम निर्जरा के कारणभूत ध्यान सिद्ध होने के कारण पूर्व कर्म-संतति कि जिसकी स्थिति कदाचित् स्वभाव से ही आयुकर्म के जितनी होती है और कदाचित् समुद्घात विधान से आयुकर्म के जितनी होती है वह, आयुकर्म के अनुसार ही निर्जरित होती हुई, अपुनर्भव (मोक्ष) के लिये वह भव छूटने के समय होने वाला जो वेदनीय-आयु-नाम-गोत्ररूप कर्म-पुद्गलों का जीव के साथ अत्यन्त विश्लेष (वियोग) वह द्रव्य-मोक्ष है।

इस प्रकार मोक्ष पदार्थ का समाप्त हुआ । और मोक्षमार्ग के अवयवरूप सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान के विषयभूत नवपदार्थों का व्याख्यान भी समाप्त हुआ ।।151।।

केवली भगवान को भावमोक्ष होने पर
परम संवर सिद्ध होने के कारण → उत्तर कर्म-संतति निरोध को प्राप्त होकर
परम निर्जरा का कारणभूत ध्यान सिद्ध होने के कारण → पूर्व कर्मसंतति निर्जरित होती हुई
भव छूटने के समय
अघातिया कर्म पुद्गलों का जीव के साथ अत्यन्त विश्लेष
**द्रव्य मोक्ष है।**

मोक्षमार्ग के अवयव = सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान
इनके विषयभूत = 9 पदार्थ
**ऐसे नव पदार्थों का व्याख्यान समाप्त हुआ।**

# मोक्षमार्ग प्रपञ्च सूचिका चूलिका

## गाथा 152 से 171 की विषय-वस्तु

| क्रं. | विषय | गाथा क्रमांक | कुल गाथाएँ |
|---|---|---|---|
| 1. | मोक्षमार्ग का स्वरूप | 152 | 1 |
| 2. | स्वसमय-परसमय का सामान्य-विशेष विवरण | 153-157 | 5 |
| 3. | व्यवहार-निश्चय मोक्षमार्ग | 158-160 | 3 |
| 4. | भाव सम्यग्दृष्टि | 161 | 1 |
| 5. | निश्चय-व्यवहार रत्नत्रय का फल | 162 | 1 |
| 6. | स्थूल-सूक्ष्म परसमय व्याख्यान | 163-167 | |
| 7. | पुण्यास्रव परिणाम का फल | 168-169 | 2 |
| 8. | शास्त्र तात्पर्य | 170 | 1 |
| 9. | शास्त्र परिसमाप्ति परक उपसंहार | 171 | 1 |
| | | **कुल गाथाएँ** | **20** |

जीवसहावं णाणं अप्पडिहददंसणं अणण्णमयं ।
चरियं च तेसु णियदं अत्थित्तमणिंदियं भणियं ॥१५२॥

**गाथार्थ:** जीव का स्वभाव अनन्यमय, अप्रतिहत ज्ञान-दर्शन है, तथा उनमें नियत अस्तित्व अनिंदित चारित्र कहलाता है ।

टीका: अब मोक्षमार्ग प्रपंच सूचिका चूलिका है ।
यह, मोक्षमार्ग के स्वरूप का कथन है ।

जीव-स्वभाव में नियत चारित्र वह मोक्षमार्ग है । जीव-स्वभाव वास्तव में ज्ञान-दर्शन है क्योंकि वे (जीव से) अनन्यमय हैं । ज्ञान-दर्शन का (जीव से) अनन्यमयपना होने का कारण यह है कि विशेष-चैतन्य और सामान्य-चैतन्य जिसका स्वभाव है ऐसे जीव से वे निष्पन्न हैं । अब जीव के स्वरूपभूत ऐसे उन ज्ञान-दर्शन में नियत-अवस्थित ऐसा जो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप वृत्तिमय अस्तित्व जो कि रागादि परिणाम के अभाव के कारण अनिंदित है, वह चारित्र है; वही मोक्षमार्ग है ।

संसारियों में चारित्र वास्तव में दो प्रकार का है-(१) स्वचारित्र और (२) परचारित्र;(१) स्वसमय और (२) परसमय ऐसा अर्थ है । वहाँ, स्वभाव में अवस्थित अस्तित्व-स्वरूप (चारित्र) वह स्व-चारित्र है और परभाव में अवस्थित अस्तित्व-स्वरूप (चारित्र) वह परचारित्र है । उसमें से स्वभाव में अवस्थित अस्तित्वरूप चारित्र, जो कि परभाव में अवस्थित अस्तित्व से भिन्न होने के कारण अत्यन्त अनिंदित है वह, यहाँ साक्षात् मोक्षमार्गरूप अवधारना ।।152।।

1. जीव का स्वभाव ज्ञान-दर्शन है, क्योंकि वे जीव से अनन्य हैं।
2. ज्ञान-दर्शन जीव से अनन्य हैं, क्योंकि वे सामान्य-विशेष चैतन्यात्मक जीव से निष्पन्न हैं।

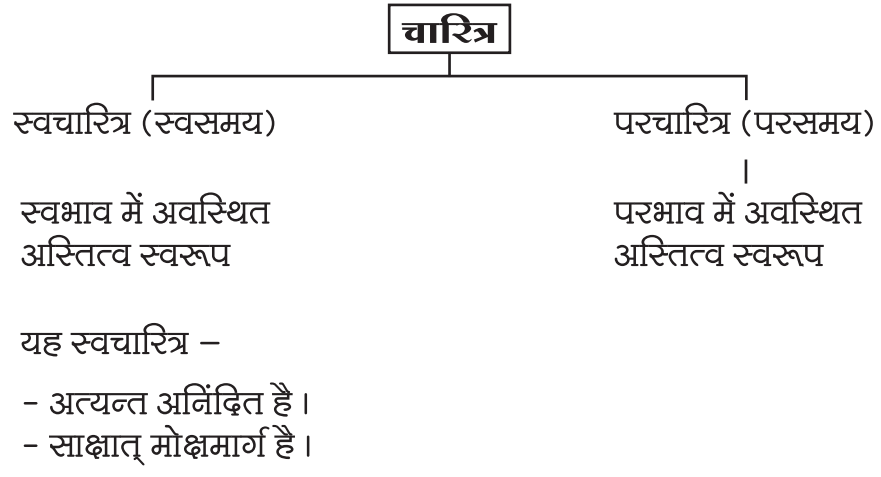

जीवो सहावणियदो अणियदगुणपज्जओध परसमओ ।
जदि कुणदि सगं समयं पब्भस्सदि कम्मबंधादो ॥१५३॥

**गाथार्थ: जीव स्वभावनियत होने पर भी यदि अनियत गुण-पर्यायवाला होता है तो वह परसमय है। यदि वह स्वसमय को करता है, तो कर्मबंध से छूट जाता है ।**

**टीका :** स्वसमय के ग्रहण और परसमय के त्यागपूर्वक कर्मक्षय होता है-ऐसे प्रतिपादन द्वारा यहाँ "जीवस्वभाव में नियत चारित्र वह मोक्षमार्ग है" ऐसा दर्शाया है।

संसारी जीव, (द्रव्य अपेक्षा से) ज्ञान-दर्शन में अवस्थित होने के कारण स्वभाव में नियत होने पर भी, जब अनादि मोहनीय के उदय का अनुसरण करके परिणति करने के कारण उपरक्त (अशुद्ध) उपयोगवाला होता है तब (स्वयं) भावों का विश्वरूपपना ग्रहण किया होने के कारण उसे जो अनियत-गुण-पर्यायपना होता है वह परसमय अर्थात् परचारित्र है; वही (जीव) जब अनादि मोहनीय के उदय का अनुसरण करने वाली परिणति करना छोड़कर अत्यन्त शुद्ध उपयोगवाला होता है तब (स्वयं) भाव का एकरूपपना ग्रहण किया होने के कारण उसे जो नियत-गुण-पर्यायपना होता है वह स्वसमय अर्थात् स्वचारित्र है ।

अब, वास्तव में यदि किसी भी प्रकार सम्यग्ज्ञान-ज्योति प्रगट करके जीव परसमय को छोड़कर स्वसमय को ग्रहण करता है तो कर्मबन्ध से अवश्य छूटता है; इसलिये वास्तव में जीव-स्वभाव में नियत चारित्र वह मोक्षमार्ग है ।।153।।

| संसारी जीव | |
|---|---|
| जब अनादि मोहनीय के उदय का अनुसरण करके | जब अनादि मोहनीय का अनुसरण करने वाली |
| परिणति करने के कारण | परिणति को छोड़कर |
| मलिन उपयोग वाला होता है | अत्यंत शुद्ध उपयोग वाला होता है |
| तब भावों का अनेकरूपपना ग्रहण करने के कारण | तब भाव का एकरूपत्व ग्रहण करने के कारण |
| उसे अनियत गुण पर्यायपना है, | उसे नियत गुणपर्यायपना है, |
| वही **परसमय** है। | वही **स्वसमय** है। |

**जीव**
पर-समय को छोड़कर
स्वसमय को ग्रहण करता है
तो कर्मबन्ध से अवश्य छूटता है।

**जो परदव्वम्मि सुहं असुहं रागेण कुणदि जदि भावं ।**
**सो सगचरित्तभट्ठो परचरियचरो हवदि जीवो ॥१५४॥**

**गाथार्थ: जो (जीव) राग से परद्रव्य में यदि शुभ-अशुभ भाव करता है, तो वह जीव स्वचारित्र से भ्रष्ट परचारित्र रूप आचरण करने वाला होता है ।**

**टीका :** यह, परचारित्र में प्रवर्तन करने वाले के स्वरूप का कथन है ।

जो (जीव) वास्तव में मोहनीय के उदय का अनुसरण करने वाली परिणति के वश रंजित-उपयोग वाला (उपरक्त उपयोग वाला) वर्तता हुआ, पर-द्रव्य में शुभ या अशुभ भाव को धारण करता है, वह (जीव) स्व-चारित्र से भ्रष्ट ऐसा पर-चारित्र का आचरण करने वाला कहा जाता है; क्योंकि वास्तव में स्व-द्रव्य में शुद्ध उपयोगरूप परिणति वह स्व-चारित्र है और पर-द्रव्य में सोपराग-उपयोगरूप परिणति वह पर-चारित्र है ।।154।।

जो जीव
रंजित उपयोग वाला होता हुआ
परद्रव्य में
शुभ या अशुभ भाव धारण करता है,
वह स्वचारित्र से भ्रष्ट
= **परचारित्र** कहा जाता है।

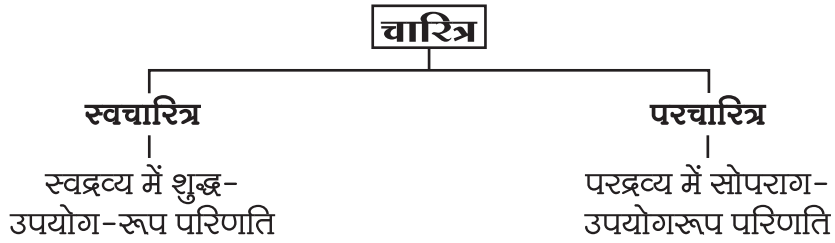


**आसवदि जेण पुण्णं पावं वा अप्पणोध भावेण ।**
**सो तेण परचरित्तो हवदि त्ति जिणा परूवेंति ॥१५५॥**

**गाथार्थ: आत्मा के जिस भाव से पुण्य या पाप का आस्रव होता है, वह उससे परचारित्र वाला होता है - ऐसा 'जिन' प्ररूपित करते हैं ।**

**टीका** : यहाँ, पर-चारित्र प्रवृत्ति बंध-हेतुभूत होने से उसे मोक्षमार्गपने का निषेध किया गया है (अर्थात् पर-चारित्र में प्रवर्तन बंध का हेतु होने से वह मोक्षमार्ग नहीं है ऐसा इस गाथा में दर्शाया है)।

यहाँ वास्तव में शुभोपरक्त भाव (शुभरूप विकारी भाव) वह पुण्यास्रव है और अशुभोपरक्त भाव (अशुभरूप विकारी भाव) पापास्रव है । वहाँ, पुण्य अथवा पाप जिस भाव से आस्रवित होते हैं, वह भाव जब जिस जीव को हो तब वह जीव उस भाव द्वारा पर-चारित्र है ऐसा प्ररूपित किया जाता है। इसलिये पर-चारित्र में प्रवृत्ति सो बंधमार्ग ही है, मोक्षमार्ग नहीं है ।।155।।

जिस भाव से
पुण्य-पाप आस्रवित होते हैं,
वह भाव जब जिस जीव के हो,
तब वह जीव
उस भाव के द्वारा
परचारित्र है।

**निष्कर्ष : परचारित्र में प्रवृत्ति बंधमार्ग ही है, मोक्षमार्ग नहीं ।**

**सो सव्वसंगमुक्को णण्णमणो अप्पणं सहावेण ।**
**जाणदि पस्सदि णियदं सो सगचरियं चरदि जीवो ॥१५६॥**

**गाथार्थ: जो सर्व संगमुक्त और अनन्यमनवाला वर्तता हुआ आत्मा को स्वभाव द्वारा नियतरूप से जानता-देखता है, वह जीव स्वचारित्र आचरता है ।**

**टीका :** यह स्व-चारित्र में प्रवर्तन करने वाले के स्वरूप का कथन है ।

जो (जीव) वास्तव में निरुपराग उपयोगवाला होने के कारण सर्वसंग-मुक्त वर्तता हुआ, पर-द्रव्य से व्यावृत्त उपयोग वाला होने के कारण अनन्य मनवाला वर्तता हुआ, आत्मा को ज्ञान-दर्शनरूप स्वभाव द्वारा नियतरूप से अर्थात् अवस्थितरूप से जानता-देखता है, वह जीव वास्तव में स्वचारित्र आचरता है; क्योंकि वास्तव में दृशि-ज्ञप्तिस्वरूप पुरुष में तन्मात्ररूप से वर्तना सो स्वचारित्र है ।।156।।

**चरियं चरदि सगं सो जो परदव्वप्पभावरहिदप्पा ।**
**दंसणणाणवियप्पं अवियप्पं चरदि अप्पादो ॥१५७॥**

**गाथार्थ: जो परद्रव्यात्मक भावों से रहित स्वरूपवाला दर्शन-ज्ञान के विकल्प को आत्मा से अविकल्प (अभिन्नरूप) आचरण करता है, वह स्वचारित्र का आचरण करता है ।**

**टीका** : यह शुद्ध स्वचारित्र प्रवृत्ति के मार्ग का कथन है ।

जो योगीन्द्र, समस्त मोह-व्यूह से बहिर्भूत होने के कारण परद्रव्य के स्वभावरूप भावों से रहित स्वरूपवाले वर्तते हुए, स्वद्रव्य को एक को ही अभिमुखता से अनुसरते हुए निज-स्वभावभूत दर्शन-ज्ञान भेद को भी आत्मा से अभेदरूप से आचरते हैं, वे वास्तव में स्व-चारित्र को आचरते हैं ।

इस प्रकार वास्तव में शुद्ध-द्रव्य के आश्रित, अभिन्न-साध्य-साधन भाववाले निश्चयनय के आश्रय से मोक्षमार्ग का प्ररूपण किया गया । और जो पहले (१०७ वीं गाथा में) दर्शाया गया था वह स्व-पर-हेतुक पर्याय के आश्रित, भिन्न-साध्य-साधन भाववाले व्यवहार नय के आश्रय से प्ररूपित किया गया था । इसमें परस्पर विरोध आता है ऐसा भी नहीं है, क्योंकि सुवर्ण और सुवर्णपाषाण की भाँति निश्चय-व्यवहार को साध्य-साधनपना है; इसलिये पारमेश्वरी (जिन-भगवान की) तीर्थ-प्रवर्तना दोनों नयों के अधीन है ।।157।।

## स्वचारित्र जीव

| गाथा 156 | गाथा 157 |
|---|---|
| जो सर्वसंगमुक्त और अनन्यमन | जो परद्रव्यात्मक भावों से रहित |
| वाला वर्तता हुआ | स्वरूपवाला वर्तता हुआ |
| आत्मा को | दर्शन-ज्ञानरूप भेद को |
| स्वभाव द्वारा | आत्मा से अभेद-रूप से |
| नियत-रूप से | |
| जानता-देखता है | आचरता है |
| **वह जीव स्वचारित्र आचरता है।** | |

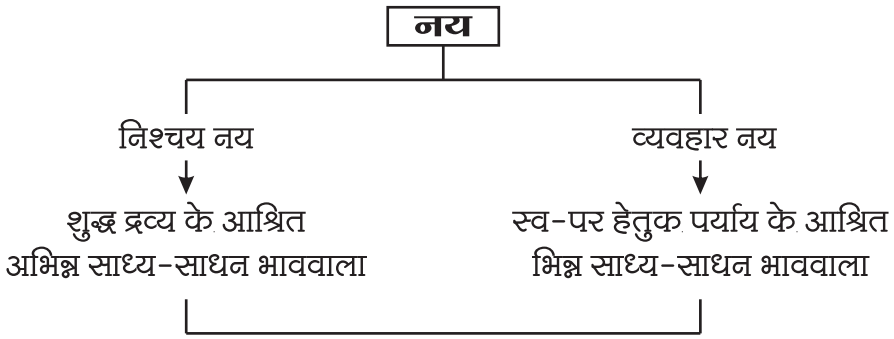


**निश्चय व्यवहार को परस्पर साध्य-साधनपना है।**

**धम्मादीसद्दहणं सम्मत्तं णाणमंगपुव्वगदं ।**
**चेट्ठा तवम्मि चरिया ववहारो मोक्खमग्गो त्ति ॥१५८॥**

**गाथार्थ: धर्मादि का श्रद्धान सम्यक्त्व है; अंग-पूर्वगत ज्ञान, ज्ञान है और तप में चेष्टा / प्रवृत्ति चारित्र है, इस प्रकार व्यवहार मोक्षमार्ग है।**

**टीका :** निश्चय मोक्षमार्ग के साधनरूप से, पूर्वोद्दिष्ट (१०७ वीं गाथा में उल्लिखित) व्यवहार मोक्षमार्ग का यह निर्देश है ।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र सो मोक्षमार्ग है । वहाँ (छह) द्रव्यरूप और (नव) पदार्थरूप जिनके भेद हैं ऐसे धर्मादि के तत्त्वार्थ-श्रद्धानरूप भाव जिसका स्वभाव है ऐसा, 'श्रद्धान' नाम का भाव-विशेष सो सम्यक्त्व; तत्त्वार्थ-श्रद्धान के सद्भाव में अंग-पूर्वगत पदार्थों का अवबोधन (जानना) सो ज्ञान; आचारादि सूत्रों द्वारा कहे गए अनेकविध मुनि-आचारों के समस्त समुदायरूप तप में चेष्टा (प्रवर्तन) सो चारित्र—ऐसा यह, स्व-परहेतुक पर्याय के आश्रित, भिन्न साध्य-साधन-भाववाले व्यवहार नय के आश्रय से अनुसरण किया जाने वाला मोक्षमार्ग, सुवर्ण-पाषाण को लगाई जाने वाली प्रदीप्त अग्नि की भाँति समाहित अंतरंगवाले जीव को पद-पद पर परम रम्य ऐसी ऊपर की शुद्ध भूमिकाओं में अभिन्न विश्रांति (अभेदरूप स्थिरता) उत्पन्न करता हुआ, यद्यपि उत्तम सुवर्ण की भाँति शुद्ध जीव कथंचित् भिन्न साध्य-साधनभाव के अभाव के कारण

स्वयं शुद्ध स्वभाव से परिणमित होता है तथापि, निश्चय-मोक्षमार्ग के साधनपने को प्राप्त होता है ।।158।।

## व्यवहार रत्नत्रय

| लक्ष्य | लक्षण |
|---|---|
| सम्यक्त्व | धर्मादि का तत्त्वार्थ श्रद्धान-रूप भाव विशेष |
| ज्ञान | सम्यक्त्वपूर्वक अंगपूर्वगत पदार्थों का अवबोधन |
| चारित्र | आचारादि सूत्र कथित अनेकविध मुनि आचारों के समस्त समुदायरूप तप में चेष्टा |

**णिच्छयणयेण भणिदो तिहि तेहिं समाहिदो हु जो अप्पा ।**

**ण कुणदि किंचि वि अण्णं ण मुयदि सो मोक्खमग्गो त्ति ॥१५९॥**

**गाथार्थ: उन तीन से वास्तव में समाहित होता हुआ जो आत्मा, वास्तव में अन्य कुछ भी करता नहीं है और न छोड़ता है, वह निश्चय नय से मोक्षमार्ग है - ऐसा कहा गया है ।**

**टीका :** व्यवहार मोक्षमार्ग के साध्यरूप से, निश्चय मोक्षमार्ग का यह कथन है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा समाहित हुआ आत्मा ही जीवस्वभाव में नियत चारित्ररूप होने के कारण निश्चय से मोक्षमार्ग है ।

अब यह आत्मा वास्तव में (किसी प्रकार से) अनादि अविद्या के नाश द्वारा व्यवहार-मोक्षमार्ग को प्राप्त करता हुआ, धर्मादि-सम्बन्धी तत्त्वार्थ-अश्रद्धान के, अंग-पूर्वगत पदार्थों सम्बन्धी अज्ञान के और अतप में चेष्टा के त्याग हेतु से तथा धर्मादि सम्बन्धी तत्त्वार्थ-श्रद्धान के, अंग-पूर्वगत पदार्थों सम्बन्धी ज्ञान के और तप में चेष्टा के ग्रहण हेतु से विविक्त भावरूप व्यापार करता हुआ, और किसी कारण से ग्राह्य का त्याग हो जाने पर और त्याज्य का ग्रहण हो जाने पर उसके प्रतिविधान का अभिप्राय करता हुआ, जिस काल और जितने काल तक विशिष्ट भावना सौष्ठव के

कारण स्वभावभूत सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के साथ अंग-अंगीभाव से परिणति द्वारा उनसे समाहित होकर, त्याग-ग्रहण के विकल्प से शून्यपने के कारण (भेदात्मक) भावरूप व्यापार विराम प्राप्त होने से सुनिष्कम्परूप से रहता है, उस काल और उतने काल तक यही आत्मा जीव-स्वभाव में नियत चारित्ररूप होने के कारण निश्चय से 'मोक्षमार्ग' कहलाता है । इसलिये, निश्चय-मोक्षमार्ग और व्यवहार-मोक्षमार्ग को साध्य-साधनपना अत्यन्त घटित होता है ।।159।।

| निश्चय मोक्षमार्ग |
| --- |
| जो आत्मा<br>सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा<br>समाहित होकर<br>अन्य कुछ भी ग्रहण नहीं करता<br>ना कुछ छोड़ता है,<br>वह आत्मा मोक्षमार्ग है। |

**जो चरदि णादि पेच्छदि अप्पाणं अप्पणा अणण्णमयं ।**

**सो चारित्तं णाणं दंसणमिदि णिच्छिदो होदि ॥१६०॥**

**गाथार्थ: जो अनन्यमय आत्मा को आत्मा द्वारा आचरता है, जानता है, देखता है, वह (आत्मा ही) चारित्र है, ज्ञान है, दर्शन है - ऐसा निश्चित है ।**

**टीका :** यह, आत्मा के चारित्र-ज्ञान-दर्शनपने का प्रकाशन है ।

जो (आत्मा) वास्तव में आत्मा को जो कि आत्ममय होने से अनन्यमय है उसे आत्मा से आचरता है अर्थात् स्वभावनियत अस्तित्व द्वारा अनुवर्तता है (अनन्यमय आत्मा को ही) आत्मा से जानता है अर्थात् स्व-पर-प्रकाशकरूप से चेतता है, (अनन्यमय आत्मा को ही) आत्मा से देखता है अर्थात् यथातथरूप से अवलोकता है,

वह आत्मा ही वास्तव में चारित्र है, ज्ञान है, दर्शन है ऐसा कर्ता-कर्म-करण के अभेद के कारण निश्चित है । इससे (ऐसा निश्चित हुआ कि) चारित्र-ज्ञान-दर्शनरूप होने के कारण आत्मा को जीवस्वभाव-नियत चारित्र जिसका लक्षण है ऐसा निश्चय-मोक्षमार्गपना अत्यन्त घटित होता है ।।160।।

| कर्ता | कर्म | करण | क्रिया | फल |
|---|---|---|---|---|
| जो आत्मा | अनन्यमय आत्मा को | आत्मा से | आचरता है<br>जानता है<br>देखता है | वह आत्मा ही चारित्र है।<br>ज्ञान है।<br>दर्शन है। |

**अतः आत्मा ही निश्चय मोक्षमार्ग है।**

**जेण विजाणदि सव्वं पेच्छदि सो तेण सोक्खमणुभवदि ।**

**इदि तं जाणदि भविओ अभव्वसत्तो ण सद्दहदि ॥१६१॥**

**गाथार्थ: 'जिससे सबको जानता और देखता है, उससे वह सौख्य का अनुभव करता है' - जो ऐसा जानता है वह भव्य है ; अभव्य जीव इसका श्रद्धान नहीं करते हैं ।**

**टीका :** यह, सर्व संसारी आत्मा मोक्षमार्ग के योग्य होने का निराकरण है ।

वास्तव में सौख्य का कारण स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव है । आत्मा का 'स्वभाव' वास्तव में दृशि-ज्ञप्ति (दर्शन और ज्ञान) है। उन दोनों को विषयप्रतिबन्ध होना सो 'प्रतिकूलता' है। मोक्ष में वास्तव में आत्मा सर्व को जानता और देखता होने से उसका (प्रतिकूलता का) अभाव होता है। इसलिये उसका अभाव जिसका कारण है ऐसे अनाकुलतालक्षण वाले परमार्थ सुख की मोक्ष में अचलित अनुभूति होती है। इस प्रकार भव्य जीव ही भाव से जानता है, इसलिये वही मोक्षमार्ग के योग्य है; अभव्य जीव इस प्रकार श्रद्धा नहीं करता, इसलिये वह मोक्षमार्ग के अयोग्य ही है।

इससे (ऐसा कहा कि) कुछ ही ही संसारी मोक्षमार्ग के योग्य हैं, सर्व नहीं ।।161।।

| सौख्य का कारण = | स्वभाव की ↓ दृशि-ज्ञप्ति | प्रतिकूलता का अभाव ↓ दृशि-ज्ञप्ति को विषय प्रतिबन्ध होना |
|---|---|---|

मोक्ष अवस्था में आत्मा सर्व को जानता-देखता है।
↳ अतः मोक्ष में इस विषय प्रतिबन्ध का अभाव है।
↳ तब मोक्ष में पारमार्थिक सुख की अविचल अनुभूति होती है।

जो इस प्रकार भाव से जानता है वह **भव्य** है।

जो ऐसा श्रद्धान नहीं करता वह **अभव्य** है।

**दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गो त्ति सेविदव्वाणि ।**
**साधूहिं इदं भणिदं तेहिं दु बंधो व मोक्खो वा ॥१६२॥**

**गाथार्थ: दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है; अत: वे सेवन करने योग्य हैं, ऐसा साधुओं ने कहा है; परंतु उनसे बंध भी होता है और मोक्ष भी होता है ।**

**टीका :** यहाँ, दर्शन-ज्ञान-चारित्र का कथंचित् बन्ध-हेतुपना दर्शाया है और इस प्रकार जीवस्वभाव में नियत चारित्र का साक्षात् मोक्षहेतुपना प्रकाशित किया है ।

यह दर्शन-ज्ञान-चारित्र यदि अल्प भी परसमयप्रवृत्ति के साथ मिलित हो तो, अग्नि के साथ मिलित घृत की भाँति कथंचित् विरुद्ध कार्य के कारणपने की व्याप्ति के कारण बन्ध कारण भी हैं । और जब वे (दर्शन-ज्ञान-चारित्र) समस्त परसमय प्रवृत्ति से निवृत्तिरूप ऐसी स्वसमय प्रवृत्ति के साथ संयुक्त होते हैं तब, जिसे अग्नि के साथ का मिलितपना निवृत्त हुआ है ऐसे घृत की भाँति, विरुद्ध कार्य का कारणभाव निवृत्त हो गया होने से साक्षात् मोक्ष का कारण ही है । इसलिये 'स्वसमय-प्रवृत्ति' नाम का जो जीव-स्वभाव में नियत चारित्र उसे साक्षात् मोक्षमार्गपना घटित होता है ।।162।।

| | दर्शन-ज्ञान-चारित्र | |
|---|---|---|
| **कैसे वें?** | परसमय प्रवृत्ति के साथ मिलित होने पर | स्वसमय प्रवृत्ति के साथ संयुक्त होने पर |
| **क्या हैं** | बंध कारण भी हैं | साक्षात् मोक्षकारण ही हैं। |
| **क्यों** | कंथचित् विरुद्ध कार्य के कारणपने की व्याप्ति के कारण | विरुद्ध कार्य का कारण भाव निवृत्त हो जाने के कारण |
| **दृष्टान्त** | अग्नि के साथ मिलित घृत की तरह | अग्नि के साथ का मिलितपना निवृत्त हुआ ऐसे घृत की तरह |

**अण्णाणादो णाणी जदि मण्णदि सुद्धसंपओगादो ।**
**हवदि त्ति दुक्खमोक्खो परसमयरदो हवदि जीवो ॥१६३॥**

**गाथार्थ: यदि अज्ञान से ज्ञानी ऐसा मानता है कि शुद्ध सम्प्रयोग (शुभभाव) से दुःख-मोक्ष होता है तो वह जीव परसमयरत है ।**

**टीका :** यह, सूक्ष्म परसमय के स्वरूप का कथन है ।

सिद्धि के साधनभूत ऐसे अर्हतादि भगवन्तों के प्रति भक्तिभाव से अनुरंजित चित्त-वृत्ति वह यहाँ 'शुद्ध-सम्प्रयोग' है । अब, अज्ञान-लव के आवेश से यदि ज्ञानवान भी 'उस शुद्ध-सम्प्रयोग से मोक्ष होता है' ऐसे अभिप्राय द्वारा खेद प्राप्त करता हुआ उसमें (शुद्ध-सम्प्रयोग में) प्रवर्ते, तो तब तक वह भी रागलव के सद्भाव के कारण 'परसमयरत' कहलाता है। तो फिर निरंकुश रागरूप क्लेश से कलंकित ऐसी अंतरंग वृत्तिवाला इतर जन क्या परसमयरत नहीं कहलाएगा ? ।।163।।

| शुद्ध सम्प्रयोग | |
|---|---|
| क्या | चित्त की वृत्ति |
| कैसी | भक्ति भाव से अनुरंजित |
| किनके प्रति | अर्हंतादि के प्रति |

**'शुद्ध सम्प्रयोग से मोक्ष होता है,'**
**ऐसा अज्ञान से ज्ञानी भी माने**
**तो वह परसमयरत है।**

अरहंतसिद्धचेदिय-पवयणगणणाणभत्तिसंपण्णो ।
बंधदि पुण्णं बहुसो ण हु सो कम्मक्खयं कुणदि ॥१६४॥

**गाथार्थ:** अरहन्त, सिद्ध, चैत्य (प्रतिमा), प्रवचन (जिनवाणी), मुनिगण, ज्ञान के प्रति भक्तिसम्पन्न जीव बहुत पुण्य बाँधता है; परंतु वास्तव में वह कर्म का क्षय नहीं करता है।

**टीका :** यहाँ, पूर्वोक्त शुद्ध-सम्प्रयोग को कथंचित् बंधहेतुपना होने से उसका मोक्षमार्गपना निरस्त किया है ।

अर्हंतादि के प्रति भक्ति-सम्पन्न जीव, कथंचित् 'शुद्ध-सम्प्रयोग वाला' होने पर भी, रागलव जीवित होने से 'शुभोपयोगीपने' को नहीं छोड़ता हुआ, बहुत पुण्य बांधता है, परन्तु वास्तव में सकल कर्म का क्षय नहीं करता । इसलिये सर्वत्र राग की कणिका भी परिहरने योग्य है, क्योंकि वह परसमयप्रवृत्ति का कारण है ।।164।।

| अर्हंतादि के प्रति भक्ति-संपन्न जीव | |
|---|---|
| **क्या करता है?** | बहुत पुण्य का बंध |
| **क्या नहीं करता?** | सकल कर्म का क्षय |
| **क्यों ?** | रागलव जीवित होने के कारण |
| **निष्कर्ष : सर्वत्र राग की कणिका भी छोड़ने योग्य है।** | |

जस्स हिदयेणुमेत्तं वा परदव्वम्हि विज्जदे रागो ।

सो ण विजाणदि समयं सगस्स सव्वागमधरो वि ॥१६५॥

**गाथार्थ: जिसके हृदय में परद्रव्य के प्रति अणुमात्र भी राग विद्यमान है, वह सर्व आगमधर होने पर भी स्वकीय समय को नहीं जानता है ।**

**टीका :** यहाँ, स्वसमय की उपलब्धि के अभाव का राग एक हेतु है ऐसा प्रकाशित किया है ।

जिसे रागरेणु की कणिका भी हृदय में जीवित है वह, भले समस्त सिद्धांत-सागर का पारंगत हो तथापि, निरुपराग शुद्ध-स्वरूप स्व-समय को वास्तव में नहीं चेतता । इसलिये, 'धुनकी से चिपकी हुई रूई' का न्याय लागु होने से, जीव को स्व-समय की प्रसिद्धि के हेतु अर्हंतादि विषयक भी रागरेणु क्रमशः दूर करने योग्य है ।।165।।

**सिद्धान्त :** जिसे राग की कणिका हृदय में विद्यमान है,
वह निरुपराग शुद्ध-स्वरूपी स्वसमय को नहीं चेतता।
भले ही वह सिद्धान्त-सागर का पारगामी हो।

**निष्कर्ष :** स्वसमय की प्रसिद्धि हेतु
अर्हंतादि विषयक राग भी
क्रमशः
दूर करने योग्य है।

धरिदुं जस्स ण सक्कं चित्तुब्भामं विणा दु अप्पाणं ।
रोधो तस्स ण विज्जदि सुहासुहकदस्स कम्मस्स ॥१६६॥

**गाथार्थ: जो चित्त के भ्रमण से रहित आत्मा को धारण करने में (रखने में) समर्थ नहीं है, उसके शुभाशुभ कर्मों का निरोध नहीं होता है ।**

**टीका :** यह, रागलव-मूलक दोष-परम्परा का निरूपण है ।

यहाँ वास्तव में अर्हतादि के ओर की भक्ति भी राग-परिणति के बिना नहीं होती । रागादि परिणति होने पर, आत्मा बुद्धिप्रसार रहित (चित्त के भ्रमण से रहित) अपने को किसी प्रकार नहीं रख सकता; और बुद्धिप्रसार होने पर (चित्त का भ्रमण होने पर), शुभ तथा अशुभ कर्म का निरोध नहीं होता । इसलिए इस अनर्थ-संतति का मूल रागरूप क्लेश का विलास ही है ।।166।।

1. अर्हंतादि की भक्ति राग परिणति बिना नहीं होती।
2. रागपरिणति होने पर बुद्धि-प्रसार (चित्त का भ्रमण) होता ही है।
3. बुद्धि-प्रसार होने से शुभाशुभ कर्म का निरोध नहीं होता।

**निष्कर्ष : अनर्थपरंपरा का मूल राग-रूप क्लेश का विलास ही है।**

तम्हा णिव्वुदिकामो णिस्संगो णिम्ममो य भविय पुणो ।
सिद्धेसु कुणदि भत्तिं णिव्वाणं तेण पप्पोदि ॥१६७॥

**गाथार्थ: इसलिए निर्वाण का इच्छुक जीव नि:संग और निर्मम होकर सिद्धों की भक्ति करता है, उससे वह निर्वाण को प्राप्त होता है ।**

**टीका :** यह, रागरूप क्लेश का निःशेष नाश करने योग्य होने का निरूपण है ।

रागादि परिणति होने पर चित्त का भ्रमण होता है और चित्त का भ्रमण होने पर कर्मबन्ध होता है ऐसा (पहले) कहा गया, इसलिए मोक्षार्थी को कर्मबन्ध का मूल ऐसा

जो चित्त का भ्रमण उसके मूलभूत रागादि परिणति का एकान्त निःशेष नाश करने योग्य है । उसका निःशेष नाश किया जाने से, जिसे निःसंगता और निर्ममता प्रसिद्ध हुई है ऐसा वह जीव शुद्धात्म द्रव्य में विश्रांतिरूप पारमार्थिक सिद्धभक्ति धारण करता हुआ स्वसमय प्रवृत्ति की प्रसिद्धिवाला होता है । उस कारण से वही जीव कर्मबन्ध का निःशेष नाश करके सिद्धि को प्राप्त करता है ।।167।।

मोक्षार्थी जीव
निःसंग और निर्ममत्व होकर
पारमार्थिक सिद्धों की भक्ति करता है
जिससे निर्वाण को प्राप्त करता है।

**पारमार्थिक**
**सिद्ध भक्ति**
**=**
**शुद्धात्मद्रव्य में विश्रान्ति**

**सपदत्थं तित्थयरं अभिगदबुद्धिस्स सुत्तरोचिस्स ।**
**दूरतरं णिव्वाणं संजमतवसंपउत्तस्स ॥१६८॥**

**गाथार्थः संयम-तप संयुक्त होने पर भी जिसकी बुद्धि का आकर्षण पदार्थों-सहित तीर्थंकर के प्रति है तथा जिसे सूत्र के प्रति रुचि है, उसे निर्वाण दूरतर है ।**

यहाँ, अर्हंतादि की भक्तिरूप परसमय प्रवृत्ति में साक्षात् मोक्षहेतुपने का अभाव होने पर भी परम्परा से मोक्षहेतुपने का सद्भाव दर्शाया है ।

जो जीव वास्तव में मोक्ष के लिये उद्यमी चित्त वाला वर्तता हुआ, अचिंत्य संयम तपभार सम्प्राप्त किया होने पर भी परम वैराग्य-भूमिका का आरोहण करने में समर्थ

ऐसी प्रभुशक्ति उत्पन्न नहीं की होने से, 'धुनकी को चिपकी हुई रूई' के न्याय से, नव पदार्थों तथा अर्हंतादि की रुचिरूप परसमय प्रवृत्ति का परित्याग नहीं कर सकता, वह जीव वास्तव में साक्षात् मोक्ष को प्राप्त नहीं करता किन्तु देवलोकादि के क्लेश की प्राप्तिरूप परम्परा द्वारा उसे प्राप्त करता है ।।168।।

संयम-तप संयुक्त होने पर भी
नवपदार्थ, तीर्थंकर के प्रति बुद्धि का झुकाव एवं
सूत्र के प्रति रुचि वर्तती है,
उसका निर्वाण दूरतर है।

**अर्हंतादि की भक्ति में है**

- साक्षात् मोक्ष-हेतुत्व का अभाव
- परंपरा से मोक्ष-हेतुत्व का सद्भाव

**अरहंतसिद्धचेदियपवयणभत्तो परेण णियमेण ।**
**जो कुणदि तवोकम्मं सो सुरलोगं समादियदि ॥१६९॥**

**गाथार्थ: अरहन्त, सिद्ध, चैत्य, प्रवचन के प्रति भक्तियुक्त वर्तता हुआ परम संयमसहित जो तप-कर्म करता है, वह सुरलोक को प्राप्त होता है ।**

**टीका :** यह मात्र अर्हंतादि की भक्ति जितने राग से उत्पन्न होनेवाला जो साक्षात् मोक्ष का अंतराय, उसका प्रकाशन है ।

जो (जीव) वास्तव में अर्हंतादि की भक्ति के अधीन बुद्धिवाला वर्तता हुआ परमसंयमप्रधान अतितीव्र तप तपता है, वह (जीव) मात्र उतने रागरूप क्लेश से जिसका निज अंतःकरण कलंकित है ऐसा वर्तता हुआ, विषय-विष-वृक्ष के आमोद से

जहाँ अन्तरंग मोहित होता है ऐसे स्वर्गलोक को जो कि साक्षात् मोक्ष को अन्तरायभूत है उसे सम्प्राप्त करके, सुचिरकाल पर्यंत रागरूपी अंगारों से दह्यमान हुआ अन्तर में संतप्त होता है ।।169।।

जो अर्हंतादि के प्रति भक्तियुक्त वर्तता हुआ
परम संयम सहित
तपकर्म करता है,
वह सुरलोक को प्राप्त करता है।

## कैसा है सुरलोक?

- जहाँ विषय-विषवृक्ष के आमोद से अंतरंग मोहित होता है,
- जो साक्षात् मोक्ष को अन्तरायभूत है।

**तम्हा णिव्वुदिकामो रागं सव्वत्थ कुणदु मा किंचि ।**

**सो तेण वीदरागो भवियो भवसायरं तरदि ॥१७०॥**

**गाथार्थ: इसलिए मोक्षाभिलाषी सर्वत्र किंचित् भी राग न करे । इससे वह भव्य जीव वीतरागी होकर भवसागर को तिर जाता है ।**

**टीका :** यह, साक्षात् मोक्षमार्ग के सार-सूचन द्वारा शास्त्र तात्पर्यरूप उपसंहार है ।

साक्षात् मोक्षमार्ग में अग्रसर सचमुच वीतरागता है । इसलिए वास्तव में अर्हंतादिगत राग को भी, चंदनवृक्ष संगत अग्नि की भाँति, देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति द्वारा अत्यन्त अन्तर्दाह का कारण समझकर, साक्षात् मोक्ष का अभिलाषी महाजन सबकी ओर के राग को छोड़कर, अत्यन्त वीतराग होकर, जिसमें उबलती हुई दुःख-सुख की कल्लोल उछलती हैं और जो कर्माग्नि द्वारा तप्त, खलबलाते जलसमूह की अतिशयता से भयंकर है ऐसे भवसागर को पार उतरकर, शुद्ध-स्वरूप परमामृत समुद्र को अवगाहकर, शीघ्र निर्वाण को प्राप्त करता है ।

**टीका** : विस्तार से बस हो । जयवन्त वर्ते वीतरागता जो कि साक्षात् मोक्षमार्ग का सार होने से शास्त्र तात्पर्यभूत है ।

तात्पर्य द्विविध होता हैः सूत्रतात्पर्य और शास्त्रतात्पर्य । उसमें, सूत्र-तात्पर्य प्रत्येक सूत्र में प्रतिपादित किया गया है, और शास्त्र-तात्पर्य अब प्रतिपादित किया जाता हैः-

सर्व पुरुषार्थों में सारभूत ऐसे मोक्षतत्त्व का प्रतिपादन करने के लिये जिसमें पंचास्तिकाय और षड्द्रव्य के स्वरूप के प्रतिपादन द्वारा समस्त वस्तु का स्वभाव दर्शाया गया है, नव पदार्थों के विस्तृत कथन द्वारा जिसमें बन्ध-मोक्ष के सम्बन्धी (स्वामी), बन्ध-मोक्ष के आयतन (स्थान) और बन्ध-मोक्ष के विकल्प (भेद) प्रगट किए गए हैं, निश्चय-व्यवहाररूप मोक्षमार्ग का जिसमें सम्यक् निरूपण किया गया है तथा साक्षात् मोक्ष के कारणभूत परम वीतरागपने में जिसका समस्त हृदय स्थित है ऐसे इस यथार्थ पारमेश्वर शास्त्र का, परमार्थ से वीतरागपना ही तात्पर्य है ।

सो इस वीतरागपने का व्यवहार-निश्चय के अविरोध द्वारा ही अनुसरण किया जाए तो इष्ट सिद्धि होती है, परन्तु अन्यथा नहीं ।

(उपरोक्त बात विशेष समझाई जाती हैः-)

अनादि काल से भेदवासित बुद्धि होने के कारण प्राथमिक जीव व्यवहार नय से भिन्न साध्यसाधनभाव का अवलम्बन लेकर सुख से तीर्थ का प्रारम्भ करते हैं। जैसे कि ''(१) यह श्रद्धेय (श्रद्धा करने योग्य) है, (२) यह अश्रद्धेय है, (३) यह श्रद्धा करने वाला है और (४) यह श्रद्धान है; (१) यह ज्ञेय (जाननेयोग्य) है, (२) यह अज्ञेय है, (३) यह ज्ञाता है और (४) यह ज्ञान है; (१) यह आचरणीय (आचरण करने योग्य) है, (२) यह अनाचरणीय है, (३) यह आचरण करने वाला है और (४) यह आचरण है;'' इस प्रकार (१) कर्तव्य (करने योग्य), (२) अकर्तव्य, (३) कर्ता और (४) कर्मरूप विभागों के अवलोकन द्वारा जिन्हें कोमल उत्साह उल्लसित होता है ऐसे वे (प्राथमिक जीव) धीरे-धीरे मोहमल्ल को उखाड़ते जाते हैं; कदाचित् अज्ञान के कारण मद (कषाय) और प्रमाद के वश होने से अपना आत्म-अधिकार शिथिल हो जाने पर अपने को न्यायमार्ग में प्रवर्तित करने के लिए वे प्रचण्ड दण्डनीति का प्रयोग करते हैं; पुन-पुनः (अपने आत्मा को) दोषानुसार प्रायश्चित्त देते हुए वे सतत् उद्यमवन्त वर्तते हैं; और भिन्न विषयवाले श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र के द्वारा जिसमें संस्कार आरोपित होते जाते हैं ऐसे भिन्न

साध्य-साधन-भाववाले अपने आत्मा में धोबी द्वारा शिला की सतह पर पछाड़े जाने वाले, निर्मल जल द्वारा भिगोए जाने वाले और क्षार (साबुन) लगाए जाने वाले मलिन वस्त्र की भाँति कुछ-कुछ विशुद्धि प्राप्त करके, उसी अपने आत्मा को निश्चय नय से भिन्न-साध्य-साधन-भाव के अभाव के कारण, दर्शन-ज्ञान-चारित्र का समाहितपना (अभेदपना) जिसका रूप है, सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर की निवृत्ति के कारण जो निस्तरंग परम चैतन्यशाली है तथा जो निर्भर आनन्द से समृद्ध है ऐसे भगवान आत्मा में विश्रांति रचते हुए क्रमशः समरसी भाव समुत्पन्न होता जाता है इसलिए परम वीतराग-भाव को प्राप्त करके साक्षात् मोक्ष का अनुभव करते हैं ।

(अब केवल व्यवहारावलम्बी (अज्ञानी) जीवों का प्रवर्तन और उसका फल कहा जाता है :-)

परन्तु जो केवल व्यवहारावलम्बी हैं वे वास्तव में भिन्न-साध्य-साधन-भाव के अवलोकन द्वारा निरन्तर अत्यन्त खेद पाते हुए, (१) पुनः-पुनः धर्मादि के श्रद्धानरूप अध्यवसान में उनका चित्त लगता रहने से, (२) बहुत श्रुत के (द्रव्यश्रुत के) संस्कारों से उठने वाले विचित्र (अनेक प्रकार के) विकल्पों के जाल द्वारा उनकी चैतन्यवृत्ति चित्र-विचित्र होती है इसलिए और (३) समस्त यति आचार के समुदायरूप तप में प्रवर्तनरूप कर्मकाण्ड की धमार में वे अचलित रहते हैं इसलिए, (१) कभी किसी की रुचि करते हैं, (२) कभी किसी के विकल्प करते हैं और (३) कभी कुछ आचरण करते हैं; दर्शनाचरण के लिए वे कदाचित् प्रशमित होते हैं, कदाचित् संवेग को प्राप्त होते हैं, कदाचित् अनुकंपित होते हैं, कदाचित् आस्तिक्य को धारण करते हैं, शंका, कांक्षा, विचिकित्सा और मूढ़दृष्टिता के उत्थान को रोकने के लिए नित्य कटिबद्ध रहते हैं, उपबृंहण, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना को भाते हुए बारम्बार उत्साह को बढ़ाते हैं; ज्ञानाचरण के लिये स्वाध्यायकाल का अवलोकन करते हैं, बहु प्रकार से विनय का विस्तार करते हैं, दुर्धर उपधान करते हैं, भलीभाँति बहुमान को प्रसारित करते हैं, निह्नव दोष को अत्यन्त निवारते हैं, अर्थ, व्यंजन और तदुभय की शुद्धि में अत्यन्त सावधान रहते हैं; चारित्राचरण के लिये हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्म और परिग्रह की सर्वविरतिरूप पंचमहाव्रतों में तल्लीन वृत्ति वाले रहते हैं, सम्यक् प्रकार से योग-निग्रह जिसका लक्षण है ऐसी गुप्तियों में अत्यन्त उद्योग रखते हैं, ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेप और उत्सर्गरूप समितियों में प्रयत्न को अत्यन्त जोड़ते हैं; तपाचरण के

लिये अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन और कायक्लेश में सतत् उत्साहित रहते हैं, प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, व्युत्सर्ग, स्वाध्याय और ध्यानरूप परिकर (समूह) द्वारा निज अंतःकरण को अंकुशित रखते हैं; वीर्याचरण के लिये कर्मकांड में सर्व शक्ति द्वारा व्यापृत रहते हैं; ऐसा करते हुए, कर्मचेतना-प्रधानपने के कारण यद्यपि अशुभ-कर्म-प्रवृत्ति का उन्होंने अत्यन्त निवारण किया है तथापि शुभ-कर्म-प्रवृत्ति को जिन्होंने बराबर ग्रहण किया है ऐसे वे, सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर से पार उतरी हुई दर्शन-ज्ञान-चारित्र की ऐक्यपरिणतिरूप ज्ञानचेतना को किंचित् भी उत्पन्न नहीं करते हुए, बहुत पुण्य के भार से मंथर हुई चित्तवृत्ति वाले वर्तते हुए, देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति की परम्परा द्वारा दीर्घकाल तक संसार-सागर में भ्रमण करते हैं । कहा भी है कि - चरणकरणप्पहाणा ससमयपरमत्थमुक्कवावारा । चरणकरणस्स सारं णिच्छयसुद्धं ण जाणंति ।। (अर्थात् जो चरणपरिणामप्रधान हैं और स्वसमयरूप परमार्थ में व्यापाररहित हैं, वे चरणपरिणाम का सार जो निश्चयशुद्ध (आत्मा) उसे नहीं जानते।)

(अब केवल निश्चयावलम्बी (अज्ञानी) जीवों का प्रवर्तन और उसका फल कहा जाता हैः-)

अब, जो केवल निश्चयावलम्बी हैं, सकल क्रिया-कर्मकाण्ड के आडम्बर में विरक्त बुद्धिवाले वर्तते हुए, आँखों को अधमुँदा रखकर कुछ भी स्वबुद्धि से अवलोक कर यथासुख रहते हैं, वे वास्तव में भिन्न-साध्य-साधन-भाव को तिरस्कारते हुए, अभिन्न-साध्य-साधन-भाव को उपलब्ध नहीं करते हुए, अंतराल में ही (शुभ तथा शुद्ध के अतिरिक्त शेष तीसरी अशुभ दशा में ही), प्रमाद-मदिरा के मद से भरे हुए आलसी चित्तवाले वर्तते हुए, मत्त (उन्मत्त) जैसे, मूर्छित जैसे, सुषुप्त जैसे, बहुत घी-शक्कर खीर खाकर तृप्ति को प्राप्त हुए हों ऐसे, मोटे शरीर के कारण जड़ता (मंदता, निष्क्रियता) उत्पन्न हुई हो ऐसे, दारुण बुद्धि-भ्रंश से मूढ़ता हो गई हो ऐसे, जिसका विशिष्ट चैतन्य मुँद गया है ऐसी वनस्पति जैसे, मुनींद्र की कर्मचेतना को पुण्यबंध के भय से नहीं अवलम्बते हुए और परम नैष्कर्म्यरूप ज्ञानचेतना में विश्रांति को प्राप्त नहीं होते हुए, व्यक्त-अव्यक्त प्रमाद के अधीन वर्तते हुए, प्राप्त हुए हलके (निकृष्ट) कर्मफल की चेतना के प्रधानपने वाली प्रवृत्ति जिसे वर्तती है ऐसी वनस्पति की भाँति, केवल पाप को ही

बाँधते हैं । कहा भी है किः – णिच्छयमालम्बंता णिच्छयदो णिच्छयं अयाणंता । णासंति चरणकरणं बाहरिचरणालसा केई ।। (अर्थात् निश्चय का अवलम्बन लेने वाले परन्तु निश्चय से निश्चय को नहीं जानने वाले कुछ जीव बाह्य चरण में आलसी वर्तते हुए चरणपरिणाम का नाश करते हैं।)

(अब निश्चय-व्यवहार दोनों का सुमेल रहे इस प्रकार भूमिकानुसार प्रवर्तन करने वाले ज्ञानी जीवों का प्रवर्तन और उसका फल कहा जाता हैः-)

परन्तु जो, अपुनर्भव के लिये नित्य उद्योग करने वाले महाभाग भगवन्त, निश्चय-व्यवहार में से किसी एक का ही अवलम्बन नहीं लेने से अत्यन्त मध्यस्थ वर्तते हुए, शुद्ध-चैतन्यरूप आत्म-तत्त्व में विश्रांति के विरचन की ओर अभिमुख वर्तते हुए, प्रमाद के उदय का अनुसरण करती हुई वृत्ति का निवर्तन करने वाली (टालने वाली) क्रियाकाण्ड-परिणति को माहात्म्य में से वारते हुए अत्यन्त उदासीन वर्तते हुए, यथाशक्ति आत्मा को आत्मा से आत्मा में संचेतते (अनुभवते) हुए नित्य उपयुक्त रहते हैं, वे वास्तव में स्वतत्त्व में विश्रांति के अनुसार क्रमशः कर्म का संन्यास करते हुए अत्यन्त निष्प्रमाद वर्तते हुए, अत्यन्त निष्कंपमूर्ति होने से जिन्हें वनस्पति की उपमा दी जाती है तथापि जिन्होंने कर्मफलानुभूति अत्यन्त निरस्त (नष्ट) की है ऐसे, कर्मानुभूति के प्रति निरुत्सुक वर्तते हुए, केवल ज्ञानानुभूति से उत्पन्न हुए तात्त्विक आनन्द से अत्यन्त भरपूर वर्तते हुए, शीघ्र संसार-समुद्र को पार उतरकर, शब्द-ब्रह्म के शाश्वत फल के (निर्वाण सुख के) भोक्ता होते हैं ।।170।।

**शास्त्र तात्पर्य**

हे मोक्षार्थी जीव !

सर्वत्र किंचित् भी राग ना करो,

जिससे वीतराग होकर

भवसागर से तर जाओ।

| जयवंत वर्ते | |
|---|---|
| क्या | वीतरागता |
| कैसी है | शास्त्र तात्पर्यभूत |
| क्यों | साक्षात् मोक्षमार्ग का सार होने से |

**इस परमेश्वर शास्त्र का परमार्थ से वीतरागता ही तात्पर्य है।**

**कैसा है यह शास्त्र ?**

जिसमें पंचास्तिकाय और षड्द्रव्य के स्वरूप के प्रतिपादन द्वारा समस्त वस्तु का स्वभाव दर्शाया है। (गाथा 1 - 103)

जिसमें नव पदार्थों के विस्तृत कथन द्वारा बन्ध–मोक्ष के संबंधी, आयतन और भेद प्रगट किए गए हैं। (गाथा - 104-151)

जिसमें निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग का सम्यक् निरूपण किया गया है। (गाथा 152 - 171)

परम वीतरागपने में जिसका समस्त हृदय स्थित है।

**केवल व्यवहारावलम्बी जीव**

केवल व्यवहारालम्बी जीव ने
अशुभ कर्म प्रवृत्ति का अत्यन्त निवारण किया है,
शुभकर्म प्रवृत्ति को अच्छी तरह ग्रहण किया है
परन्तु सकल क्रियाकाण्ड से पार उतरी हुई दर्शन-ज्ञान-चारित्र
की ऐक्य परिणतिरूप ज्ञान चेतना को किंचित् भी प्राप्त नहीं किया।
वे देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति की परंपरा द्वारा
अत्यन्त दीर्घकाल तक संसार सागर में भ्रमण करते हैं।

## केवल विश्चयालम्बी जीव

जो निश्चयावलम्बी हैं
भिन्न साध्य-साधन भाव को तिरस्कारते हुए
अभिन्न साध्य-साधन भाव को उपलब्ध न करते हुए
अंतराल में ही आलसी चित्तवाले होते हुए
मुनीन्द्र की कर्मचेतना को पुण्यबन्ध के भय से न अवलंबते हुए
परम नैष्कर्म्यरूप ज्ञानचेतना में विश्रान्ति न पाते हुए
व्यक्त-अव्यक्त प्रमाद के अधीन होते हुए
केवल पाप ही बांधते हैं ।

**मग्गप्पभावणट्ठं पवयणभत्तिप्पचोदिदेण मया ।**
**भणियं पवयणसारं पंचत्थियसंगहं सुत्तं ॥१७१॥**

**गाथार्थ: प्रवचन की भक्ति से प्रेरित मेरे द्वारा मार्ग-प्रभावना के लिए प्रवचन का सारभूत यह 'पंचास्तिकाय-संग्रह' सूत्र कहा गया है ।**

**टीका :** यह, कर्ता की प्रतिज्ञा की पूर्णता सूचित करने वाली समाप्ति है ।

मार्ग अर्थात् परम वैराग्य की ओर ढलती हुई पारमेश्वरी परम आज्ञा; उसकी प्रभावना अर्थात् प्रख्यापन द्वारा अथवा प्रकृष्ट परिणति द्वारा उसका समुद्योत करना; उसके हेतु ही (मार्ग की प्रभावना के लिये ही), परमागम की ओर के अनुराग के वेग से जिसका मन अति चलित होता था ऐसे मैंने यह 'पंचास्तिकाय-संग्रह' नाम का सूत्र कहा जो कि भगवान सर्वज्ञ द्वारा उपज्ञ होने से (स्वयं जानकर प्रणीत किया होने से) 'सूत्र' है और जो संक्षेप से समस्त वस्तु-तत्त्व का प्रतिपादन करता होने से, अति विस्तृत ऐसे भी प्रवचन के सारभूत हैं (द्वादशांगरूप से विस्तीर्ण ऐसे भी जिन-प्रवचन के सारभूत हैं ) ।

इस प्रकार शास्त्रकार (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य देव) प्रारम्भ किये हुए कार्य के अन्त को पाकर, अत्यन्त कृतकृत्य होकर, परम-नैष्कर्म्यरूप शुद्ध-स्वरूप में विश्रांत हुए— ऐसे श्रद्धे जाते हैं ।।171।।

| मेरे द्वारा कहा गया | |
|---|---|
| क्या | पंचास्तिकाय संग्रह सूत्र |
| कैसा है यह | प्रवचन का सारभूत |
| किस हेतु से कथित | मार्ग की प्रभावना हेतु |
| किस प्रकार से | प्रवचन की भक्ति से प्रेरित होकर |

मार्ग
=
परम वैराग्य करने
में निपुण पारमेश्वरी
परम आज्ञा

**प्रभावना**
**(सम्यक् प्रकार प्रकाशित करना)**

(किस प्रकार)

व्याख्यान द्वारा
(व्यवहार नय)

स्वयं की प्रकृष्ट
परिणति द्वारा
(निश्चय नय)

| ग्रन्थ के नाम की सार्थकता | |
|---|---|
| (1) संक्षेप से समस्त वस्तुतत्त्व का सूचक होने के कारण | पंचास्तिकाय संग्रह |
| (2) भगवान सर्वज्ञ द्वारा उपज्ञ होने के कारण | सूत्र |

(उपजाति)

**स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्त्वै–र्व्याख्या कृतेयं समयस्य शब्दैः ।**
**स्वरूपगुप्तस्य न किंचिदस्ति कर्तव्यमेवामृतचन्द्रसूरेः ।। ८ ।।**

अर्थः अपनी शक्ति से जिन्होंने वस्तु का तत्त्व भलीभांति कहा है ऐसे शब्दों ने यह समय की व्याख्या की है। स्वरूप–गुप्त अमृतचंद्र सूरि का उसमें किंचित् भी कर्तव्य नहीं है ।। ८ ।।